RNI : UPHIN/2009/30450 ISSN : 2319-2178 (P) ISSN : 2582-6603 (O)

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व
साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

सितंबर, 2020

वर्ष : 12, अंक : 02, पूर्णांक : 29

संस्थापक–प्रकाशक–संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

RNI : UPHIN/2009/30450 ISSN : 2319-2178 (P) ISSN : 2582-6603 (O)

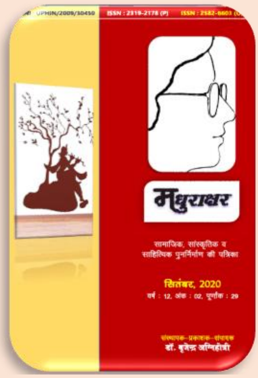

संरक्षक परिषद

श्रीमती चित्रा मुद्गल
प्रो. गिरीश्वर मिश्र
प्रो. अशोक सिंह
प्रो. हितेंद्र मिश्र
डॉ. कृष्णा खत्री
डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय

संपादक परिषद

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री (संपादक)
डॉ. प्रशांत द्विवेदी (सह-संपादक)
श्री पंकज पाण्डेय (उप-संपादक)
श्रीमती शालिनी सिंह (उप-संपादक)
डॉ. ऋचा द्विवेदी (उप-संपादक)
डॉ. आरती वर्मा (उप-संपादक)

परामर्श-विशेषज्ञ परिषद

डॉ. दमयंती सैनी
डॉ. दीपक त्रिपाठी
श्री मनस्वी तिवारी
श्री राम सुभाष
श्री जयकेश पाण्डेय
श्री महेशचंद्र त्रिपाठी
डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर'
श्री मृत्यंजय पाण्डेय
श्री जयेन्द्र वर्मा

संस्थापक–प्रकाशक–संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

सितंबर, 2020
वर्ष : 12, अंक : 02, पूर्णांक : 29

पूर्णतः अव्यावसायिक एवं अवैतनिक प्रकाशन

मूल्य

एक प्रति	: 30 रुपये

व्यक्तियों के लिए

वार्षिक	: 110 रुपये
त्रैवार्षिक	: 300 रुपये
आजीवन	: 2500 रुपये

संस्थाओं के लिए

वार्षिक	: 150 रुपये
त्रैवार्षिक	: 450 रुपये
आजीवन	: 5000 रुपये

विदेशों के लिए (हवाई डाक)

एक अंक	: 6 $
वार्षिक	: 24 $
आजीवन	: 300 $

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में खाता क्रमांक- **10946443013** (IFS Code- SBIN0000076, MICR Code - 212002002) या 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644508** (IFS Code- SBIN0005396, MICR Code- 212002004) में करें। फतेहपुर से बाहर के चेकों व बाहृय-अन्तरण में बैंक शुल्क रुपये 60 अतिरिक्त जमा करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी
बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

मधुराक्षर

सितंबर, 2020

संपादक
डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

संपादकीय कार्यालय
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

E-Mail :
madhurakshar@gmail.com

Visit us :
www.madhurakshar.com
www.madhurakshar.blogspot.com

www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
+91 9918695656

एक नज़र में...

संपादकीय

अपनी बात : बृजेन्द्र अग्निहोत्री .05

कथा–साहित्य

तुमने कहा जो था : राम नगीना मौर्य .07

कमीशन : कृष्णा खत्री .19

समय का फेर : विकास कुमार .26

सुरक्षा : सुनीता जाजोदिया .34

कोरोना : एक प्रेम गाथा : महिमा श्रीवास्तव .43

समझौतों का शहर : उर्मिला शर्मा .48

मेरी बहू : राघव दुबे रघु .52

नज़र : आस्था तिवारी .54

एक मुट्ठी दुर्वा : राजेश कुमार .55

संवेदनशील कौन :. विभाषा मिश्र .57

प्रयास : अतुल मल्लिक 'अनजान' .59

पी.एम. केयर्स : अनिल कुमार 'निलय' .60

कलम को नमन

तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम : फणीश्वरनाथ रेणु .64

साहित्य जगत के कोहिनूर– फणीश्वर नाथ रेणु : राजीव मणि .98

पुण्य स्मरण

सामाजिक सरोकारों का शायर– राहत इन्दौरी : दीपक रूहानी .101

कथेतर गद्य

रामकथा की पात्र कैकेयी : देवी नागरानी .112

कोरोना काल में शिक्षा व्यवस्था पर संकट... : शोभा ठाकुर .117

आदि शंकराचार्य– सत्य सनातन धर्म के आधार : विदुषी शर्मा .121

भारतीय ज्ञान–परंपराओं पर शोध कार्य... : अमित कुमार पाण्डेय .131

हिन्दुस्तान में सिनेमा की शुरुआत : सत्यजीत कुमार .136

वैश्विक समाज और सांस्कृतिक परिवर्तन : अल्पना नागर .142

किन्नर जीवन– दर्द भरी दास्तान : पूजा सचिन धारगलकर .148

तुलसीदास के काव्य में लोक चेतना : सबनम भुजेल .159

मेघालय की खासी लोककथाओं में प्रकृति : अनीता पंडा .166

भाई साहब ने पूरे एक साल का वेतन... : सीताराम गुप्ता .173

काव्य–सुरसरि

प्यार या भ्रम : शबनम तब्बसुम .176
कभी सुध नहीं ली उन्होंने : खेमकरण 'सोमन' .177
एक स्त्री को समझते हुए : रोहित कुमार पथिक .178
अधूरा चुम्बन : तान्या सिंह .179
मौन की उड़ान : स्नेहलता .180
स्त्रीवादी कविता : संगीता पाण्डेय .181
यादें : सवि शर्मा .182
इक दर्द : पूजा .183
बहुत कुछ लिखना शेष है : देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव .184
प्यास : डिंपल राठौड़ .185
रावण : नीना सिन्हा .186
प्रश्न मेरे : प्रशांत द्विवेदी .187

कृति–चर्चा

मामला आगे बढ़ेगा : चित्रा मुद्गल
महानगरीय जीवन की एक कटु सच्चाई : पुलकित खन्ना .188
सॉफ्ट कॉर्नर : राम नगीना मौर्य
मध्यम–वर्ग की जिंदगी से रूबरू कराती.. : भोलानाथ कुशवाहा .192
चलो, लौट चलें : डॉ. कृष्णा खत्री
यथार्थ और कल्पना का जीवंत चित्रण : शालिनी सिंह .198
बूंद में सागर : डॉ. कृष्णा खत्री
कृष्णा खत्री की करिश्माई कलम का कमालः महेशचंद्र त्रिपाठी .201

संपादकीय

अपनी बात

घर जलते समय चुप रहना उचित नहीं है। देश की एकता की बात जब कभी याद आती है तब संपूर्ण देश को एक तार में पिरोने की योग्यता रखने वाली हिंदी को पदच्युत करके गुलामी का संकेत अंग्रेजी को स्थान देने वाली बात दिल पर सुई–सी चुभती है। हम हिंदी–भाषियों में अधिकांश जनों की धारणा यही है कि हिंदी यदि अभी तक राष्ट्रभाषा नहीं हो पाई तो इसका मुख्य कारण अहिंदी भाषियों का अंग्रेजी–प्रेम अथवा हिंदी–विरोध है। हिंदी पत्र–पत्रिकाओं में इस विषय पर जो लेख निकलते हैं उनसे यह प्रकट नहीं होता कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का सर्वाधिक उत्तरदायित्व हमारा है, और हम अपने इस दायित्व का निर्वाह नहीं कर पा रहे हैं। हमारे देश में एक पूरा वर्ग है, जो राष्ट्रभाषा के पद पर अंग्रेजी को प्रतिष्ठित रखना चाहता है। यह वर्ग किसी प्रदेश/क्षेत्र विशेष से सीमित नहीं है, अपितु सारे देश में फैला हुआ है। अमरबेल की तरह यह विशाल हिंदी–क्षेत्र में भी फैला है। आये दिन अपने प्रदेश के पढ़े–लिखे लोगों के व्यवहार में हम अंग्रेजी का यह महत्व देख सकते हैं। हिंदी–भाषी क्षेत्र में इस वर्ग के लोग उतने मुखर नहीं है, जितने उनके सहयोगी अन्य प्रदेशों में हैं। फिर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सभी प्रदेशों के अंग्रेजी–प्रेमी एक दूसरे की सहायता करते हैं। हमारा मानना है कि संपूर्ण देश में फैले हिंदी–प्रेमी मिथ्या जातीय अहंकार तजकर हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने का दायित्व सहर्ष स्वीकार करें।

किसी भी बोली या भाषा का उद्‌भव अचानक से नही हो जाता, इसकी उत्पत्ति और विकास में युगों की विचारधाराएँ सिमटी रहती हैं। बोली या भाषा पहले लोकभाषा का स्थान लेती है, तत्पश्चात

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

धीरे–धीरे साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण करने लगती है। युगों पूर्व हमारे समाज में वैदिक संस्कृत आर्यों की मान्य भाषा थी, जो साहित्यिक भाषा के रूप में ऋग्वेद में सुरक्षित है। इसका दूसरा रूप लोकभाषा के रूप में अर्द्धशिक्षित तथा अशिक्षित समुदाय में व्यवहृत होता था, जिसका नाम लोक ने संस्कृत रखा। समय के साथ 'वैदिक संस्कृत' का स्थान 'संस्कृत' ने लेना प्रारंभ कर दिया, और धीरे–धीरे 'वैदिक संस्कृत' विलुप्त होती चली गयी। 'संस्कृत' भाषा में जनसमुदाय के लिए अति दुर्बोध शब्दों के प्रयोग के कारण देशज शब्दों का परिपूर्ण कोष लेकर एक नई भाषा ने अस्तित्व ग्रहण किया, जिसे 'प्राकृत भाषा' की संज्ञा मिली. इसी प्राचीन प्राकृत को 'पालि' कहा गया. सम्राट अशोक को इसी पालि–भाषा में, जो पहले जनभाषा थी, अपने उपदेश देने पड़े। पालि–भाषा में जब व्याकरण का समावेश हुआ, वह साहित्यिक भाषा का स्वरूप ग्रहण करने लगी और लोकभाषा के रूप में 'प्राकृत' अपना विस्तार करने लगी। इस समय प्रादेशिकता के अनुसार पैशाची, शौरसेनी, अर्द्धमागधी आदि अनेक प्राकृत–भाषाओँ का उद्‌भव हुआ। जब प्राकृत–भाषाओं को व्याकरण के नियमों से स्थिर करने की चेष्टा हुई, तब 'अपभ्रंशों' का उद्‌भव हुआ। क्रमशः परिनिष्ठित अपभ्रंशों में साहित्य रचा जाने लगा, तत्पश्चात हिंदी के उद्‌भव और विकास की राह सुगम हो गयी।

वर्तमान समय में हिंदी ने जो स्वरूप ग्रहण कर रखा है, उसे ग्रहण करने से पूर्व उसे अनेक दुर्गम पड़ावों को पार करना पड़ा है। विविधताओं से परिपूर्ण विशाल जनसंख्या वाले भारत देश में स्वयं को स्थापित करने के लिए हिंदी को अनेकों विरोधों–अंतर्विरोधों का सामना करना पड़ा। अहिंदीभाषियों से अधिक हिंदीभाषियों ने 'हिंदी' के अस्तित्व और महत्व पर प्रश्नचिह्न लगाने का असफल प्रयास किया। इसी तरह अपने आठ वर्षों की साहित्यिक–यात्रा में 'मधुराक्षर' को भी अनेक दुरूह परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। इसके बावजूद 'मधुराक्षर' काफी समय से, तो कभी विलंब से आपके सामने प्रस्तुत हुई है।

बृजेन्द्र अग्निहोत्री

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कहानी

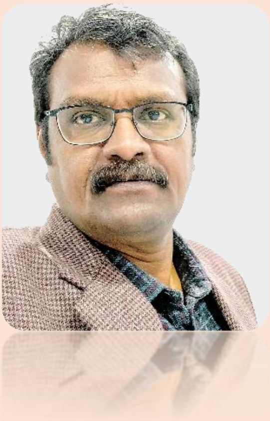

राम नगीना मौर्य
5/348, विराज खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ
ramnaginamaurya2011@gmail-com

तुमने कहा जो था!

''बड़े दामाद जी नहीं दिख रहे हैं?'' ऑगन में बैठी मुहल्ले की औरतों में से मिसेज चड्ढ़ा ने पूछा।

''हॉ, उन्हें ऑफिस में किसी जरूरी काम के लिए रोक लिया गया है। उनका अभी प्रमोशन के साथ–साथ नयी जगह पर तबादला भी हो गया है, इसीलिए तुरन्त छुट्टी नहीं मिल सकी है, लेकिन सुनेत्रा बता रही थी कि शादी में जरूर आयेंगे।'' पड़ोसन मिसेज चड्ढ़ा को सुनेत्रा की मॉ ने आश्वस्त किया।

''सुमित्रा, मैंने कल तुम्हारी बहू को बाजार में देखा। वो तो... लो–कट ब्लाउज में एकदम मॉडर्न बहू लग रही थी।''

''बस्स, पहनावा ही तो मॉडर्न है। मैडम का काम–काज से दूर–दूर तक नाता नहीं। वैसे, ये तुम्हारे दुपट्टे का लेस तो उघड़ा जा रहा है, इसे तुम सिलवा क्यों नहीं लेती ? तुम्हारी बहू तो बहुत गुणी है, उसी से कह देती।''

''सो तो है। आज जरा जल्दी में थी, ध्यान नहीं रहा, सो यही दुपट्टा ओढ़कर चली आयी। तुमने सही कहा, मेरी बहू सचमुच बहुत गुणी है।'' बरामदे में तख्त पर बैठी सब्जियॉ काटते, घर आयी मुहल्ले

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

की महिलाओं और अम्मा की बातें, गपशप सुनते, सुनेत्रा सोच रही थी कि क्या सचमुच ऐसा ही है? सत्यजीत का, यहॉ उसके चचेरे भाई की शादी के दो दिन पहले तक भी न आने का कारण क्या सिर्फ उनकी पदोन्नति, उनका तबादला और ऑफिस की व्यस्तताएं ही है? या कुछ और कारण हैं, जो मेरे बार–बार अनुरोध करने पर भी शादी में आने को तैयार नहीं हुए...?

घर में शादी की तैयारियां पूरे जोर–शोर से चल रही थीं। सुनेत्रा की तीनों बहनें अपने–अपने पति और बच्चों के साथ हफ्ते–भर पहले से ही यहां मायके में पांव जमाए हुईं थीं। कड़ाके की ठण्ड होने के कारण तीनों दामाद गुनगुनी धूप में ऊपर छत पर चाय–काफी की चुस्कियां भरते, पकौड़ियों पर हाथ साफ करते, गुल–गपाड़ा बतियाने में मस्त–व्यस्त से थे। बीच–बीच में सहारनपुर वाले जीजा जी, जो अपनी आदत के अनुसार हर चुटीली बात पर बड़े जोर से ठहाका लगाते हुए हँसते हैं, का जोरदार अट्टहास भी नीचे आंगन तक सुनाई पड़ जाता।

सुनेत्रा, यद्यपि मायके में अपने आपको शादी–विवाह के ढ़ेर सारे कामों में व्यस्त रखे हुए थी, परन्तु पूरे समय उसे कहीं–न–कहीं अजीब सा खालीपन, बेगानापन महसूस होता रहा। अम्मा–बाबू भी उससे ठीक ढ़ंग से नहीं बतिया रहे थे। चूंकि शादी–विवाह के घर में बीसों काम, बहत्तरों तरह के बवाल के कारण पूरा परिवार एक अजीब किस्म के तनाव में रहता है। ऐसे में सुनेत्रा की अम्मा, और बेटियों के बजाय, बीच–बीच में अपना गुस्सा सुनेत्रा पर ही निकालतीं। कभी–कभी तो सुनेत्रा को लगता कि अम्मा उसे जान–बूझकर या बेवजह ही दूसरों की गलतियों पर भी ये कहते डांट देती कि...''सुनेत्रा तुम तो बहनों में सबसे बड़ी हो, कम–अज–कम तुम्हें तो जिम्मेदारी का अहसास होना चाहिए। बाकी बेटियॉ के साथ आये उनके बच्चे अभी छोटे–छोटे हैं, सो वो सभी अपने–अपने बच्चों को भी संभालने में व्यस्त हैं। तुम्हारे बच्चे तो बड़े हैं, और शादी में आये भी नहीं हैं, ऐसे में कम–अज–कम तुम्हें तो आने वाले मेहमानों का खयाल रखने के साथ–साथ, हलवाई आदि को क्या–क्या देना है, का भी ध्यान रखना चाहिए? तुम तो स्कूटी चलाना जानती हो। थोड़ी–बहुत सब्जियां बाजार से तुम भी ले आ सकती हो, या टेण्ट वाले के पास बात करने के लिए अपने बाबू जी को स्कूटी पर बिठाकर ले जा सकती हो?''

सुनेत्रा से भी जो बन पड़ रहा था, कर रही थी, या कभी–कभार अपनी मां की ऐसी झिडकियॉं, एक कान से सुन दूसरे कान से निकालते, चुपचाप अपने काम में लगी रहती। वो जानती थी कि अम्मा से बहस करने का कोई फायदा नहीं। उन्हें अपने काम, अपने निर्णय में किसी तरह का दखल पसन्द नहीं। फिर, वो भी तो पूरे दिन दौड़–भाग करती रहतीं। तिस पर तीनों बहनों के बच्चों की पूरे घर में धमा–चौकड़ी, ऊपर से तीनों दामादों के नखरे भी अलग से झेलने थे। कभी भोजन में मीन–मेख, तो कभी रजाई–बिस्तर की समस्या। फिर तीनों की फितरतें भी अलग–अलग थीं। एक धूम्रपान का शौकीन, दूसरा नींद में खर्राटे भरने वाला, तो तीसरा देर रात तक ट्यूबलाइट जलाकर पढ़ते–पढ़ते सोने का आदी है। ऐसे में तीनों दामादों को अलग–अलग कमरा चाहिए था। ऊपर से शाम होते ही मच्छरों का आतंक भी शुरू हो जाता। जिससे सभी रिश्तेदारों के लिए मच्छरदानियों का इन्तजाम भी खासा मशक्कत भरा काम होता।

सुनेत्रा के दोनों बच्चे बड़े–बड़े थे। बेटे का हाईस्कूल, तो बिटिया की इण्टर बोर्ड परीक्षाएं थीं। दोनों के ही स्कूल में प्रैक्टिकल, एक्स्ट्रा–क्लॉसेज आदि कक्षाएं चल रही थीं, ऐसे में पढ़ाई का नुकसान होने की वजह से उसके बच्चों का आना सम्भव नहीं था। सत्यजीत को, बिटिया को रोज स्कूल या एक्स्ट्रा– क्लॉसेज के लिए छोड़ने जाना पड़ता था, फिर घर को अकेले बच्चों की जिम्मेदारी पर छोड़ा भी तो नहीं जा सकता। सत्यजीत के शादी में न आने का ये भी एक कारण था।

आज शादी का दिन था। घर में सुबह से ही गहमा–गहमी मची हुई थी। सभी लोग जोर–शोर से शादी की तैयारियों में लगे थे। सुनेत्रा, चावल की थाल लेकर छत पर चली गयी। छत पर गुनगुनी धूप खिली हुई थी। मुंडेर पर बैठा एक कौव्वा बीच–बीच में कांय–कांय कर लेता, पर सुनेत्रा अपने ही विचारों में खोई थी, इसलिए उस तरफ उसका ध्यान नहीं गया।

सुनेत्रा छत पर बैठी, चावल में से कंकड़–पत्थर आदि बीनते सोच रही थी...हमारी शादी के बाद तो सब कुछ ठीक–ठाक चल रहा था। अम्मा–बाबू, तीज–त्यौहार, खास मौकों पर उसके ससुराल आते–जाते थे। बीच–बीच में उससे और सत्यजीत से फोन पर बतियाते, हमारा हाल–चाल भी पूछते रहते। दोनों बच्चों के पैदा होने

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पर, उनकी देखभाल के लिए अम्मा तो पन्द्रह–बीस दिनों के लिए उसके पास रहने के लिए आयीं भी थीं। अगले छः–सात सालों के अन्तराल में उसकी बाकी तीनों बहनों की शादियॉ हो गयीं, जिससे अम्मा–बाबू की जिम्मेदारियॉ उन बेटियों, उनके ससुराल वालों के प्रति बंट जाने से, उसके और सत्यजीत के प्रति अम्मा–बाबू के रूख में बदलाव आ जाना स्वाभाविक था। पर वो सत्यजीत को कैसे समझाती? सत्यजीत तो अक्सर ही सुनेत्रा से शिकायत करते कि अब उसके अम्मा–बाबू, उसके यहॉ नहीं आते–जाते, और न तीज–त्यौहार में न्यौता–हंकारी की सामान्य पारिवारिक, सामाजिक औपचारिकताएं ही निभाते हैं।

सुनेत्रा और सत्यजीत के बीच कभी–कभी ऐसे मुद्दों पर खुल कर बातचीत हो जाती, तो कभी रूसा–रूसौव्वल भी हो जाती। हालांकि सुनेत्रा जानती थी, उसके अम्मा–बाबू अपने अन्य दामादों की तरह सत्यजीत को भी चाहते हैं। वो अपने अम्मा–बाबू का किसी से ज्यादा न घुल–मिल पाने का स्वभाव भी जानती थी, पर वो क्या कर सकती थी ? उसके लिए तो दोनों ही अपने थे। वो न अपने अम्मा–बाबू को गलत कह सकती थी, और न सत्यजीत की बातों पर तर्क–कुतर्क ही। पर सत्यजीत भी क्या कहता? देखा जाय तो उसे खुद भी नहीं पता था कि उसे अपने ससुराल वालों से क्या शिकायतें थीं? हाँ, बीच–बीच में सत्यजीत उन पर तंज कसते जरूर कहता...''अरे भई, सबके अपने–अपने संस्कार और समझ हैं। शादी हो गयी है, अब ससुरालपक्ष को हमसे क्या गरज...? वो कहावत है न...'भइल बियाह मोर करबा का...।''

''आप ये क्यों देखते हैं कि उनका व्यवहार आपके प्रति कैसा है? आप तो सिर्फ ये सोचिए, देखिये कि उनके प्रति आपका व्यवहार, आपके कर्तव्य क्या हैं? रिश्तों में कड़वाहट, मिठास, गरमाहट और ठण्डापन तो सामान्य बातें हैं। रिश्तेदारों में आपसी बनना–ठनना तो लगा ही रहता है। गाहे–बगाहे, ऐसी बातें किसके मुॅह से सुनने को नहीं मिलतीं? हम सभी, अपने–अपने तरीके इनका सामना करते जूझते, जिन्दगी जी रहे हैं।''

''रिश्ते निभाने, उसे बचाने की जिम्मेदारी सिर्फ एक पक्ष की ही नहीं होती, रिश्ते तो दोनों पक्षों की सहभागिता से चलते, मजबूत होते हैं। चाहें तो आपसी बातचीत, हालचाल लेने के ढ़ेरों बहाने हैं।

क्या हम इतने गये–गुजरे हैं?'' कहते सत्यजीत कभी–कभी तैश में भी आ जाता।

''देखिये, उनसे मेरी जब कभी भी बातचीत होती है, वे सबसे पहले आपके ही बारे में पूछते हैं। आपके बाद ही मेरा और बच्चों का नम्बर आता है। मुझे तो अच्छी तरह पता है कि उनके दिलों में आपके लिए कितना मान–सम्मान है। पुराने लोग हैं। क्या पता, बेवजह की औपचारिकताओं में यकीन न करते हों? हो सकता है आप जिन बातों को लेकर इतने गम्भीर हैं, वो उनकी नजर में कोई मुद्दा ही न हो। प्रकृति ने हम सभी को एक जैसा नहीं बनाया है। जिस तरह गेहूं, धान, ज्वार, बाजरा, मक्का ये सभी खाद्य फसलें हैं, लेकिन उनकी संरचना, प्रकृति अलग–अलग है, उसी तरह हम इन्सानों की फितरत भी भिन्न–भिन्न होती हैं। आप ये क्यों नहीं समझते कि वक्त के साथ हम–सब की प्राथमिकताएं बदलती रहती हैं। आपकी, उनकी, हम–सब की। मुझे नहीं लगता कि इसके लिए किसी पर दोषारोपण उचित है। कभी–कभी तो मुझे भी लगता है कि उनका व्यवहार मेरे प्रति उपेक्षापूर्ण, पक्षपातपूर्ण है, पर मैं उनकी ऐसी बातों को तरजीह नहीं देती। फायदा भी क्या? हम किसी के सोच– विचार– संस्कारों को नहीं बदल सकते। हॉ, पर उसके साथ सामंजस्य जरूर बिठा सकते हैं। बस्स, यही हमारे अख्तियार में है। आज की तेज रफ्तार जिन्दगी में किसके पास समय है, जो कहीं आए–जाए? सभी की अपनी–अपनी प्राथमिकताएं हैं। हम भी तो अतिव्यस्तता या अन्य कारणोंवश, अपने बाकी रिश्तेदारों के यहॉ गाहे–बगाहे के आयोजनों में शामिल नहीं हो पाते? फिर, आप भी तो बातचीत की पहल कर सकते हैं? ये किस शास्त्र में लिखा है कि बातचीत का मंगलाचरण बेटी के ससुरालवाले वाले ही करेंगे?'' सुनेत्रा प्रतिवाद करती।

''चलो मान लेता हूँ मैंने हालचाल लेने, बातचीत की शुरूआत नहीं की, गलती मेरी ही है। पर वो तो मुझसे उम्र, अनुभव, पद, हर मामले में बड़े हैं। छोटे तो नादानी करते ही हैं, पर क्या बड़ों की कोई जिम्मेदारी नहीं बनती?'' कहते सत्यजीत कभी–कभी कुतर्क भी करने लगता।

''आपको तो पता ही है, अम्मा–बाबू, हाई बी.पी. और सुगर के मरीज हैं। ऊपर से कमर और घुटनों में दर्द के कारण, उनसे घर के छोटे–छोटे काम भी नहीं किये जाते। कहीं आ–जा भी नहीं पाते।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

इसीलिए उन्होंने घरेलू काम–काज वास्ते एक आदमी भी रख लिया है, पर कभी–कभी उसके नखरे, खर्चे आदि सुनती हूँ, तो लगता है कि वो लोग अपना काम–काज खुद ही कर लें, तो ज्यादा अच्छा। अगर सभी रिश्तेदार उनसे ऐसी ही अपेक्षाएं रखने लगें, तो उनका अपना जीवन, उनकी दिनचर्या कैसे चलेगी? अब तो हमें उनकी फिक्र

करनी चाहिए, न कि वो हमारी फिक्र करें। मुझे नहीं लगता कि हमें अब इस उम्र में भी ऐसी बहसबाजियों में सिर खपाना चाहिए?''

''लो, भला ये क्या बात हुई? जब मैं तर्क की बात करता हूँ तो तुम्हें बहस लगता है? क्या कभी–कभार के मांगलिक मौकों पर भी मिलना–जुलना नहीं हो सकता?''

''सोचिए, अगर आपके घर पर मेहमानों की आवाजाही लगी रहेगी तो ये हम–सब के लिए कितना असुविधाजनक होगा? आपके बच्चे बड़ी कक्षाओं में हैं। किसी के आने–जाने से उनकी पढ़ाई का भी नुकसान होगा। आपको भी लिखने–पढ़ने का शौक है, जिससे

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

बाजमौंके घर में रिश्तेदारों का आना–जाना आपको बिलकुल पसन्द नहीं। फिर, आपको जिनसे शिकायतें हैं, अगर आप उनके जूतों में पैर डालते, उनके नजरिये से सोचियेगा, तो शायद उनकी मजबूरी ठीक से समझ सकेंगे।''

''ठीक है, मैं ही गलत सोचता हूँ, यही कहना चाहती हो न? पर ये बात तुम्हें भी अच्छी तरह पता है कि मैं उनसे किसी तरह की अपेक्षा नहीं रखता, सिवाय गाहे–बगाहे प्यार के दो मीठे बोल के।''

''देखिये, परिवार–पद–प्रतिष्ठा को देखते हुए रिश्तेदारों संग थोड़ा–बहुत कमी–बेशी तो चलती ही रहती है। ये तो आप भी जानते हैं कि साल के तीन सौ पैंसठ दिन मौसम एक सा नहीं रहता। कभी तेज धूप, लू, कड़ाके की ठण्डक तो कभी घनघोर बारिश का भी सामना करना पड़ जाता है। हमारे अम्मा–बाबू ने अपनी बेटियों को ऊँची शिक्षा दी। अच्छे संस्कार दिये। जिसका सुफल ही है कि आज आपके परिवार में भी आपके बच्चे सफल और सुसंस्कारित हैं। हर एक कक्षाओं में अव्वल नम्बरों से पास होते हैं। देखा जाय तो मॉ–बाप का अपने बच्चों के लिए शायद यही सबसे बड़ा योगदान होता है, जो उनके परिवार में जीवन–मूल्यों को आगे भी उत्तरोत्तर वृद्धि करने में मददगार होता है।''

''वाह! तुम तो कभी–कभी बड़ी समझदारी वाली बातें करने लगती हो?''

''ये तो, आप जैसे उभरते हुए विद्वान साहित्यकार के सान्निध्य का प्रतिफल है।''

''हाँ, ये भी खूब कही। कर लो मजाक। तुम्हारी यही बातें तो मुझे निरूत्तर कर देती हैं...हें–हें–हें।'' उनके बीच बहस प्रायः बिना किसी नतीजे के, ऐसे ही खूबसूरत मोड़ पर आकर खत्म हो जातीं। सुनेत्रा को विश्वास था कि समय सबसे बड़ा मरहम है। समय के साथ सब ठीक हो जायेगा।

सुनेत्रा ने तो सत्यजीत को समझाने के क्रम में एक दिन यहां तक कहा...''आप भले ही मुझसे उम्र में बड़े हैं, पर आपको अक्ल एकदम नहीं है। ये अखबार देखिये...किसी सज्जन द्वारा तीन दामादों के बीच तुलनात्मक रूप से कमजोर आर्थिक स्थिति के चलते उनके ससुराल पक्ष द्वारा, अपने साथ किये जा रहे पक्षपातपूर्ण व्यवहार के बारे में काउन्सलर से परामर्श मांगा गया है। जरा काउन्सलर के

सुझाव तो पढ़िये...'उपेक्षित होना या महसूस करना, ये दो अलहदा बातें हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि आप सिर्फ दूसरों से मान–सम्मान पाना चाहते हों, पर देने के मामले में कंजूसी कर जाते हों? रिश्तों में गरमाहट के लिए आपसी समझ और सामन्जस्य बनाए रखना बहुत जरूरी होता है।'' वाबजूद इन तानों–उलाहनों, यदा–कदा की आपसी खींच–तान, मान–मनुहार के बीच उनकी जिन्दगी अपनी गति से चल रही थी।

सुनेत्रा जानती थी कि शुरूआती दिनों में सत्यजीत ऊँचे ओहदे पर काम नहीं करते थे, जिससे अम्मा–बाबू गाहे–बगाहे, किसी–न–किसी बहाने, बाकी दामादों से सत्यजीत की आर्थिक स्थिति की तुलना करते रहते हैं। हालांकि पदोन्नति के बाद अब सत्यजीत विश्वविद्यालय में प्रशासनिक अधिकारी के पद पर कार्यरत थे।

कालान्तर में सुनेत्रा की तीनों छोटी बहनों की शादियां, अच्छे घरों के कमाऊ लड़कों से हो गयी। उनके ओहदे ऊँचे थे, सो ठाट भी थे। घर–परिवार से भी वो सभी सत्यजीत से बीस नहीं तो... तेइस–चौबीस तो ठहरते ही थे। जैसे–जैसे दिन बीतने लगे, सुनेत्रा ने महसूस किया कि अम्मा–बाबू, सत्यजीत की अपेक्षा बाकी अन्य दामादों से कुछ ज्यादा ही घुले–मिले रहते। सत्यजीत से अमूमन कम ही बात–व्यवहार रखते। सत्यजीत भी शनैः–शनै अपनी दुनिया में मगन होते चले गये। स्कूल–कॉलेज के दिनों में लिखने–पढ़ने का जो हल्का–फुल्का शौक था, उसे निखारने में वो जी–जान से जुट गये। इन सब का नतीजा यह रहा कि अगले कुछ ही वर्षों में उनके दो कहानी संग्रह, एक कविता संग्रह प्रकाशित हो गये, जो पाठकों, समीक्षकों के बीच खूब मकबूल भी हुए। इस तरह सत्यजीत ने शनैः शनैः पढ़ने–लिखने की दुनिया को पूरी तरह आत्मसात कर लिया।

''अरे! सुनेत्रा, चावल में से कंकड़–पत्थर आदि छांट–बीन लिया हो तो नीचे आ जाओ। हण्डे में अदहन का पानी खौल रहा है, और नीचे आकर देखो तो कौन आया है?'' अम्मा ने नीचे आंगन से आवाज दी तो सुनेत्रा की तन्द्रा भंग हुई। वो जल्दी–जल्दी सीढ़ियॉ उतरते नीचे आयी। सामने आंगन में अम्मा–बाबू जी के सामने मचिये पर सत्यजीत को बैठे, हँस–हँस कर बतियाते देख उसके आश्चर्य का ठिकाना न था। वो तो मारे खुश के पागल हुई जा रही थी।

''अरे! आप कब आये? क्या ऑफिस से छुट्टी मिल गयी?''

''बस्स, अभी आया हूँ। दस मिनट हुए।''

''वाह! लेकिन अचानक कैसे?''

''एक्चुवॅली यहां आने के लिए जब मैं बॉस के पास छुट्टी मांगने गया तो, उन्होंने ही सुझाव दिया कि बनारस रिजनल ऑफिस में कुछ जरूरी काम है। आप ही चले जाइये। विभागीय गाड़ी लेते जाइये। दिन में काम निबटाइयेगा, फिर शाम को शादी अटैण्ड करते, अगले दिन वापस आ जाइयेगा।'' सुनेत्रा, सत्यजीत की बातें मंत्र–मुग्ध सी सुनती रही। सुनेत्रा को ये भी अंदाजा था कि सत्यजीत की ये बातें, बगल बैठे उसके अम्मा–बाबू भी सुन रहे हैं, जो शादी में सत्यजीत के न आ पाने के कारण उसे सुबह से दर्जनों बार कोस चुके थे।

''ठीक है, ये सब बातें बाद में हो जायेंगी। आपने सुबह से कुछ खाया–पिया भी तो नहीं होगा? आप तो वैसे भी बाहर का कुछ खाते–पीते नहीं। मैं अभी खाना लगा देती हूँ।''

''हाँ, भूख तो बड़े जोर की लगी है। पर दो जगह लगा दो। बाहर गाड़ी में ड्राइवर भी बैठा है।''

''ठीक है, आप हाथ–मुंह धोकर आ जाइये। मैं दो जगह खाना लगाती हूँ।''

'...धीरे–धीरे मचल ऐ दिले बेकरार कोई आता है...' गुनगुनाते हुए, सुनेत्रा भोजन परोसने की तैयारी में व्यस्त हो गयी।

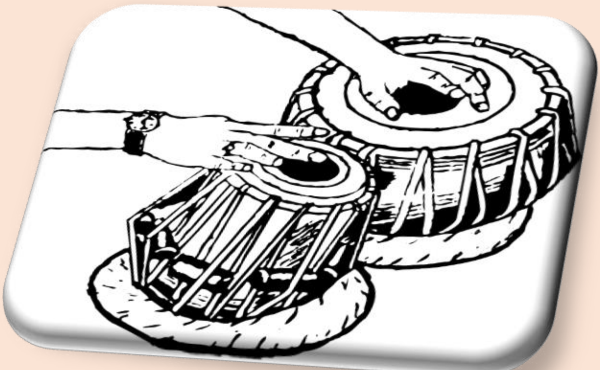

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

''जिन्दगी और कुछ भी नहीं, तेरी मेरी कहानी है...इक प्यार का नगमा है...''

''मुझे कुछ पूछना है?'' भोजन कर लेने के बाद, बाहर बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठे–बैठे, सत्यजीत ये गाना गुनगुना रहे थे कि अचानक पीछे से आकर सुनेत्रा ने पूछना चाहा।

''हाँ, बोलो?''

''ड्राइवर तो बता रहा था कि आप यहां किसी ऑफिशियल काम से नहीं आये हैं। प्राइवेट गाड़ी बुक कराकर, सिर्फ ये शादी ही अटैण्ड करने के लिए आये हैं?''

''अरे भई! तत्काल रिजर्वेशन नहीं मिला, तो सिर्फ यही एक उपाय बचा था।''

''और...बच्चों को किसके भरोसे पर छोड़ कर आये हैं?'' सुनेत्रा ने बनावटी गुस्सा दिखाते पूछा।

''गांव से भतीजे को दो दिन के लिए बुलाया है। दोनों बच्चे जब स्कूल गये होंगे, तो वो दिन–भर घर में रह लेगा। बिटिया तो हल्का–फुल्का खाना बनाना जानती ही है, फिर बेटे और भतीजे की मदद भी तो उसे मिल जायेगी। वैसे भी आजकल के बच्चे बहुत स्मॉर्ट हैं। 'फिकर–नॉट, टेन्शन नहीं लेने का पापा...।' चलते वक्त बेटे ने यही कहते मुझे आश्वस्त भी किया था। फिर शादी सम्पन्न होने के बाद, हम कल दोपहर तक वापस भी तो चले चलेंगे...'भेरी सिम्पल'। लोकल शादी–बारात का यही तो फायदा होता है। दोपहर तक सारे मेहमान, अपने–अपने घर।'' सत्यजीत ने तनिक शरारती अंदाज में कहा।

''अब मैं कैसे कहूं कि शादी में आकर, आपने मेरा मान रख लिया। मुझे आप पर गर्व है। अच्छा, अब बारात निकलने वाली है। सभी लोग तैयार हो रहे हैं, आप भी जल्दी से तैयार हो जाइये।''

''अरे भई! दामाद हूँ इस घर का। अब क्या कभी–कभार रिसियाने का भी हक नहीं? पर, तुम तो अच्छी तरह जानती हो, मैं किसी का दिल नहीं दुखाना चाहता। मैं भी हाड़–मांस का बना इन्सान हूँ। भावनाएं, इच्छाएं मेरी भी हैं। फिर, तुम्हारी मान–मर्यादा बनाये रखने का फर्ज, मेरा भी तो है। हाँ, लेकिन जल्दी–जल्दी में कोई तोहफा नहीं खरीद सका। ये कुछ रूपये हैं, इन्हें एक लिफाफे में रख

कर अपनी अम्मा को, हमारी तरफ से न्यौते में दे देना।'' सत्यजीत ने जेब से पर्स निकालते हुए कहा।

''आप इस शादी में शामिल होने के लिए स्पेशल–टैक्सी बुक कर के आये, मेरे और अम्मा–बाबू के लिए इससे बड़ा और कोई तोहफा हो ही नहीं सकता।'' सुनेत्रा ने सजल नयन कहा।

''तुम भी न...बड़ी वो हो। अरे भई! तुम्हें यहां आये छः दिन हो गये थे। तुम्हारे बिना घर काटने को दौड़ता है। घर के हर कोने–अंतरे में तो तुम्हारी उपस्थिति है। ऐसे में तुम्हें घर में न पाकर मुझ पर क्या बीत रही होगी, ये तुम कठकरेजी–पथरकरेजी क्या समझोगी? तुम्हें तो जैसे मेरी और बच्चों की फिक्र ही नहीं है। तुम तो यहॉ मायके में अपने अम्मा–बाबू, बहन–बहनोईयों संग गुल–गपाड़ा बतियाती, मस्ती कर रही हो। लेकिन मुझे तो तुम्हारी फिक्र है ना! तुम्हारे यहॉ आने के बाद, परसों जब मैं बेडरूम में लेटा था, तो अचानक मेरी निगाह सामने ड्रेसिंग–टेबल पर रखी हम दोनों की एक पुरानी तस्वीर पर चली गयी। याद है...जब हम एक–डेढ़ वर्ष पहले, अपने एक रिश्तेदार के रिशेप्सन में गये थे, तभी हमने वो सेल्फी ली थी। उस तस्वीर में हम दोनों इतने सुन्दर और मुस्कुराते दिख रहे हैं कि उसे देखते तुमने कहा भी था कि ''हम सदा ऐसे ही मुस्कुराते, साथ–साथ बने रहेंगे। अगर हम किसी बात पर कभी नाराज भी हुए, तो ये तस्वीर हमें खुद–ब–खुद एक–दूसरे के मान–मनौव्वल के लिए मजबूर कर देगी।'' बीती रात फिर मेरी नजर उस तस्वीर पर चली गयी, और आज मैं यहां...तुम्हारे सामने।'' सत्यजीत ने लगभग मजाहिया मूड में, किसी फिल्मी हीरो की भांति अपने दोनों हाथ सुनेत्रा के सामने फैलाते हुए कहा।

''वाह! फिर तो हमें उस तस्वीर का शुक्रिया अदा करना चाहिए। चलिए, कम–अज–कम लिखने–पढ़ने का आप पर इतना तो 'साइड–इफेक्ट' हुआ कि अब आपको थोड़ी–बहुत अक्ल आ गयी है, तभी तो आप समझदारी भरी बातें करने लगे हैं...हें–हें–हें। मुझे सचमुच आप पर गर्व है। आज आपने मेरा मान रख लिया।''

''मेरा नहीं...हमारा मान कहो। अरे भई! तुमने कहा जो था... 'मेरे आने से चार लोगों के बीच हम सब का मान–सम्मान ही बढ़ेगा।' तभी तो, तुम्हारी इच्छा को आदेश मानते, शिरोधार्य करते, तुम्हारे सामने हाजिर हो गया। वैसे, यहां न आता...तो जाता भी कहां...? वो

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कहावत है न...'भइल बियाह मोर करबा का...?' हें–हें–हें।'' सत्यजीत की बातें सुन सुनेत्रा लजा सी गयी। उसकी आँखें खुशी से भर आयीं।

'घोड़ी पे हो के सवार...चला है दूल्हा यार...'...अहाते के बाहर बैण्ड–बाजा वालों ने ये सार्वकालिक मधुर धुन छेड़ दी थी।

फार्म – 4

समाचार पत्र पंजीयन केन्द्रीय कानून 1956 के आठवें नियम के अन्तर्गत **'मधुराक्षर' त्रैमासिक पत्रिका** से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण–

1. प्रकाशन का स्थान : **जिला कारागार के पीछे,**
   9 ब, मनोहर नगर,
   फतेहपुर (उ.प्र.) 212601
2. प्रकाशन की आवर्तिता : **त्रैमासिक**
3. प्रकाशक/मुद्रक का नाम : **बृजेन्द्र अग्निहोत्री**
4. राष्ट्रीयता : **भारतीय**
5. सम्पादक का नाम : **बृजेन्द्र अग्निहोत्री**
   राष्ट्रीयता : **भारतीय**
   पूरा पता : **जिला कारागार के पीछे,**
   9 ब, मनोहर नगर,
   फतेहपुर (उ.प्र.) 212601
6. कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक
   शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता : **स्वत्वाधिकारी**
   बृजेन्द्र अग्निहोत्री

मैं **बृजेन्द्र अग्निहोत्री** घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं।

–बृजेन्द्र अग्निहोत्री

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कहानी

✍
डॉ. कृष्णा खत्री
एकोलेड सोसाइटी, ठाणे, महाराष्ट्र
krishna1951khatri@gmail.com

कमीशन

मदन और शंकर दोनों एक ही ऑफिस में काम करते थे। सीनियर क्लर्क के पद पर कार्यरत थे। शंकर अपने काम से काम रखता, बाकी कुछ अलग से करना उसके बस में नहीं था। वह अपनी फाइलों में लगा रहता। पता नहीं क्यों... उसका काम खत्म ही नहीं होता था। जो भी हो, अपना काम ईमानदारी से करता, उसकी ईमानदारी की मिसाल लोग देते थे। काम में कभी कोई गलती भी नहीं निकलती थी। दोनों की पगार भी समान थी। पडोस में भी रहते थे। मगर घर का रख–रखाव रहन–सहन तौर तरीकों में जमीन–आसमान का अंतर था। दोनों के बच्चे भी एक ही स्कूल में पढ़ते थे, स्कूल बस में जाते

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

थे। लेकिन मदन का सब उल्टा यानी कि काम में भी कई बार गलतियां होती थी, शंकर से ठीक कराता था। शंकर अपनी और उसकी फाइलों के साथ दो–दो हाथ होता रहता।

मदन ऑफिस में पॉपूलर भी बहुत था। घर का स्टैंडर्ड हाई–फाई था ही। हालांकि पीठ–पीछे लोग बुराई भी करते। वैसे उसे चलता–पुर्जा कहा जा सकता है। कारण– किसी का कोई भी काम इस ऑफिस में हो या कहीं और किसी सरकारी महकमे मे ंहो, उसके बायें हाथ का खेल था। लेकिन बदले में पैसा भी लेता। जिसे वह अपना मेहनताना कहता, फीस कहता। जाने कितने लोग उसे पहचानते–जानते थे। ऑफिस वाले उसके सहकर्मियों का मानना था कि यह रिश्वत है और हम सबका नाम खराब कर रहा है। कुछ लोग उससे कहते भी, लेकिन वो अपनी सफाई देता– 'अपनी ड्यूटी के बाद ही बाहर का काम करता हूँ। हाँ, अगर यहां का होता है तो ऑफिस आवर्स में करता हूँ, लेकिन बाहर का काम मैंने कभी भी ड्यूटी के वक्त नहीं किया।'

लोग उससे भयंकर ईर्ष्या करते थे, कहते– 'हम भी तो दिन भर काम करते हैं, फिर हमारा कुछ क्यों नहीं बन पाता है।'

कुछ लोगों ने एक दिन मदन की बॉस से शिकायत कर दी। बॉस ने कहा– 'ठीक है, मैं जांच करूंगा।'

जांच तो क्या खाक करता। ये सब तो उसे के साये तले होता था, जिसमें उसका भी हिस्सा था, जिससे लोग अनभिज्ञ थे। इसलिये लोग उसके पास गये थे। खैर, सब तो चलता ही है। फिर भी वे लोग जलते–भुनते, कमेंटस करते– 'रिश्वतखोरी को मेहनताना और फीस कहता है। सच पूछे तो काम की जल्दी मचाने वाले ही रिश्वतखोरी को बढ़ावा देते हैं।' कुछ ये भी कहते– 'बात तो उसकी सही है। हममें ही काम करने की अकल नहीं है, तो हम उससे क्यों जलें।' फिर वापस दूसरी पार्टी के उद्गार होते– 'हमको इसका बहिष्कार करना चाहिये। तब इसे पता चलेगा, तभी इसकी अकल ठिकाने पे आयेगी।'

'अरे भाई, क्यों अपना दिमाग खराब करते हो! जाने दो– जैसी करनी, वैसी भरनी। अगर वो गलत काम कर रहा है, तो कब

तक बचेगा। कहते हैं ना– आखिर बकरे की मां कब तक खैर मनायेगी!'

हरीश दो दिन चुप रहता, फिर चालू हो जाता। उसके दिमाग के कीड़े कुलबुलाने लगते। एक दिन कमलाजी ने कहा– 'हरीश, जिसे जो करना करे। हमें बीच में मत घसीटो। अरे, हमारी अपनी परेशानियां कम हैं, जो मदन वाला पंगा भी अपने सिर पे ले लें।'

तो सबने कहा– 'मॅडम एकदम सही कह रही हैं। भाई, हमें इस पचड़े में नहीं पड़ना।'

हरीश अपना–सा मुह लेकर रह गया। पर उसे मदन का भांडा तो फोड़ना ही है, वो भी रंगे हाथों! उससे रहा नहीं गया तो उसने फिर बॉस के पास शिकायत की। बॉस बोले– 'अरे भई जांच चल तो रही है, पर तुम लोग भी ना!' मदन को बुलाया और सारी बातें सामने रखी।

'सर, मैं भी सब जानता हूँ। ये पता नहीं क्यों खुनस खाये बैठे हैं। मैं तो अपना काम करता हूँ। यह मेरा साइड बिजनिस है। खुद तो कुछ कर नहीं पाते हैं, इसलिये मुझसे जलते है। आप तो सब जानते ही हैं सर! आज मैं सबके सामने एलान करता हूँ– लोगों के रुके हुए, यूं ही फंसे हुए काम करा देता हूँ। बदले में अपनी फीस लेता हूँ। ...फिर मैं ऑफिस आवर्स के बाद ये सारे काम करता हूँ। ...इस ऑफिस पे आपसे पहले जो साब थे, तब का.... वो मैं ऑफिस आवर्स में करता हूँ... है तो वो ऑफिस का काम, जो जाने कौन–कौन सी फाइलों मे दबा पड़ा होता है, वो फाइलें भी ड्यूटी के बाद करता हूँ। पीयून धर्मा इसका गवाह हैं, आप उसे बुलाकर पूछ सकते हैं।'

उसे भी बुलाकर पूछ लिया। सारी खाना–पूर्ति पूरी कर ली। बॉस तो पहले से ही सबकुछ जानता ही था। यहां से पुराने काम से जो पैसे मिलते, वो आधा लेता और बाहर वाले कामों का टेन परसेंट लेता था।

'अब बताइये– यह रिश्वत है या अपने काम का मेहनताना, जो मैं ड्यूटी आवर्स के बाद में करता हूँ। खैर, आपको जो समझना है, समझें! मैं अपना काम मेहनत और ईमानदारी से करता हूँ। बदले में पैसे लेता हूँ। सर, अब मुझे इजाजत दीजिये।'

'यार, बात तो तुम्हारी सोलह आने सच है। ठीक है, जाओ। अपने लेवल पे सब हॅन्डल करो।'

'ओ.के. सर!' कहकर निकल जाता है।

बॉस सबसे पूछता है– 'अब आप लोगों का समाधान हुआ ? भाई, मुझे तो इसमें कोई बुराई नहीं लगी। जैसे कोई दूसरा काम, ऑफिस के बाद करता है, वैसे ही यह... फिर क्या प्रॉब्लेम है ? आप लोग अब आगे से बिना सोचे–समझे शिकायत करने मत आ जाना।'

मदन तो पहले ही आ गया था। बाकी सब भी बाहर आ गये, असंतुष्टि का भाव लिये।

मदन सभी से मुखातिब होता है– 'देखिये, मैं आपके पांच मिनट से ज्यादा नहीं लूंगा। जो आपकी शिकायत है, बताइये.... फिर मैं अपकी समस्याओं का समाधान करूंगा!'

हरीश गुस्से से भरा चिल्लाया– 'तुम रिश्वतखोर हो, सब जानते हैं। मगर कोई आगे आना नहीं चाहता। कौन बैठे बिठाये पंगा ले।'

'तो तू क्यों लेता है मेरे भाई। देखो हरीश, मेरा लॉजिक क्लियर है। पब्लिक के लम्बे अर्से से अटके हुए काम करवाता हूँ। ये काम अलग–अलग डिपार्टमेंट के होते हैं। उन कार्यों को ढूंढ–ढांढ के करा देता हूँ, बिना किसी परेशानी के... तो बदले मे पैसे ही तो लेता हूँ। मैं इसे रिश्वत नहीं मानता...। रिश्वत वो है, जो अपने रोज के रूटीन कामों के पैसे लेकर पूरा करे। फिर मेरे वे काम इसी ऑफिस के नहीं हैं, अन्य कार्यालयों से भी काम करवाने पड़ते हैं, फाइलें ढूंढनी पड़ती हैं। इसमें मेरी मेहनत मेरा समय और मेरा परिवार... सब सफर करते हैं। फिर ये सारे काम मैं अपनी ड्यूटी के बाद करता हूँ। इस तरह अगर अतिरिक्त समय पे काम करें तो रोज ऐसे फोकट में धर्मार्थ करोगे क्या ?'

काफी लोगों ने उसकी बात को सपोर्ट किया– 'अपनी मेहनत और समय रोज का कौन फोकट में देगा! यह इसका स्किल है, करता है। हममें नहीं, इसलिये हम नहीं कर पाते। रस्तोगी सर भी तो साइड में करते थे, जो अब नहीं रहे!'

'मैंने उन्हीं से तो प्रेरणा ली है। फिर बहुत से लोग अपनी–अपनी रुचि और योग्यता अनुसार पार्ट टाइम काम करते हैं, तुम भी करो। क्या तुम फ्री में काम करोगे ? ईमानदारी से जवाब देना।'

वह कुछ नहीं बोला, क्योंकि सारे लोगों ने चुप्पी साध ली थी। सब अच्छी तरह समझ रहे थे। एक तरफ रिश्वत समझ रहे थे तो दूसरी तरफ मदन की बात बिलकुल सोलह आने सच लग रही थी।

'सच में अपनी मेहनत और समय के पैसे ले रहा है, तो क्या बुराई है ? फिर यह रिश्वत कहां हो गई।'

'इसका मतलब यह कि हम लोग रिश्वत को बढावा दे रहे हैं। तभी तो आप लोग गलत को भी सही बना बैठे हैं।'

कमलाजी ने कहा– 'यह बात अलग है कि मैं किसी पचड़े में नहीं पड़ना चाहती, पर इसका मतलब यह नही कि गलत को सही मानकर स्वीकार कर लूं! हरीश भाई, मैं आपकी बात से सहमत हूँ, पर मैं कुछ भी नहीं करना चाहती और ना ही कहना चाहती।' बाकी कुछ लोगों ने कमलाजी की हाँ में हाँ मिलाई। कुछ लोगों की दृष्टि में मदन गलत नहीं था। लंच टाइम हो गया। तब भी यही चर्चा... बाद में सब सोच रहे थे।

मदन पता नहीं किस कारण से छुट्टी लेकर निकल गया था। पर लोगों की सोच का सिरा मदन ही था– अब रिश्वत को सही साबित करने के लिये फीस, कमीशन या मेहनताना कह लें... अपनी तसल्ली के लिये। फिर लोग भी तो अपना रुका हुआ काम पैसे देकर करवाते है।

एक दिन मदन का क्लाइंट हीरालाल आया। तब मदन सर के पास गया हुआ था। हरीश ने उनसे बात की– 'आप लोग पैसे देकर काम करवाते हैं, रिश्वत को बढ़ावा दे रहे हैं।'

'जी नहीं, बिलकुल नहीं! कई जगहों पर हमारे काम की फाइलें अटकी पड़ी होती हैं। बरसों बीत जाते हैं, मगर काम नहीं हो पाता। मदन की पहचान है, वो अपना समय और जो भागदौड़ करता है अ़ौर उसकी कोशिशों से हमारा काम हो जाता है। हम बदले में पैसे देते हैं। महीनों–सालों का काम वो दिनों में करवा के देता है। .

..चलिये, मैं आपको देता हूँ। आज से आप कीजिये, करेंगे ? आप तो एक पैसा भी नहीं लेंगे!'

'मैं कैसे कर सकता हूँ! यह तो घूसखोरी का काम हुआ!'

'मैंने कहा ना– आप नही लेंगे... तो घूस कहां हो गई।'

हरीश चुप हो गया तो हीरालाल ने फिर से कहा– 'देखिये, एक और बात... जो राशि हम मदन को देते हैं, काम के लिये। उसका काम में हमें कई गुना फायदा होता है। इसलिये प्लीज, आप इस प्रकार की बातें मत कीजिये! वो बंदा अपने आफिस आवर्स में काम करता नहीं तो रिश्वत का सवाल ही नहीं उठता, यह उसका मेहनताना ही है। फिर मुनाफे के दो प्रतिशत पर उसका हक बनता है।'

हरीश का समाधान नहीं हुआ, सो नही हुआ। सोचा– ये सब रिश्वत को सही कह रहे हैं। मैं कन्ज्यूमर कोर्ट में उसकी शिकायत करूंगा। देखता हूँ कैसे...! और सच में उसने कर ही दिया।

मदन को बुलाया गया। वह हाजिर हुआ। पूछने पर उसने वही सब दोहरा दिया, और साथ में गवाह के रूप में हीरालाल को बुलाया। उसने भी मदन का पक्ष लिया। इसके अलावा भी अपनी बात सही साबित करने के लिये कई उदाहरण दिये। कन्ज्यूमर कोर्ट का जज भी चक्कर खा गया। उन्हें भी मदन का कान्सेप्ट एकदम क्लियर लग रहा था। मदन ने आखिर मे अपनी बात को सही कहा– 'सर, यह रिश्वत नहीं मेरे काम का कमीशन है। आप फीस भी कह सकते है। और हाँ, अगर मैं अपने रोजमर्रा के कार्यालयीन कामों के पैसे लेता तो बाकायदा रिश्वत होती। फिर मेरे दो प्रतिशत में एक प्रतिशत जहां काम होता है, वहां देना पड़ता है, उसे आप रिश्वत कह सकते हैं, मेरे मेहनताने को नहीं। ...आप हर तरह से जांच करा सकते हैं, मैंने दो प्रतिशत से ज्यादा एक पैसा भी नहीं लिया।'

हीरालाल ने फिर उसकी बात का समर्थन किया।

जज ने अपने फैसले में कहा– 'यहां अगर रिश्वत मान भी लें तो यह तरीका रिश्वत का नहीं। सच में इसे कमीशन या फीस या फिर मेहनताना कहा जा सकता है, लेकिन कमीशन सही है।'

मदन को निर्दोष करार दिया गया। हरीश का अभी भी समाधान नहीं हुआ। गुस्से में पांव पटकता हुआ कहता है– 'कमीशन! माय फुट!'

अपनी कृतियों के प्रकाशन हेतु संपर्क करें...

लागत आपकी, श्रम हमारा!
75 फीसदी प्रतियाँ आपकी, 25 प्रतिशत हमारी!!

विशेषः

आपकी कृतियों व उन पर विद्वानों द्वारा लिखित समीक्षाओं द्वारा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में व्यापक प्रचार।

मधुराक्षर प्रकाशन

जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर फतेहपुर (उ0प्र0) 212 601
www.madhurakshar.com
+91 9918695656, 8001743434

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कहानी

डॉ. विकास कुमार
अमगावाँ, शिला, चतरा, झारखण्ड–825401
vikash346@gmail.com

समय का फेर

आज सीता देवी उस दहलीज पर खड़ी थी, जहाँ उसे किसी का कृपा–पात्र बनने की आवश्यकता नहीं थी। उनके दोनों बेटें, अपने–अपने पैरों पर खड़े हो चुके थे। बड़ा लड़का रवीन्द्र आकाशवाणी रांची में बतौर सहायक उद्घोषक नियुक्त हो चुका था और छोटे लड़के कवीन्द्र विश्वविद्यायल सेवा आयोग द्वारा चयनित होकर व्याख्याता पद प्राप्त कर चुका था।

लगभग आठ वर्ष पूर्व वह अपने कृषक पति खिरोधर कुशवाहा को एक सड़क हादसे में खो चुकी थी। खिरोधर कुशवाहा, पहले तो एक सामान्य कृषक थे, सात भाई–बहनों में सबसे बड़े, अपने छोटे भाई–बहनों की पढ़ाई–लिखाई से लेकर शादी–ब्याह के बोझ तले, दबे एक जुझारू व्यक्ति, जिन्होंने अपनी जिन्दगी को संघर्ष के हवाले

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कर रखा था। पिताजी की बदहाली हालत और पढ़े–लिखे, नौकरी–पेशा वालें चाचाओं के बेमानी चरित्र ने उन्हें निःशस्त्र करके छोड़ा था। फिर भी खिरोधर कुशवाहा ने अपनी सूझ–बूझ की बदौलत अपने परिवार को पटरी पर ला खड़ा किया था। उन्होंने घर से बाहर आ–जाकर, कृषि वैज्ञानिकों की मदद से खेती–बाड़ी के नये तौर–तरीकों को सीखा था और फिर भी न सिर्फ अपने परिवार को, बल्कि अपने पूरे गांव–समाज के बेरोजगार युवकों को कृषि का पाठ पढ़ाना शुरू किया था। उसका गांव, जो एक समय में अनाज के अभाव में भुखमरी का शिकार हो जाया करता था, वह कालांतर में समृद्ध हो चुका था। उनके योगदानों को ध्यान में रखते हुए झारखंड के राज्यपाल ने उन्हें कृषक पद्मश्री अवार्ड से नवाजा था और साथ–ही–साथ पांच लाख रुपये की प्रोत्साहन राशि भी प्रदान की थी।

खैर, इतने बड़े सम्मान के बावजूद खिरोधर कुशवाहा की हैसियत एक सामान्य कृषक के जैसा ही था, उनके हित–संबंधियों के नजरों में। उनके ससुर सी०सी०एल० में नौकरी करते थे। बड़े साढ़ू गोपेश्वर कुशवाहा तापीन कोलियरी में हेड क्लर्क की भूमिका में अपनी सेवा दे रहे थे। छोटे साढ़ू लक्ष्मण कुशवाहा पुलिस विभाग में हवलदार थे। संझले साढ़ू कुलदीप मौर्य कोयला के व्यवसायी थे। अपने साढुओं में मंझले रहे खिरोधर कुशवाहा और उनकी पत्नी सीता देवी उनकी उपेक्षाओं के बावजूद अपने कर्म में चार–चांद लगा रहे थे।

मगर नियति के आगे किसका बस चलता हैं। अगर किसी की किस्मत ही फूटी हो तो इसमें कोई क्या कर सकता है। आज से आठ वर्ष पूर्व खिरोधर कुशवाहा किसी व्यक्ति की सहायता के लिए सिमरिया जाने के क्रम में भीषण दुर्घटना में हादसे का शिकार हो गये थे और तत्क्षण वहीं उनकी मृत्यु हो गयी थी। उसके बाद से समय ने ऐसी करवट बदली और विपत्ति की छत सीता देवी के सिर पर गिर पड़ी थी। अपने हित–संबंधी, जो कभी–कभी अपने होने की दुहाई दिया करते थे, आज वे धीरे–धीरे बेगाने होने शुरू हो गये थे। एक

कहावत भी है– तेल लगे सर पर ही तेल लगता है और यहाँ तो सीता देवी के सर पर तेल का नामोनिशान नहीं था।

सीता देवी को वह दिन भी याद है, जब उसके छोटे लड़के कवीन्द्र के हाथों में उनके दोनों जीजा गोपेश्वर कुशवाहा और लक्ष्मण कुशवाहा स्व० खिरोधर कुशवाहा के काम–क्रिया और भोज हेतु एक–एक हजार रुपये हाथ में थमाकर अपने कर्तव्यों से विमुख हो गये थे। उस वक्त टूटकर रह गये थे कलेजे सीता देवी और उसके दोनों बेटों के। ...जहाँ काम–क्रिया और भोज में लाख–सवा लाख रुपये खर्च होने थे, वहाँ मात्र एक हजार रुपये की मदद से क्या हो सकता था। ...अगर मदद हीं करना था तो ढंग से मदद करते, मदद की ढोंग करने की क्या जरूरत थी।

एकबारगी कवीन्द्र ने उन पैसों को लेने से इंकार करते हुए कहा था, 'मौसा जी! मुझे मदद की आवश्यकता नहीं है। हम सक्षम है, पिताजी के क्रिया–क्रम के लिए।' पर किसी बुजुर्ग संबंधी के कहने पर कि इस प्रकार की मदद में मना नहीं किया जाता है। इसे रख लो।

बेमन से कवीन्द्र ने उन पैसों को अपने जेब में डाल लिया था, इस प्रण के साथ की आज आपलोगों ने हमारी औकात सिर्फ और सिर्फ एक हजार रुपये के लायक समझी है न? ...अगर आपको लगता है कि पिताजी के मरने के बाद हम सब आपलोगों के समक्ष मदद की भीख मांगने जाएंगं तो ऐसा कभी नहीं होगा।

सीता देवी को यह भी याद है कि चतरा शहर की जमीन की खरीददारी हेतु कुछ पैसों की मदद मांगने गये थे उनके पति। बड़े साढ़ू गोपेश्वर कुशवाहा जो कि तामीन कोलियरी में बड़ा बाबू थे, उन्होंने सिर्फ उतने ही पैसे दिये, जितने कि पांच साल पूर्व खिरोदर कुशवाहा ने उनकी बड़ी बेटी के शादी में मदद की थी और यह कहकर मुँह मोड़ लिया था कि खिरोधर बाबू! आप तो जानते ही हैं कि हमलोगों की 'तन्खा' कितनी कम है, उसपर में दो बच्चों की पढ़ाई–लिखाई का खर्च और घर चलाना, बड़ा मुश्किल होता है। ...

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

और आप तो देखें ही हैं कि बेटी की शादी में कितना खर्च हुआ है। ...अरे आपलोग तो खेती–गृहस्थी करके साल भर का अनाज पैदा कर लेते हैं। कम से कम अनाज तो नहीं खरीदना पड़ता है। हमलोग तो इसी के सहारे हैं न! सब कुछ 'तन्खा' के पैसों से ही करना पड़ता है।'

खिरोधर कुशवाहा सन्न रह गये थे। मतलब कि हम खेती–किसानी करके इनकी लड़की की शादी में दस हजार की मदद किये थे, जो कि एक सीजन की कमाई जमापूँजी थी और अपना वक्त आया तो गिरगिट की तरह रंग बदलने लगे। ...और जब भांजते हैं तो पैर जमीन पर नहीं रहता है। सीना चौड़ा करके घूमते हैं कि हम नौकरी कछारी वाले हैं, हमारे सामने किसी का क्या वेल्यू है। ...मन मसौसकर वे अपने दिये हुए दस हजार रुपयों को लेकर वापस आये थे।

उसी तरह छोटे साढ़ू लक्ष्मण कुशवाहा, जो पुलिस विभाग में हवलदार थे और जिनका चाल–चलन और ऐंठन तो ऐसा था, जैसे कि एस० पी० ही हो। उन्होंने भी खिरोधर बाबू को एक टूक में हीं जबाव दिया, 'साढ़ू जी, हमलोग की नौकरी तो बाहर से ठसक वाली है, पर अंदर से बड़ा नाजूक है। 'तन्खा' इतनी कम है कि हमलोगों को दोनंबरी करनी पड़ती है। अगर दा`नंबरी काम नहीं करें तो परिवार चलाना मुश्किल हो जाए। आपको तो पता ही है कि मेरी तीन बेटियाँ भी है, उनकी पढ़ाई–लिखाई और परवरिश का खर्च और फिर बाद में दान– दहेज। आप तो जमाने को जान हीं रहे हैं।'

खिरोधर बाबू ने उन्हें आश्वत भी किया था कि 'आप चिंता नहीं कीजिए। आपकी बेटी भी मेरी बेटी के समान ही है। उसकी शादी की चिंता हमें भी होगी। समय आयेगा तो हम मदद भी करेंगे।'

'अरे आप क्या मदद कीजिएगा। खेती किसानी से कितनी आमदनी होती है? ज्यादा से ज्यादा पांच सात हजार दीजिएगा और क्या कीजिएगा। ...इतने में क्या होगा।' मुँह चिढ़ाकर बोलें थे हवलदार बाबू।

खिरोधर कुशवाहा झेंप से गये थे– सही ही कह रहे हैं, खेती किसानी करने वाला क्या मदद कर सकता है! वहाँ से भी खाली हाथ लौटना पड़ा था उन्हें।

उनके कोयला व्यवसायी साढ़ू कुलदीप मौर्य ने भी कुछ ऐसा ही रोना रोया था, 'साढ़ू जी! ...आपको तो पता ही है कि कोयला का धंधा दूनंबरी धंधा है। जितना फायदा होता हैं, उससे ज्यादा तो ये पुलिस वाले ही भकोस जाते हैं। बार–बार जेल भेजने की धमकी देते है। ...बड़ी मुश्किल से पारिवारिक खर्चा निकल पाता है। ...अब आप ही बताइए, जिसकी हालत इतनी खराब हो वो क्या मदद कर सकता है।'

अब अपने ससुरारी टोला में एक और आशा बची हुई थी– अपने ससुर की। परंतु ससुर साहब भी वही राग अलापना शुरू कर दिये थे बल्कि जमकर सुना भी गये थे, 'खिरोधर बाबू आपको तो पता ही है कि मैंने चार–चार बेटियों की शादी कैसे की। उसपर में दो बेटों को हजारीबाग जैसे महंगे शहर में रहकर पढ़ाना कितना खर्चीला होता है। ...ऐसे में हम आपकी क्या मदद कर सकते हैं। वैसे भी, आप तो खेती किसानी करते हैं। किसान को तो गांव से ही मतलब होना चाहिए। शहर में जमीन खरीदकर क्या खेती कीजिएगा? चुपचाप से गांव में रहिये और खेती–बाड़ी कीजिए।

लीजिए, एक तो मदद के नाम पर कुछ भी नहीं करना है और मुफ्त में सलाह दे रहे हैं। अरे भाई! मदद नहीं करना है तो मत कीजिए, मगर हतोत्साहित तो नहीं कीजिए। जमाना बदल रहा है। गांव के और भी लोग शहर में जमीन खरीद रहे हैं, वो सभी मूर्ख हैं क्या! हम भी एक कट्ठा जमीन ले रहे हैं तो इसमें क्या हर्ज। वहाँ से भी खिरोधर बाबू झुंझला कर बैरंग वापस आ गये थे।

अंत में बड़े ही संकोच के साथ वे अपनी छोटी बहन और बहनोई के यहाँ मदद मांगने के लिए पहुँचे थे। आमतौर पर बड़ा भाई, बहन के यहाँ कुछ देने के लिए ही जाता है, पर पहली बार वे कुछ लेने के इरादे से गये थे। बहन फुलवा देवी का विवाह भी खिरोधर

कुशवाहा ने दो लाख दहेज देकर हेसागढ़ा कोलियरी में काम करने वाले लड़के से किया था, ताकि बहन को कोई तकलीफ नहीं हो, पर बहन भी औरों से बीस ही निकली। कहने लगी, 'भईया! हमारे तीन बच्चे हैं, रांची के महंगे स्कूलों में पढ़ते हैं। होस्टल में रहते हैं। उनके खाने–पीने और उनकी पढ़ाई–लिखाई में सारा खर्च हो जाता है। ऐसे में आपकों मदद करना मुश्किल है। ...और यदि पैसों की ज्यादा जरूरत है तो इनसे कहुंगी, तो वे बैंक से लोन लेकर दे सकते है, मगर...।' कहते–कहते वह रूक गई थी।

'मगर! ...मगर क्या?' खिरोधर बाबू बोल उठे थे।

'देखिये भईया! ...आपका दोनों बेटा तो गांव के स्कूल में पढ़ता है, वहीं से चतरा कॉलेज भी जाकर पढ़ाई कर लेगा। ...फिर भी उन्हें तो नौकरी तो करनी ही नहीं है, करना तो है अंत में खेती किसानी ही। फिर भी चतरा शहर में जमीन किस काम की? ...अब देखिए मेरे तीनों बच्चे शहर में पढ़ रहे हैं और नौकरी भी शहर में ही करेंगे। फिर भी उन्हें भी घर–बार की जरूरत होगी। यदि ऐसा करते कि जो जमीन आप खरीदने वाले हैं, वो मेरे नाम से खरीद दें तो हम उनसे बात कर सकते हैं।'

'जमीन! ...तो तेरे नाम से? फिर बाद में जमीन तो तुम्हारी ही हो जाएगी। मेरे बच्चों के लिए क्या रहेगा? ...छोड़ों तुम अपना पैसा अपने ही पास रख लो। किसी और से मदद ले लेंगे।' यह कहकर वे शीघ्र ही अपने घर वापस लौट आये थे। अभी तक तो किसी के बात से इतनी तकलीफ नहीं हुई थी, जितनी अपनी छोटी बहन फुलवा की बोली से हुई थी...। क्या सोचकर उन्होंने अपनी पांच साल की खेती किसानी से कमाये पैसे लगाकर एक नौकरी वाले लड़के से शादी करवायी थी, और क्या निकली? मतलब की पूरा बदल गई थी। दो पैसा क्या हो गया, अपने आपको बड़का धनवान समझने लगी। लोग ठीक ही कहते हैं कि आदमी के पास जब पैसों की गरमी चढ़ती है, तो उसकी नजर भी मोटी हो जाती है। मेरी बहन फुलवा की नजर भी मोटी हो गयी है, जो मेरे ऐहसान को भूल गई है। खैर...।

फिर भी वे चतरा शहर के जमीन के अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे। क्योंकि उन्हें पता था कि अबकी बार चूक गये तो चतरा शहर में फिर कभी भी जमीन नहीं ले पाएंगे। ...अंत में उन्होंने कुछ पैसे बैंक मैनेजर को पटाकर लोन के रूप में जुगाड़ किये और पत्नी सीता देवी के गहनों को सुनार के पास गिरवी रखकर बहुत मुश्किल से चतरा शहर की जमीन खरीदी थी।

आज उसी चतरा शहर की जमीन पर दो मंजीला इमारत खड़ी है। सीता देवी ने गृह प्रवेश का कार्यक्रम बड़े ही भव्य तरीके से आयोजित किया था। रवीन्द्र और कवीन्द्र ने भी व्यवस्था में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। उनके सभी सगे–संबंधियों के साथ–साथ, रवीन्द्र के आकाशवाणी कार्यालय वाले लोग और कवीन्द्र के महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय से लोग आमंत्रित थे। सभी भोजन से तृप्त हो रहे थे और खुले मन से सीता देवी को बधाईयां तथा रवीन्द्र और कवीन्द्र को आशीर्वाद दे रहे थे।

यह सब देखकर सीता देवी का सीना गर्व से चौड़ा हो रहा था। ...और जो सगे संबंधी उनके पति और खुद उन्हें भी अपने से दीन–हीन समझने की कोशिश किये थे, वे आत्मगलानि से भर गये थे।

बड़े जीजा जी गोपेश्वर कुशवाहा और छोटी बहन के पति लक्ष्मण कुशवाहा भी अपने दलबल के साथ इस आयोजन में शरीक होने आये थे। उन्हें एहसास हो गया था कि सीता देवी अब किसी भी मामले में किसी से कम नहीं है, बल्कि अब तो वह बीस हो गयी है।

भोजन ग्रहण करने के बाद गोपेश्वर कुशवाहा सीता देवी को बधाई देते हुए बोले थे, 'सीता! ...अब जो हुआ सो हुआ। सब गिला–शिकवा भूला दो। अब हम लोग भी तुम्हारे घर बराबर आते–जाते रहेंगे। तुम भी बेटा–बहुओं के साथ हमलोगों के घर आती–जाती रहना।'

...अब आया ऊंट पहाड़ के नीचे। कल तक तो हमारा कोई वेल्यू नहीं था– अपने इन्हीं सगे–संबंधियों के बीच, फिर आज अचानक से इतना वेल्यू?

सीता देवी समझ चुकी थी कि सब समय का फेर है। जब समय खराब रहता है, तो अपने भी बेगाने की तरह व्यवहार करने लगते हैं और समय ठीक हो जाता है तो बेगाने भी अपने हो जाते हैं।

उसने मुस्कुराते हुए सहमति में सिर्फ अपना सर हिला दिया था।

–0–

कसक

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-0-3

संस्करण : 2014, मूल्य : 180/-

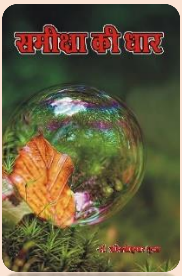

समीक्षा की धार

डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल

आईएसबीएन : 978-81-929060-3-4

संस्करण : 2014, मूल्य : 180/-

कहानी

डॉ. सुनीता जाजोदिया
विमेंस क्रिश्चियन कॉलेज, चेन्नै
dr.sunitajajodia@gmail.com

सुरक्षा

अविनाश ने जोर से ब्रेक लगाया तो प्रियंका ने उसे कसकर पकड़ते हुए पूछा, 'क्या हुआ ?'

'उतरो, सूटकेस गिर गया है।'

अविनाश ने कहा तो स्कूटर से उतरकर प्रियंका ने देखा कि बीच सड़क पर पड़े उस बैंगनी रंग के सूटकेस को एक युवक ने तेजी से अपने हाथों में उठा लिया है। स्कूटर के करीब आकर उसने वह सूटकेस अविनाश को थमा दिया। अविनाश ने उस भले युवक का शुक्रिया अदा कर स्कूटर पर बैठते हुए सूटकेस को अपने दोनों पैरों के बीच अच्छी तरह फंसा लिया था।

'एक बार देख लो कहीं से टूटा तो नहीं ?'

'मेरा खरीदा गया सूटकेस एकदम टिकाऊ है प्रिये मेरी तरह। चलो जल्दी बैठो, कहीं गाड़ी न छूट जाए।' अविनाश के इस जवाब पर वह मुस्कुराते हुए स्कूटर पर बैठ गई। दिल से तो वह यही चाह

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

रही थी कि गाड़ी छूट जाए किंतु जिस तेजी से स्कूटर सड़क पर दौड़ रहा था उसे विश्वास हो गया था कि गाड़ी नहीं छूटेगी। गाड़ी छूटने में बहुत कम समय था, इसलिए कार के बजाय स्कूटर से स्टेशन छोड़ना अविनाश ने उचित समझा था। वह जा तो रही थी किंतु अभी भी उसके मन में दुविधा थी कि वह सेमिनार में जाए या नहीं।

स्टेशन के प्रवेश द्वार पर छोड़कर अविनाश ने उससे विदा ली। थर्ड एसी के डिब्बे में अपनी सीट पर पहुंच कर सबसे पहले उसने सूटकेस को चौन से बांध कर ताला लगाया। चाभी हैंडबैग में रखने के बाद आसपास उसने नजर दौड़ाई तो पाया कि आठ यात्रियों के बीच वह अकेली महिला है। भय के मारे उसका गला सूख गया। पानी पीकर फिर से एक बार उसने उन सब पर नजर डाली। पच्चीस–सत्ताईस वर्षीय दो युवक पहले से ही दोनों ऊपरी बर्थ पर अधलेटे से मोबाइल में आंखें गड़ाए हुए थे। उसने अंदाजा लगाया कि वे जरूर आईटी कंपनी में काम करते होंगे। उसके ठीक सामने बैठा अधेड़ व्यक्ति व्यापारी–सा लग रहा था जो या तो किसी दौरे पर था अथवा घर वापसी पर। अन्य चारों को देख कर उसे थोड़ी तसल्ली हुई क्योंकि वे काले कपड़ों में थे। मालाधारी स्वामी थे वे सब जो भगवान अय्यप्पन के दर्शन के लिए सबरीमलै की तीर्थयात्रा पर थे। उनमें से दो नवयुवक अट्ठारह–बीस साल के भी थे। इन स्वामी से कैसा भय ? उसने अपने आपको समझाया।

तभी मोबाइल की घंटी ने उसका ध्यान भंग किया। 'हेलो, हां मम्मी, सब ठीक है, मैं रेलगाडी में.. बताया था न आपको मैं केरल जा रही हूं। कल से सेमिनार है... वापसी तीन तारीख को है। आपको याद नहीं रहता, अच्छा मैं आपको मैसेज कर देती हूं। हां ठीक है, पहुंच कर फोन कर दूंगी। अपना ख्याल रखना।'

अविनाश का वीडियो कॉल आ रहा था।वो जायजा ले रहे थे कि आखिर वह गाड़ी में आराम से बैठ तो गई है ना। कोई परेशानी तो नहीं ।

'सब ठीक है, लो गाड़ी भी चल पड़ी है। अच्छा अपना ख्याल रखना अवि! बाय!' जवाब में उड़ता चुंबन किया अविनाश ने तो वह

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

शर्म से लाल हो गई और तुरंत ही सचेत भी हो गई थी कि किसी ने देखा तो नहीं।

'तो आप कॉलेज में पढ़ाती हैं। आपके प्रोफेशन में भी क्या आपको यात्राएं करनी होती हैं ? मैं तो ठहरा घड़ियों का व्यापारी। अक्सर दौरों पर ही रहता हूं।'

'उंकृहां!' छोटा सा जवाब देकर प्रियंका तुरंत दूसरी ओर देखने लगी कि वह फिर से कोई दूसरा प्रश्न न उछाल दे। एक बारगी तो वह घबरा गई थी कि भला ये कैसे जानता है कि वह कॉलेज में शिक्षक है। फिर वह समझ गई कि अवश्य ही इसने मम्मी से फोन पर हुई बातचीत सुनी है। घर से रवाना होते समय उसने तय किया था कि इस यात्रा में वह अनजान लोगों से बिल्कुल बातें नहीं करेगी। उसका ध्यान फिर उन स्वामी पर चला गया, लगता है वे एक बड़े समूह में थे और सिर्फ इस डिब्बे में ही नहीं अगल–बगल के डिब्बों में भी फैले हुए थे। समूह के कुछ जिम्मेदार व्यक्ति बार–बार आकर उनकी जरूरतों और सुविधाओं के बारे में पूछ रहे थे।

टीटी से टिकट चेक करवाने के बाद वह सोने की तैयारी करने लगी।सीट से उठकर वह अपनी मंझली बर्थ नीचे करने लगी तो ऊपर लेटे युवक ने तुरंत लोहे की जंजीर खोल कर उसे थमा दी और एक मोटे स्वामी ने आगे बढ़कर जंजीर को बर्थ की सांकल में फंसाने में मदद कर दी। उस मोटे स्वामी ने पूछा क्या आप निचली बर्थ लेना चाहेंगी। उसने झट से इंकार कर दिया। किसी से भी वह किसी भी प्रकार के वार्तालाप में नहीं पड़ना चाहती थी। बर्थ नीचे करते वक्त स्वामी का हाथ उसके हाथ से छुआ तो वह कांप गई किंतु वह मोटा स्वामी एकदम सहज था। वह सोच रही थी कैसा कलयुगी स्वामी है स्त्री को छूने पर भी इसने क्षमा नहीं मांगी, जबकि इन दिनों तो ये ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। आजकल 'सब चलता है' की मानसिकता के 'मोड़' पर लोग आ गए हैं और शायद यही वजह तो नहीं दुष्कर्म के मामलों में बेतहाशा बढ़ोतरी की। उसके जेहन में सुंदर और मासूम–सी डॉ. प्रियंका रेड्डी की वह भोली सूरत उभर आई जो परसों से अखबार , टीवी और समस्त मीडिया पर छाई हुई है। बर्बरता और अमानवीयता भरा वह शर्मनाक दुष्कर्म... और फिर

गुनाह को छिपाने के लिए लाश को जलाना। जानवरों का इलाज करने वाली डॉक्टर इंसानी जानवर का शिकार हो गई। उफ् ...स्त्री के प्रति कितनी पशुता ..कितनी क्रूर निर्ममता। आखिर क्यों ? महज इसलिए कि शारीरिक रूप से पुरुष बलशाली है और स्त्री कमजोर। इसलिए कि हमारी मनोसामाजिक कंडीशनिंग यह मानने के लिए की गई है कि पुरुष एक खुला सांड है और स्त्री खूंटे से बंधी एक गाय है। दुसह्य शारीरिक पीड़ा के साथ–साथ तार–तार होते आत्मसम्मान एवं अस्तित्व की कितनी भयानक मानसिक पीड़ा से गुजरी होगी वह पीड़िता। क्या कभी किसी पुरुष को ऐसी पीड़ा से गुजरना पड़ता है? पुरुषों के बारे में सोचते ही उसे ख्याल आया कि यहां वह सात पुरुषों में अकेली महिला है। वह सोने से पहले बाथरूम गई थी तब भी उसने देखा कि महिलाओं की संख्या पुरुषों के मुकाबले इस कोच में बहुत कम है। उसके शरीर में झुरझुरी दौड़ गई कि क्या हो यदि इन सातों में से किसी के मन में भी शैतान जाग जाए। क्या वह आत्म रक्षा में समर्थ है ? नहीं ... क्यों ? क्योंकि हमारे शिक्षा और सामाजिक तंत्र में बचपन से ही लड़कियों को कभी आत्मरक्षा का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। आक्रमणकारियों से निपटने के लिए स्कूल कॉलेजों में किसी भी प्रकार के मार्शल आर्ट का न अनिवार्य प्रशिक्षण है न ही कोई कोर्स। वैकल्पिक रूप में कहीं उपलब्ध भी हो तो भी इनमें लड़कियां बहुत सीमित संख्या में होती हैं। मां की जिद पर आखिरकार उसने भी तो अपनी इच्छा के विरुद्ध जूडो कराटे न सीखकर स्कूल में बेकिंग कला ही तो सीखी थी। उसकी आंखों में फिर वह खूबसूरत भोला चेहरा उभर कर आ गया। मां कहती थी कि जब प्रियंका चोपड़ा मिस वर्ल्ड बनी थी तब वह काफी दिनों तक घर में ताज पहनकर शीशे के सामने उसकी नकल करती और कहती मैं हूं प्रियंका... मिस वर्ल्ड विजेता। दुर्भाग्य से इस पीड़िता और उसका नाम भी एक ही था, किंतु इस बार नाम और उम्र की समानता ने गर्व की जगह उसके मन में खौफ भर दिया था। परसों ही उसकी टिकट कंफर्म हुई थी और उसी दिन यह मनहूस ब्रेकिंग न्यूज भी मिली थी।

पहली बार अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में अपनी प्रतिभागिता के प्रति बेहद उत्साहित होने के बावजूद उस दिन वह अब केरल की इस

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

यात्रा को रद्द करना चाहती थी। यह सुनकर अविनाश ठहाका लगा कर हँस पड़े। 'भला ऐसे कैसे कोई घर में बैठ सकता है, सब पुरुष ऐसे जालिम नहीं होते हैं। और फिर तुम तो इस संगोष्ठी में जाने के लिए काफी उत्सुक थी तुम्हारा मनपसंद विषय भी है और साथ ही भूल गई तुम ..अभी तीन महीने पहले जब तुमने पहली बार अपने विभाग की ओर से राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया तो दो दिन पहले से ही पत्नी समेत यहां पहुंचकर डॉक्टर चंद्रशेखर ने तुम्हारी भरसक मदद की थी। तुम्हें भी तो जरूर जाना चाहिए पहली बार उसने एक अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया है, आखिर तुम्हारा क्लासमेट है वो।'

जाना तो वह भी चाहती है, वह यह भी जानती है कि यात्रा रद्द करने पर चंद्रू हताश हो जाएगा। कॉलेज से ऑन ड्यूटी भी मिल गई है किंतु दुष्कर्म की इस खबर ने उसके हौसले पस्त कर रखे हैं। वह चाहती थी अविनाश उसे जाने से रोक ले किंतु अविनाश स्त्री को कैद नहीं अपितु खुला आसमान देने में विश्वास रखते हैं। फिर भला वह उसे क्यों रोकते। पिछले वर्ष ही दोनों विवाह सूत्र में बंधे थे। मम्मी, पापा ने भी तो उसे नहीं रोका था।

चेन्नई से इस बार कोई साथ भी तो नहीं मिला, पिछली बार उसके साथ मालिनी थी जब वह हैदराबाद के सेमिनार में गई थी। हैदराबाद के नाम से भयभीत होकर उसने जोर से आंखें मींच ली।

—0—

अपने आसपास की हलचल और चेहरे पर पड़ती रोशनी से उसकी आंखें खुल गई।

समय देखा पांच बजे हैं, करीब बीस मिनट में स्टेशन आने वाला है, जल्दी से फ्रेश होने के लिए वह बाथरूम की ओर लपक पड़ी। चेन खोलकर सूटकेस खींचकर वह दरवाजे के पास जाकर खड़ी हो गई। उसी मोटे स्वामी ने पूछा, 'कोट्टायम आने वाला है, क्या आप यहीं उतरेंगी?'

उसने 'हाँ' में गर्दन हिला दी ।

गाड़ी जब प्लेटफार्म पर लगी तो वह नीचे उतरकर सूटकेस उतारने लगी तो उसी स्वामी ने आगे बढ़कर उसकी मदद की। 'धन्यवाद' कहकर वह प्रीपेड ऑटो की ओर बढ़ गई।

'मैडम, ये बस अड्डा तो आ गया किंतु यहां सात बजे से पहले कोई बस नहीं मिलेगी आपको। अभी तो यह सुनसान है, अंधेरा भी है मैडम और उस पर आप अकेली भी हो, इस सुनसान बस अड्डे पर अकेली लेडीज का इंतजार करना बिल्कुल सेफ नहीं है।'

'तुम जानते थे तो फिर मुझे स्टेशन से लेकर ही क्यों आए, मैं वहीं न इंतजार कर लेती।'

उस पर बमक पड़ी थी वह। चंद्रशेखर ने कहा भी तो था पर वह कैसे भूल गई ? चन्द्रू ने तो जिद की थी कि वह उसके लिए गाड़ी भेज देगा, किंतु उसने मना कर दिया था कि तुम्हें संभालने के और भी बीसियों काम होंगे इसलिए वह आयोजन पर ध्यान दे, उसकी चिंता कतई ना करे। चंद्रू ने उसे यह भी बताया था कि कोट्टायम से वेंग्यूर पहुंचने के लिए उसे सत्तर किलोमीटर की यात्रा करनी पड़ेगी। स्टेशन से टैक्सी मिलती है वैसे बस यात्रा ज्यादा सुरक्षित रहेगी।बस अड्डे से हर पांच मिनट में लगातार डीलक्स बसें चलती हैं। वेंग्यूर पहुंचकर उसे गेस्ट हाउस सर्किल पर उतरना होगा और बस पचास मीटर की दूरी पर ही लोटस होटल में उसके ठहरने का पूरा इंतजाम था। होटल से कॉलेज तक के लिए गाडियों की पूरी व्यवस्था हो गई है।

'डरो नहीं मैडम जी, हम आपको अकेले नहीं छोड़ेगा। बस स्टैंड के आसपास एक अच्छी जगह ढूंढ कर ही आपको छोड़ेगा।'

'ठीक है, कोई अच्छी चाय की दुकान पर उतार दो।' उसने ऑटोचालक से कहा किंतु अभी तो यहां कुछ भी नहीं खुला था, धरती–आसमान सब नींद के आगोश में मग्न थे।

'मैडम जी, फिक्र मत करो हम आपको अकेले नहीं छोड़ेंगे।'

दिसंबर महीने की पहली तारीख की हवा उतनी सर्द भी न थी किंतु उस अनजान चालक की बातों की दहशत से उसकी हड्डियों में कंपकंपी छूट रही थी। ऑनलाइन आर्डर किया पेप्पर स्प्रे

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

भी तो उसके रवाना होने तक उसे नहीं मिला था। ऑटो घुमा घुमा कर वह उसके लिए कुछ सुरक्षित जगह ढूंढने लगा ।

'हम तुम्हें एक पैसा भी और नहीं देंगे।'

'मैडम मुझे आपका बहुत ख्याल है, ऐसे कैसे मैं आपको सुनसान जगह पर उतार सकता हूं?'

केरल में वह तमिल में बोल रही थी, किंतु उस चतुर चालक ने उसकी भाषा–समस्या को पहचान लिया था और वह हिंदी में वार्तालाप करने लगा था।

उसने गूगल करके सूर्योदय का समय देखा, अभी तो पूरे चालीस मिनट बाकी थे। सही जगह की तलाश में अंतरराज्यीय बस अड्डे का पूरा चक्कर लगाकर फिर से मुख्य द्वार पर पहुंचे तो ठीक सामने एक स्थानीय बस स्टॉप दिखाई दिया। प्रियंका ने देखा सड़क की हल्की रोशनी सीधे बेंच पर पड़ रही थी। वहां तीन भद्र लोग बैठे बातें कर रहे थे। उनमें से अधेड़ उम्र की एक महिला को देखकर उसने तुरंत आटो रुकवाया और सूटकेस लेकर उतर गई।

'हाँ, ये जगह सेफ है मैडम। सामने बस अड्डे से आपको सात बजे बस मिल जाएगी।' यह कहते हुए वह ऑटो चालक चला गया।

उसने गहरी सांस ली, शुक्र है कि उसने न तो अतिरिक्त पैसों को लेकर कोई बखेड़ा खड़ा किया और न ही वह बुरा इंसान था।

चाय की तलब लग रही थी। उसने आसपास नजर दौड़ाई ,सारी दुकानें बंद थी। यही उसका चेन्नई शहर होता तो सवेरे पांच बजे से हर गली कूचे में चाय मिल जाती। लैंप पोस्ट के हल्के प्रकाश में बस स्टॉप पर बतियाते उन लोगों को अब उसने ध्यान से देखा। तीनों में सबसे अधिक उम्र वाला पुरुष करीब सत्तर वर्ष का होगा और उसके साथ वाला करीब पैंसठ वर्ष का। महिला लगभग साठ की होगी। वह सोचने लगी कि इनका आपस में क्या रिश्ता होगा ? उनमें से किसी के पास भी ऐसा कोई सामान नहीं था जिससे कि अनुमान लगाया जा सके कि वे मुसाफिर हैं। इतनी सुबह बस स्टॉप पर आने का उनका क्या मकसद होगा ? उनके हाव –भाव पर उसने

अपनी नजरें जमा रखी थी, किंतु उससे बेखबर वे लोग बातचीत में मशगूल थे।

केरल की पारंपरिक बॉर्डर वाली साड़ी में थी वह महिला–पुरुष धोती में थे। वे लोग वेशभूषा से बहुत साधारण दिख रहे थे। इस समूह में सभी साठ पार के थे। अनायास अपने आसपास सीनियर सिटीजन के बीच स्वयं को पाकर उसका भय तिरोहित होने लगा था। उनकी उम्रगत शारीरिक कमजोरी ने उसके अंदर साहस भर दिया था। अब वह सात बजे तक बेखौफ बस का इंतजार कर पाएगी।

उस क्षण पीड़िता का मासूम चेहरा फिर से उसके सामने उभर कर आया तो उसे लगा कि दुराचारियों और उसकी मानसिकता में इस समय कोई फर्क नहीं है। कमजोर के सामने शक्तिशाली महसूस करने का यह भाव ही तो व्यक्ति को आक्रामक बना कर अत्याचार के लिए उकसाता है। क्या हो यदि ये तीनों के तीनों नौजवान हों। नहीं नहीं ...कमजोर के आगे ताकतवर होकर भला वह कौन सा तीर मार रही है। नहीं...वह हमेशा इस तरह कमजोर नहीं रह सकती।

प्रियंका ने एक बार फिर अपने भीतर शक्ति का संचार महसूस किया, इस बार यह मार्शल आर्ट सीखने के दृढ़–संकल्प की शक्ति थी।

अपनी कृतियों के प्रकाशन हेतु संपर्क करें...

लागत आपकी, श्रम हमारा!
75 फीसदी प्रतियाँ आपकी, 25 प्रतिशत हमारी!!

विशेष : आपकी कृतियों व उन पर विद्वानों द्वारा लिखित समीक्षाओं द्वारा विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में व्यापक प्रचार।

मधुराक्षर प्रकाशन
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर फतेहपुर (उ0प्र0) 212 601
madhurakshar@gmail.com +91 9918695656

कहानी

डॉ .महिमा श्रीवास्तव
34/1, सर्कुलर रोड,अजमेर(राज.) 305001
jlnmc2017@gmail.com

कोरोना : एक प्रेम गाथा

गगन में एकाएक घनेरे मेघ छा गये और नन्ही– नन्ही सुधामयी बूंदें बरसने लगीं। छत पर टहल रही मेघा ने ,अपना सुचिक्कन, सलोना मुख आकाश की ओर उठाया। हल्की झिरमिर के सौम्य स्पर्श से उदासी की परतें धोने लगी।

कोरोना महामारी के घोर संकटकालीन दिन और ऊपर से विरह वेदना। अपने पच्चीस वर्षीय जीवन में ही उसने संघर्ष के अनेक स्तरों को पार किया था। माता– पिता एक कार–दुर्घटना में बाल्यकाल में गुजर गये थे व विधवा बड़ी मौसी ने उसको स्नेहपूर्वक पाल– पोस कर बड़ा किया। मेघा जितनी मेधावी थी उतनी ही अनिन्द्य सुंदरी भी। चंदन जैसा रंग, घने, घंघराले केश व तीखे नैन नक्श। उसका सौन्दर्य तेजस्वी व चमत्कृत करने वाला तो ना था पर संपर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित होता।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कभी उसने ,अपने को अलंकृत व सज्जित करने का प्रयास नहीं किया। मौसी झल्ला कर कहतीं, 'अरे भई, हाथों में दो पतली चूड़ियां ही डाल ले' पर वह अपनी नाजुक गोरी कलाइयों पर तनिक सा बोझ लेने को राजी नहीं होती। कविता–कहानी, गीत–संगीत यही उसका श्रृंगार थे। ऐसे में क्या, उसके किशोर स्वप्निल संसार में, कोई भी प्रवेश पा सकता था ?

पर भाग्य के खेल निराले होते हैं। उसके अन्तर्मुखी स्वभाव के अभेद्य किले में ,एक मायावी मनुष्य प्रवेश पा ही गया। हुआ यूं कि मौसी के दूर के देवर आशीष के पुत्र को, उनके शहर के मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिला।

रैगिंग के भय से आशीष अपने लाड़ले सुपुत्र मोह को मेघा के घर छोड़ गये। अत्यंत वाचाल व शरारती मोह ने प्रथम बार में ही पी.एम.टी कैसे पास कर लिया यह मेघा को समझ नहीं आया। किन्तु उसके आने से मेघा को एक मार्गदर्शक मिल गया। मोह ना केवल कैमिस्ट्री समझाता अपितु उसकी कवितायें भी सुधार देता। दोनों के स्वभाव भिन्न थे, किन्तु रूचियां बिल्कुल समान।

उम्र का तकाजा कहिये या रूमानी शरतचंद्र, टैगोर के उपन्यासों का प्रभाव। दोनों एक दूसरे के सुदृढ़ आकर्षण में बंध गये। मोह ने मेघा के लिए कई गीत– गजल रचे। मेघा अपने हाथों से बने टेड़े–मेड़े गर्म परांठे बना खिला, स्नेह प्रदर्शित करती। उनके दिन रूपहले व रातें सुनहरी हो गईं थीं।

फिर मेघा का भी उसी कॉलेज में चयन हो गया और मोह कॉलेज के हॉस्टल में जा कर रहने लगा। दोनों महत्वाकांक्षी होने के कारण अपनी– अपनी पढ़ाई में डूब गये। मेडिकल के अध्ययन में वैसे भी घोर एकाग्रता की आवश्यकता होती है। मोह का मेघा से मिलना कम हो गया। फाइनल पास होते ही मोह के पिता उसे अपने घर वापिस ले गये।

विदा लेते हुए मेघा ना चाहते हुए भी, फूट–फूट कर रो पड़ी। मोह की भी आंखें भीग गईं । उनकी खामोश विदा जैसे उन पलों में बहुत मुखर हो उठी। अनेक अनकही बातें व अपूर्ण स्वप्नों सहित वे विलग हुए। इसी बीच एक दिन मेघा को सीने में दर्द हुआ। जांच में ह्दय के एक वॉल्व में साधारण खराबी पता लगी व तुरंत ऑपरेशन

करवाना पड़ा। मोह सुदूर प्रदेश में उन दिनों स्नात्तकोत्तर सर्जरी का कोर्स कर रहा था व अवकाश ना मिलने के कारण आ ना सका।

इसी बीच कोरोना की वैश्विक महामारी फैल गई। सारे शहर सील हो गये। आवागमन समाप्त हो गया। इस कठिन समय में मेघा को मोह बहुत याद आता। एक अनाथ बालिका के लिए मोह ने स्नेह का अनमोल खजाना जो लुटाया था। मोह के साथ बिताये आधे–अधूरे क्षणों की मधुर स्मृतियों से वह व्याकुल हो जाती।

मौसी उसके मन की स्थिति से अनजान नहीं थीं। एक दिन मौसी के कक्ष में मेघा जा रही थी कि मौसी की फोन पर बात होते व उनमें अपना जिक्र सुन ठिठक गई। मौसी कह रही थीं, 'मेघा व मोह का आपस में बहुत प्रेम है, विवाह में अब देरी नहीं करनी चाहिये, लॉकडाउन खुलते ही।'

वहां से कुछ नकारात्मक उत्तर आया क्योंकि मौसी एकाएक भर्राये स्वर में कह रहीं थीं– 'यह क्या कह रहे आप ? कैसी बीमारी ? ऑपरेशन के बाद मेरी बच्ची तो बिल्कुल ठीक है।'

इसके बाद मेघा और अधिक सुन ना सकी व अपने कमरे में जा तकिया आंसुओं से भिगो डाला।

दिन धीरे– धीरे सरकने लगे। कोरोना का प्रकोप बढ़ता जा रहा था। आतंक के साये घनीभूत होने लगे। सब अपने अपने घरों में लॉकडाउन के कारण कैद हो गये। खुली हवा के लिए बस छत ही थी। आकाश नीला और तारे चमकीले दिख रहे थे।

मेघा मोह के वहॉट्स एप पर संदेशों की प्रतीक्षा करती रहती जो शनैः शनैः कम हो समाप्त से ही हो गये। वह अत्यधिक व्यस्त है, यह उसका अंतिम संक्षिप्त कथन था। सरल ह्रदय मेघा इसे भी सत्य मान लेती यदि उसकी अभिन्न सखी ने ना समझाया होता कि कोई भी समर्पित स्नेही इतना व्यस्त नहीं हो सकता कि उसे अपनी प्रेमिका को ब्लॉक करना पड़े बीच बीच में।

क्या मोह इतना स्वार्थी था ? उसका लगाव व इतनी मधुर बातें मात्र एक छलावा थीं। क्या उससे नेह का वह इतना पारंगत अभिनय कर रहा था? उसने मेघा के सरल भावनात्मक समर्पण का लाभ उठाया था। मेघा रात–दिन यह सोच–सोच कर दुर्बल होने लगी। मौसी भी अब प्रौढ़ व पुराने दमा से ग्रसित थी। उन पर कोरोना का संकट भी अधिक मंडरा रहा था।

मेघा का मन करता कि मोह को फोन कर पूछे कि निभाना ना था तो प्रीत इतनी बड़ाई क्यों ? पर उसका स्वाभिमान ऐसा ना करने देता। वैसे भी,उसके संदेशों का उत्तर आना भी समाप्त प्रायरू ही था। व्हॉट्स एप पर मोह ऑनलाइन दिखता पर शायद उसे कविता सुनाने के लिए कोई और मिल गई थी। मेघा को पीड़ा होती। अपनी भेजी हुई मनुहारों पर देखे जाने के दो नीले निशान देख कर ही संतोष कर लेती थी बेचारी भोली मेघा। उससे क्या भूल हुई वह समझ ना पाती। मेघा का आत्मविश्वास खंडित होने लगा था। पुरुष को भ्रमर ऐसे ही नहीं कहा गया है। इतनी निष्ठुरता की उसने अपने प्राणप्रिय से कल्पना भी ना की थी। पर फिर भी मेघा अपने मन को कैसे समझाये?उसे पता था कि मोह के अतिरिक्त अब उसे अन्य कोई ना भायेगा। इतना विद्वान, इतना प्रतिभाशाली और इतना टूट कर चाहने वाला अन्य कोई नहीं हो सकता यह उसे भली भांति ज्ञात था।

इधर देश में कोरोना से मरने वालों की संख्या बढ़ती जा रही थी। प्रतिदिन कितने ही लोग कालग्रसित हो रहे थे। मेघा अभी ऑपरेशन की कमजोरी से उबरी भी ना थी कि यह भयंकर संकट आ गया। ऊपर से जिससे संबल की आशा थी, वही त्याग गया वो भी बिना कहे सुने। कल तक जो उसका दीवाना था आज उसके स्नेहसिक्त ऑन लाइन संदेश भी नहीं पढ़ना चाहता था। पर मेघा ने बचपन से ही संघर्ष देखे थे। अवसाद व आतंक रूपी दैत्य भरपूर वार कर रहे थे। किन्तु मेघा तो एक रूपवती वीरांगना थी। उसे तो इस संकटकाल में अपनी मौसी का सहारा बनना था। उन मौसी का , जिनने कई रातें जग उसे पाला था व अब जी– जान लगा, उसका स्वास्थ्य सुधार, उसे पूर्ण भला चंगा किया था।

समाचार पत्र आये दिन बुरे समाचारों से भरे पड़े थे। लोग मौत के भय के साथ साथ आइसोलेशन यानि प्रियजनों से बिछुड़ने के भय से भी त्रस्त थे।सब को अपने परिवार की चिन्ता थी। तरह तरह के, प्रसारित बचाव व उपाय भी भय कम नहीं कर रहे थे। सब साथी डॉक्टर भी सहमे हुए थे। कई कोविड–ग्रसित भी हो चुके थे। सोशल मीडिया पर कोरोना के अतिरिक्त बातचीत ही नहीं थी। शंका व मानसिक तनाव से लोग लड़ने– भिड़ने लगे थे।

डॉ मेघा दिन में अस्पताल में ड्यूटी करती व शाम को मौसी के साथ पूजा– पाठ। खाली समय में अपने को उसने नृत्य संगीत,

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कहानी कविताओं में डुबो लिया था। पर क्या मन होते दस– बीस। अवचेतन में दुःख बसा रहता। सुबह नींद खुलती तो मोह का बिछुड़ना एक दुःस्वप्न प्रतीत होता।

देश एक भयंकर संकटकाल से गुजर रहा था। टी.वी.पर देश के जननायक हौसले बढ़ा रहे थे। सकारात्मक लोग, योग, साधना, देसी उपाय आदि बता रहे थे।

मेघा ने विरह से भरी दर्दीली शेरो–शायरी तज, प्रेरणादायक कवितायें सोशल मीडिया पर डालनी प्रारंभ कर दीं। सुंदर भावपूर्ण मुख, ओजस्वी व मधुर स्वर से सजे, सार्थक स्वरचित, उसके गीत–गजलों की धूम मच गई। उसके द्वारा चिकित्सा प्राप्त रोगी तो पहिले ही उसके भक्त थे। धीरे– धीरे ह्रदय पर पड़ा बोझ व दर्द कम होने लगा पर समाप्त ना हुआ। कई बार चित्रा सिंह की गजलें सुनती या अमृता प्रीतम को पढ़ती तो रो देती। न मोह उसे कॉल करता ना वह ऐसा करने की हिम्मत जुटा पाती।

मोह से मोह के धागे तोड़ने में भावुक मेघा असफल सी रही। सोते–जागते उसके ख्याल आते रहते।

कोरोना रोग का ग्राफ अब नीचे आने लगा था। जनजीवन सामान्य होने लगा। दुकानें खुलने लगीं, सूनी सड़कों पर चहल–पहल होने लगीं। मास्क के ऊपर से झांकतीं आंखों में आशा की चमक आने लगी।

एक दिन, एकाएक मोह का संदेश मिला कि, 'मैं तुमसे मिलने आना चाह रहा हूं। पापा ने सख्त मना कर दिया था, तुम से संपर्क रखने को, इसलिए बात नहीं हो सकी। पर मैं तुमको एक दिन भी भुला नहीं पाया हूं।' मेघा के सामने नये मोबाइल की स्क्रीन चमक रही है.. वह असंमजस में है, दिल की सुने या दिमाग की। दिल कह रहा की पंख लगा अपने विलक्षण प्रियतम मोह के पास, उड़ के पहुंच जाये। उसकी भूल को बिसरा दे व उसे क्षमादान दे। दिमाग कह रहा कि ऐसे भीरू स्वार्थी व्यक्ति से क्या नाता रखना ?

मेघा कई घंटों विचार करती रही। फिर उसने उत्तर टाइप करना प्रारंभ कर दिया– 'प्रिय मोह,...।'

(....उत्तर अब हम पाठकों की कल्पनाशक्ति पर छोड़ते हैं। जैसे भी हो, हमारी संवेदनशील ,भोली , प्रिय नायिका का अहित ना करें।)

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उर्मिला शर्मा
अन्नदा कॉलेज, हजारीबाग - झारखंड
urmila.sharma009@gmail.com

समझौतों का शहर

स्वीटी ने जल्दी–जल्दी अपने टिफिन में रात का बचा हुआ भात भुंजकर अचार के साथ पैक किया। पूरी कोठरी में समान बिखरे पड़े था। स्वीटी उन्हें सहेजती भी जा रही थी। पलंग के नीचे आटे की टिन को खिसकाते हुए सब्जी की टोकरी रखने के लिए जगह बनाई। पति कृष्णा अपने काम पर जो एक दुकान में वॉचमैन था, निकल गया था। बेटा प्रिंस भी स्कूल के लिए निकल जा चुका थे। स्कूल से आने के बाद प्रिंस के खाने के लिये जो रोटी और तरकारी रखी थी उसे एक बरतन में पानी डालकर उसके ऊपर रखा। क्योंकि आजकल गर्मियों में खाने में चीटियाँ लग जा रही थीं। घड़ी देखा नौ बजे गए थे। फैक्ट्री पहुँचने में भी एक घण्टा लगेगा। जल्दी से बैग में टिफिन ठूंसा और कमरे को लॉक कर मुड़ी तभी पैर से छन्न से कुछ लगा। देखा तो कमरे की दूसरी चाबी गिरी थी जिसे शायद प्रिंस से हड़बड़ी में बैग में रखते समय गिर गया होगा। ओह! ...हे भगवान अब तो वह तीन बजे आएगा तब तो उसे बाहर ही बैठना पड़ेगा उसके छः बजे

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

आने तक। हूँ !...सोचती हूँ.. मन में वह यह कह निकलने लगी तभी बरामदे में रखे धुले कपड़ों पर नजर गईं। उसे फटाफट रस्सी पर कपड़ों को डालने के लिए लपकी तभी काई लगे हुए बरामदे में उसका पैर फिसला। गिरने ही वाली थी कि उसने रस्सी पकड़ ली। लेकिन शायद बायीं ओर के पैर का नस खींच गया था इसलिये हल्का दर्द शुरू हो गया। फिलहाल अभी उसपर ध्यान देने का समय नहीं था और वह मुंह पर स्टोल लपेटते हुए निकल गई। कहीं मेट्रो न छूट जाए...।

फैक्टरी पहुंच रोजाना की तरह मसालों के काम में लग गयी। पर काम में मन लग नहीं रहा था। प्रिंस भूखे–प्यासे दरवाजे पर बैठा रहेगा यह सोच उसे बेचौनी हो रही थी। लंच ब्रेक में उसने सुपरवाईजर को जाकर अपनी समस्या बताई और कहा कि वह लंच ब्रेक में भी उस दिन काम कर लेगी। पर उसे उसदिन थोड़ा जल्दी जाने दें। इस बात पर सुपरवाईजर ने पहले तो डांटा– 'क्या है ये तुमलोग का रोज का चिक–चिक। इतना ही ममता लुटाना था तो घर पर रहना था ना। पैसे भी चाहिए...कामचोर कहीं के।' फिर अगले ही पल कुटिलता से मुस्कुराते हुए कहा– 'ठीक है तो फिर कल देर से घर जाएगी। आ जाना उसी जगह पर।'

'लेकिन अभी पिछले महीने ही तो...।' स्वीटी ने बड़ी दयनीयता से कहा।

'तुम अपना सोच लो।' सुपरवाईजर ने रजिस्टर पर कुछ नोट करते हुए कहा।

'ठीक है।' कहते हुए स्वीटी निकल गयी।

जल्दी से लंच कर काम में लग गयी। सुबह घर से निकलते वक्त फिसलने से जो पैर में दर्द हुआ था वो अब बढ़ने लगा था। तीन बजे के करीब वह घर के लिए निकल पड़ी। मेट्रो में बैठ वह विगत स्मृतियों में खो गई। एक छोटे से गांव की लड़की को विवाह पूर्व जब पता चला कि उसका होने वाला पति दिल्ली में काम करता है और शादी के बाद तुरन्त ही उसे वहाँ ले जाएगा। तो मन खुशी से घूम उठा। बड़े–बड़े सपने देखने लगी महानगर में रहने के। कैसे वहाँ से लौटने के बाद अपनी सखियों और रिश्तेदारों में रोब गाँठेगी। ये पहनेगी.. ऐसे रहेगी...यहाँ–वहाँ घूमेगी....न जाने कितने सपने सजोने लगी थी। जब पति के संग दिल्ली आयी तो देखा एक छोटी सी

कोठरी ही उसकी दुनिया है। जोड़–तोड़ कर जरूरत ही पूरी हो पा रही थी। उसपर पति का पीने का शौक। क्या होगा जब परिवार बढ़ेगा। शादी के अगले ही साल प्रिंस का जन्म हुआ। जीवन तंगी में गुजरने लगा। वह उदास और चिड़चिड़ी सी रहने लगी। अबतक वह अड़ोस– पड़ोस के माहौल को समझने लगी थी। उसने देखा कि जो महिलाएं उसी की तरह घर पर रहती हैं तो उनकी जिंदगी उसी की तरह फटेहाल गुजर रही है। लेकिन जो कोई न कोई नौकरी कर रही हैं उनके घर में सब सुख– सुविधा है। अच्छे कपड़े पहनती हैं और घूमने भी निकलती हैं। उसने तय कर लिया कि वह भी बाहर जाकर काम करेगी। घर में चार पैसे आयेंगे तो स्थिति सुधरेगी। दो साल से वह इस फैक्ट्री में काम कर रही है। घर की स्थिति भी सुधरने लगी है। जब पहली बार फैक्ट्री के मैनेजर ने उससे अनुचित मांग की थी तब उसे कितना बुरा लगा था। कृष्णा को आकर बताई थी। पर उसने भी मौन रजामंदी दी थी इस बात के लिये। अन्य वर्कर स्त्रियों से भी पूछा तो उन्होंने भी यही कहा कि ये सब आम बात है। फिर वह भी मन मारकर इन आम स्त्रियों में शामिल हो गयी। बाहर की दुनिया में उसे कैसे–कैसे समझौते करने पड़े, उसका मन ही जानता है।

स्वीटी ने अपने स्टेशन आने का जब अनाउंसमेंट सुना तब उसका सोचने का क्रम टूटा। ट्रैन से उतर घर की ओर चल पड़ी। घर पहुँचते ही बाहर खड़ा प्रिन्स आकर लिपट गया।

'मम्मी! आज टिफिन उलट गया था, भूखा रह गया।' छूटते ही प्रिन्स ने कहा।

'मेरा बच्चा! तभी तो देख मैं जल्दी चली आयी।'

अंदर आकर स्वीटी ने बेटे को बड़े प्यार से गोद में बिठा अपने हाथ से खिलाया। फिर मेहमानों के लिये रखा बिस्कुट डब्बे से निकाल प्रिन्स को दिया। और रात के खाने की तैयारी में लग गयी। आटा गूंथ, सब्जी काटने लगी। देह और मन दोनों से थकान महसूस कर रही थी वह। उस महीने की पगार लेकर वह फैक्टरी जाना कुछ दिनों के लिए उसने छोड़ दी। उसके मन में भीतर ही भीतर कुछ चल रहा था। ये बात उसके साथ अच्छी थी कि उसके हर फैसले में कृष्णा साथ देता था। उसने कृष्णा को मन की बात बताई। अब उसने फैक्ट्री जाना छोड़ दिया। वह अब कृष्णा व अपने योजनानुसार चलने

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

लगी। आर्थिक स्थिति भी ठीक बनी रही। अब वह पहले से ज्यादा संतुष्ट रहने लगी। एक दोपहर वह काम खत्म कर आराम कर रही थी कि गेट पर किसी की पुकारने की आवाज आयी। आजकल जबसे कोरोना महामारी फैली थी तब से कभी एन.जी.ओ वाले तो कभी किसी का आना–जाना लगा ही रहता था। देखा तीन महिलाएं थी जो किसी स्वयंसेवी संस्था से आई थीं। कुछ जरूरी खाद्य– सामग्री तथा कोरोना से बचाव सम्बन्धी जानकारी देने आयी थीं। 'मैडम! इन खाने–पीने की चीजों के बदले पैसे ही दे दो ना। उसकी ज्यादा जरूरत है इनदिनों। आजकल तो कोई आता भी नहीं। अपने पति ने भी 'पप्पी' लेना छोड़ दिया है इस कोरोना के चक्कर में।' हँसते हुए स्वीटी ने कहा।

तब मैडम ने पूछा– 'ये सब क्यों करती हो। पता है न कितने खतरे हैं इन सबके।'

तपाक से स्वीटी ने कहा– 'क्या करे मैडम! फैक्ट्री में काम करती थी। वो दुष्ट मैनेजर तो कभी सुपरवाईजर महीने–दो महीने में अपने पास बुलाकर मनमानी करते रहते थे और साथ ही जब–तब काम से निकालने की धौंस भी दिखाते रहते थे। तंग आ गयी थी। अब तो जब चाहो तब घर पर ही आराम से शराब और मुर्गा के साथ दो–तीन हजार रुपये भी मिल जाते हैं। दिनभर घर से बाहर रह काम भी नहीं करना पड़ता।'

संस्था की महिलाओं के जाने के बाद वह सामान को ठिकाने लगाकर बालों में कंघी करने लगी। उसके बाद सूखे कपड़ों को उतारने बरामदे में गयी तभी गेट पर एक सरकारी कर्मचारी निःसंक्रामक का छिड़काव करने आया था। काम खत्म कर जब वह जाने लगा तो स्वीटी ने बड़े अदा से उससे मुस्कुराते हुए कहा– 'केवल घर में ही छिड़काव करोगे ...जरा इधर भी।'

वो कहते हैं न– 'खग की भाषा, खग ही जाने' तो जो स्वीटी ने कहना चाहा वह समझ गया। अगले ही दिन शाम को वह कर्मचारी शराब की बोतल, मुर्गा लेकर हाजिर हो गया। मुर्गा बना, खा–पीकर सभी मस्त हो गए। कृष्णा बच्चे को लेकर बरामदे में चौकी पर लेट गया। उधर स्वीटी कोठरी में मेहमान की खातिरदारी में लग गई।

राघव दुबे रघु
महावीर नगर, अड्डा पाय, इटावा 206003
raghavdubeyraghu@gmail.com

मेरी बहू

हर जगह चर्चा का विषय एक ही होता मेरी बहू... रिश्तेदारी या पड़ोस में कोई आयोजन होता तो उसे जरूर बुलाया जाता स किसी भी काम में कोई कमी नहीं निकाल पाता स जब कोई काम अटक जाता तो याद आती मेरी बहू स अब तो मेरे माँ बापू भी उसकी तारीफ करते हुए न थकते स बजती पाजेब, खनकती चूड़ियाँ पल भर में किसी को अपनी और आकर्षित कर ले स मेरे हठीले माँ बापू को उसने अपनी सेवा भाव से अपना बना लिया वो भी हमेशा हमेशा के लिए!

आज वो हॉस्पिटल के जच्चा–बच्चा वार्ड में लेती हुई मेरे घर को असीम खुशियाँ देने वाली थी। इतनी कठोर दिल की मेरी माँ भी

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उसकी असहनीय पीड़ा में नम आँखों से ढाढस बंधा रही थी। यह दृश्य देखकर में स्मृतियों में खोता चला गया...

एक दिन किसी अनजान नंबर से फोन आया स सामने एक लड़की थी।

"हेलो कौन"

"कल मेरे पापा आपके यहां आये थे स मैं उनकी बेटी हूँ।"

"बताइए मै आपकी क्या मदद कर सकता हूँ!"

"आपको पढ़ा–लिखा और समझदार व्यक्ति समझा इसलिए फोन किया मैंने। आप बता सकते हैं कि मेरे पापा की क्या गलती थी जो आपके घर में मेरे पापा की बेइज्जती की गई। क्या गरीब होना ही सबसे बड़ी गलती है। क्या दहेज किसी संस्कारी लड़की से ज्यादा बड़ा है। माफ करना साहब मैं अपने पापा की गुरूर हूँ, जिसमे कोई दाग नहीं जिसके लिए दहेज का सहारा लेना पड़े।"

उसकी बाते मेरे घर कर गई। मैं समझ चुका था ये वही लड़की है जो मेरे परिवार का गुरुर बन सकती है। लेकिन मेरे माँ बापू पर दहेज का दानव हावी था। बहुत बार समझाने की कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ! मैं क्या करता! फिर मुझे कुछ नहीं सूझा तो मैंने घर छोड़ने का निश्चय किया। इकलौते संतान घर छोड़े ये किसी को भी मंजूर नहीं हुआ। मेरी बात बन गयी और शादी हुई वो भी बिना दहेज के। समाज और रिश्तेदारों की कानाफूसी खूब हुई। बिना दहेज की शादी कुछ तो खोट होगी लड़के में, आखिर शर्मा जी के पास किस बात की कमी थी। और भी बाते तरह तरह की। धीरे–धीरे सब सामान्य हो गया। माँ–बापू का दहेज का भूत भी उसकी निश्चल सेवा भाव ने उतार दिया, और बन गयी समाज और पूरे घर की लाड़ल।

"बेटा में दादी बन गयी!" माँ ने कहा तो मेरी तन्द्रा टूटी।

सामने माँ एक खूबसूरत परी को अपनी गोद में लिए थी।

पापा ने जेब से कुछ नोट निकाले और नौछवार कर मिठाई के लिये बांट दिये। सामने लेटी वो मुस्कुरा रही थी, अपनी अजेय जीत पर।

सच में आज मेरे हँसते खेलते परिवार के सामने दहेज का दानव बहुत ही ठिगना नजर आ रहा था।

—0—

डॉ. आस्था तिवारी
रायपुर, छत्तीसगढ़
astha.tiwari999@hotmail.com

नज़र

रोज आने जाने के सिलसिले में एक दूसरे से मौन का आत्मिक संवाद स्थापित हो जाता है। उस दिन भी वह गाड़ी का इंतजार करते खड़ी थी।

कुछ दूरी पर लगभग दस कदम, लाठी के सहारे खड़े करीब पचास–पचपन साल के आदमी को देखा। वह इस लाचारी से देख रहा था की कुछ चाह रहा था। साफ स्वच्छ कपडों को देखकर शायद वह भी सोच रही हो बिना मांगे कैसे वह कुछ दे। जब तक कोई हाथ न बढ़ाये मदद करना भी ठीक नहीं लगता। एक व्यक्ति ने दस का नोट बढाया उसने सहजता से स्वीकार कर लिया।

इसी समय गाड़ी आई सीट मिलने की जद्दोजहद कुछ सोचने का मौका नहीं देती, वह भी बस में चढ़ गई।

कुछ दिनों बाद फिर उसे देखा, वह इस बार कुछ दूर खड़ा था, कुछ सोचता हुआ रहस्यमयी मद्धिम मुस्कान के साथ उस लड़की की तरफ ही देख रहा था। वही दृश्य कौंध गया।

चिढ़ते हुए वह भी मेरे पास आकर हुए बैठ गयी। वह शायद उसकी आदत से वाकिफ थी। मैंने भी सोचा 'ये तो रोज का किस्सा है।' दुनिया की नजर से बचने के लिए नजर फेर लेना ही उचित है।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

लघुकथा

राजेश कुमार
जवाहर नवोदय विद्यालय,
अररिया, बिहार –854312
rajeshraj448@gmail.com

एक मुट्ठी दुर्वा

स्पेशल वार्ड के कमरे से बाहर के बरामदे में ह्वील चेयर पर चंद मिनटों के लिए बैठना होता और वही ग्रिल से झाकती निगाहों ने हरी भही दुर्वा पर सूरज की तिरछी रोशनी पड़ते देखा। दुर्वा की कोमल पत्तियां रोशनी को सोखने के लिए मानो उपर उठ रही हो! उसकी चमक मेरी आखों को भी सुकून दे रही थी। यह देखते हुए मन में यह ख्याल आ रहा था कि शहर में अब तो हरियाली कहीं गुम–सी हो गई है। क्रंकीट की बड़ी–बड़ी इमारतें, कंक्रीट की लम्बी सड़के और प्लास्टिक के गमलों में प्लास्टिक के सजीव दिखने वाली पौधें एवं फूलों से सजी इमारतों के बीच तंग होती सांसें!

शहर हो या गाँव कुछ मान्यताएं एक सी होती है। भले पूजा पाठ के तौर तरीके कुछ अलग हो, पंडित की जगह डिजिटल मंत्र

की ध्वनियो से काम चल जाए पर आज भी सर्वप्रथम पूजनीय विध्नहर श्रीगणेश की पूजा में दुर्वा का अति विशिष्ट महत्व जान इसका प्रबंध किया जाता है। शहरों में, तो गणपति मंदिर के आगे दुर्वा का भी प्रबंधन ने व्यवसाय का रूप ले लिया है।

तभी एक अधेर उम्र की महिला सामने से आते हुए दिखी और सहसा दुर्वा की ओर मुडी और बिना देर किये झुक कर हरी–भरी दुर्वा को हाथों से दबोच कर घायं–घायं नोच डाली, वह भी बेरहमी से जड़ के साथ।

उसके मुट्ठी में तिनके के रूप में जड़ समेत सहमी सी समा गई दुर्वा। उसके दूसरे हाथ में फुल–डलिया को देख जान पड़ा की उसका उद्देश्य पूजा में दुर्वा का चढावा ही रहा होगा!

मैं स्पाइनल और सर्वाइकल समस्या के कारण कुछ मिनटों बाद वार्ड के बेड पर लेट गया। पर लेटे–लेटे छत पर टंगे पंखे से ध्यान हट कर बार बार उस कोमल दुर्वा को जड़ समेत उखाड़े जाने की पीड़ा की ओर खींच जाता। दुर्वा अगर लेना ही था तो ऊपर ही उपर निकाल लेती, इतनी निर्दयता से जड़ समेत लेने की क्या आवश्यकता! संवेदनशीलता हमें प्रकृति से प्रेम करना सीखाती तो है! आखिर इस प्रकार दुर्वा के चढावे से विध्नहर्ता गणपति क्या प्रसन्न होंगे ? ना जाने कैसे कैसे प्रश्न ख्याल में आते। क्या इसे प्रकृति का दोहन कहते हैं! छोटे उदाहरण ही सही पर हुआ तो प्रकृति का दोहन ही। चाहे हम किसी भी रूप में करें। प्रकृति हमें इसका दंड देती अवश्य है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष।

मीडिया और स्त्री

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-1-0
संस्करण : 2014, मूल्य : 165/-

लघुकथा

डॉ. विभाषा मिश्र
सिद्धेश्वरी नगर, कोटा, रायपुर (छत्तीसगढ़)
vibhashamishra@gmail.com

संवेदनशील कौन!

काम करते–करते बूढ़े बाबा की हालत खराब थी। आज पूरी बाड़ी की सफाई का काम उन्हें सौपा गया था। पास में ही खड़ी सात साल की बच्ची मीनू ने जब देखा तो फौरन दौड़कर घर से पानी का गिलास उठा लाई। बाबा के पास जाकर उसने कहा– 'बाबा यह लीजिए थोड़ा पानी पीकर आप आराम कर लीजिए।'

बाबा ने मीनू की तरफ प्यार भरी नजरों से देखते हुए कहा– 'बेटा मुझे यह काम शाम होने से पहले खत्म करना है, वरना तुम्हारी दादी मुझे डाटेंगी।'

मीनू ने दादा की ओर इशारा करते हुए कहा– 'बाबा धीरे बोलो, मेरी दादी सोई हुई हैं, उनको पता नहीं चलेगा। आप कुछ देर आराम कर लीजिए। जब वो उठ जाएंगी तो मैं आकर आपको खबर कर दूँगी।'

मीनू की बात मानकर बाबा किनारे ही लेट गए। लेटते समय उनकी हाथों की तरफ मीनू की नजर पड़ी। उसमें से खून बह रहा था। वह तुरंत घर के अंदर जाकर दवा लेकर वापस आई।

बाबा के हाथों को अपनी गोद में रखकर उसने दवा लगाना शुरू किया।

अचानक बाबा हड़बड़ा कर उठ गए और बोले– 'अरे! यह क्या बिटिया, ये तो बहुत छोटी चोट है रहने दो कुछ नहीं होगा। हम मजदूर हैं हमको तो रोज छोटी–बड़ी चोट लगती ही रहती है।'

फिर भी मीनू ने जबरन उनका हाथ लेकर दवा लगाना शुरू कर दिया। इतने में आवाज सुनकर दादी की नींद खुल गई। उन्होंने देखा मीनू बड़े प्यार से बूढ़े बाबा को दवा लगा रही है। दादी की आँखें भर आईं कि इस बच्ची में कितना प्रेम भाव है, कितनी संवेदना भरी हुई है और हम बड़े न जाने अपने ही स्वार्थ के लिए क्यों इतने निष्ठुर हो जाते हैं।

दादी को देखकर डर के मारे बूढ़े बाबा खड़े हो गए। दादी ने उनसे कहा– 'अरे बाबा आपको इतनी चोट लगी थी और फिर भी आप काम किए जा रहे थे। आराम से घर जाइये बाकी काम कल होगा।'

बाबा खुशी–खुशी अपने घर की तरफ चले गए। दादी सोच में पड़ गई कि सचमुच बच्चे भगवान का ही रूप होते हैं, इसलिए उनको हर एक के दुःख–दर्द का एहसास हो जाता है।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

लघुकथा

अतुल मल्लिक 'अनजान'
जगन्नाथपुर, बनैली, पूर्णिया, बिहार
kavianjaanpurnea@gmail.com

प्रयास

'आखिर यह अन्याय, अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न, लूट–खसोट, आगजनी, डाकजनी, छेड़खानी, बलात्कार, हत्या, अपहरण... कब तक होता रहेगा? कब तक हम नेताओं के झूठे वादे सुनते रहेंग`? कब तक भ्रष्ट्राचार खत्म होगा ? कब तक हमारे समाज में अमन–शांति बहाल होगा ? कब तक हम लोग देश की मुख्य धारा से जुड़ पाऐंगे ? आखिर कब तक हमें हमारे ही बंधुओं से लडाया जाएगा, जाति–धर्म के नाम पर भड़काया जाएगा, मंदिर–मस्जिद विवाद में हमें उलझाया जाएगा ? कब तक हमारे बच्चे इस अशैक्षिक माहौल में शिक्षा ग्रहण करेगा, जहां शिक्षा व्यवस्था चौपट हो गई है वहां अपना भविष्य उज्ज्वल कर पाएगा ? आखिर कब तक हमें हमारे ही अधिकारों से वंचित किया जाएगा ?गरीबों–शोषितों की हक की बात सभी करते हैं, पर धरातल आपके सामने है। भाईयो और बहनो!'

'बस, बस, बस, रुको–रुको! अरे भोला! यह तुम्हें आज क्या हो गया ? सवेरे–सवेरे झाड़े जा रहा है, भाँग खा लिया है क्या रे?'

'नहीं रे रामू! नेता बनने का प्रयास कर रहा हूँ! चुनाव आने वाला है न!

'भक!साला!'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

अनिल कुमार 'निलय'
राजकीय उ. मा. वि. सराय आनादेव, प्रतापगढ
anilkr8888@gmail.com

पी.एम. केयर्स

काव्या बचपन से अपने कार्यों के प्रति बेहद सजग रहती थी। कितनी भी गहरी नींद में क्यों न सो रही हो पापा की गाड़ी का हार्न बजते ही दरवाजे पर मुस्तैदी से खड़ी हो जाती थी। दरवाजा खोलने की शर्त भी पूर्व निर्धारित थी कि दिनभर की ड्यूटी से लौटने के बाद जेब में जितने भी फुटकर पैसे बचे होते थे, उन्हें काव्या को देने के बाद ही घर में पापा जी प्रवेश कर सकते थे। यह सिलसिला काव्या के दो साल पूरे होने से शुरू हुआ था और आज तक उसी तरह अनवरत चल रहा था। गौरतलब बात यह है कि बांकी बच्चों की तरह काव्या अपने पैसे खाने–पीने की चीजों में खर्च करने की आदी नहीं थी। बचपन से ही गुल्लक में रोज का पैसा झट से रख आती है और शाम को सोने से पहले मशीन में तौला जरूर करती थी। वजन मापने की मशीन लाई तो इसलिए गई थी कि काव्या का समय–समय पर वजन किया जा सके, मगर काव्या ने इसका प्रयोग अपने हित में

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

करना बचपन से ही सीख लिया था। गुल्लक का वजन तो रोज बढ़ रहा था, मगर आकार तो बढने से रहा और अंततः गुल्लक का पेट पूरी तरह भर चुका था। अब बारी थी उसके फूटने की।

अमूमन बच्चे अपना गुल्लक बहुत खुशी–खुशी फोड़ते हैं, ताकि निकले पैसे से खुद के लिए खिलौने या अन्य सामग्री ला सकें, मगर यहाँ मामला अलग ही था। काफी देर विचार करने के बाद काव्या ने गुल्लक न तोड़ने का निर्णय लिया। अब काव्या ने निर्णय लिया था तो मम्मी–पापा भी उसके खिलाफ जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाये क्योंकि या तो काव्या रोती न थी और अगर किसी जिद के कारण रोना शुरू हुआ तो सारा शहर भी न चुप करा सकता था। खैर, गुल्लक सलामत रख दिया गया और अगले दिन दरवाजे के खुलने की शर्त में फुटकर पैसे के साथ ही साथ नया गुल्लक भी जुड़ चुका था। हर साल एक–दो गुल्लक भरते–भरते काव्या ने दस गुल्लक कब भर लिए किसी को भी अंदाजा नहीं लगा। अब तक काव्या गुल्लक तौलना छोड़ चुकी होगी। अगर आप यह सोचते हैं तो आप गलत हैं अब तो काव्या ने अपनी डायरी भी बना ली है, वजन करने के बाद वजन लिखने के लिए। उसकी तमाम सहेलियों ने अलग–अलग कारण देकर गुल्लक तुड़वाने की कोशिश की मगर सब असफल रहीं।

अमूमन शांत व प्रसन्न रहने वाली काव्या आजकल थोड़ी उदास रहती थी। लॉकडाउन के चलते एक तो वह खुद घर में बंद थी दूसरी उसकी कमाई बंद थी। एकाध बार पापा ने ऐसे ही पैसे गुल्लक में डालने को देने चाहे तो काव्या ने झट से मना कर दिया। बोली– 'दरवाजा खोलने के बदले पैसे लेती थी, दरवाजा खोलना बंद तो पैसा भी बंद।' इतना कहकर चुपचाप अपने कमरे में चली गई।

शाम को काव्या मम्मी–पापा के साथ टीवी देख रही थी।विज्ञापन के दौरान बार–बार पी.एम. केयर्स का नाम सुनते–सुनते काव्या ने पूछा– 'ये पी.एम. केयर्स क्या ह ै? कोई मुझे भी बताओ न।'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

काव्या का सवाल सुनकर मम्मी–पापा दोनों का ध्यान टूटा और दोनों की नजरें टीवी से हटकर काव्या की तरफ आ गईं। पापा न बताया– 'देखो काव्या जैसे तुम्हारे गुल्लक में पैसे हैं, वैसे ही पी. एम. केयर्स में भी पैसे होते हैं, जिनका प्रयोग देश में आपदा के समय किया जाता है।'

'मम्मी मुझे तो पैसे पापा देते हैं। ये पी.एम. केयर्स में पैसे कौन देता है?' काव्या ने तुरंत दूसरा सवाल किया।

'पी.एम. केयर्स में कोई भी व्यक्ति पैसा दान कर सकता है।' मम्मी ने जवाब दिया।

'आप दोनों ने दान दिया?' काव्या ने सवाल किया।

मम्मी–पापा दोनों ने गर्दन हिलाते हुए बोला– 'हाँ हम दोनों ने पी.एम. केयर्स दान दिया है ताकि कोरोना बीमारी से लडाई में हम देश की मदद कर सकें...।'

बात खत्म होने से पहले काव्या उठी और कुछ बड़बड़ाते हुये अपने कमरे की तरह चल दी। मम्मी–पापा को लगा कि नींद आ रही होगी सोने गई।

अगले दिन सुबह होते ही काव्या सुबह–सुबह उठी और नहाने चल दी। मम्मी ने बरामदे से काव्या को गुजरते देखा तो आवाज दी– 'कहाँ चल दी इतनी सुबह–सुबह ?'

काव्या ने अनसुना करते हुए बाथरूम में प्रवेश किया। नहाने के बाद काव्या ने कपडे पहने और अपने कमरे में चली गई।

थोड़ी देर बाद कमरे से कुछ टूटने की आवाज आने पर मम्मी तुरंत कमरे की तरफ दौड़ी– 'क्या हुआ काव्या ? क्या गिरा दी ? देख के न चल....! बोलते–बोलते अचानक मम्मी ने चुप्पी साध ली, और स्तब्ध होकर देखने लगी।

काव्या ने अपना एक गुल्लक तोड़ दिया था। इससे पहले कि कोई सवाल–जवाब होता काव्या ने एक के बाद एक गुल्लक तोड़ना चालू रखा।

आवाज सुनकर थोडी देर में पापा भी कमरे में आ गये। दोनों लोग आश्चर्य भरी निगाह से देख रहे थे कि इसे आज क्या हो गया जो खुद ही सारे गुल्लक तोड़ रही है। थोड़ी देर तक बस कमरे में सिक्कों की खनक सुनाई देती रही उसके बाद सन्नाटा पसर गया। काव्या ने सन्नाटा तोडते हुए कहा– 'पापा जल्दी से तैयार हो जाओ मैं वैसे भी पी.एम.केयर्स में दान देने में इतनी देर कर चुकी हूँ, अब और नहीं। चलिए जल्दी से मेरा सारा पैसा दान करके आते हैं।' काव्या बोलती जा रही थी और मम्मी–पापा दोनों हतप्रभ उसे बस निहार रहे थे। दोनों ने मन ही कहा– 'बड़ी जल्दी बड़ी हो गई हमारी काव्या!'

मिरॅकल

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-2-7

संस्करण : 2014, मूल्य : 180/-

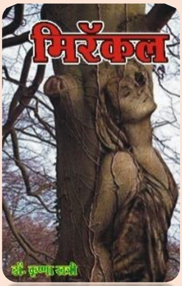

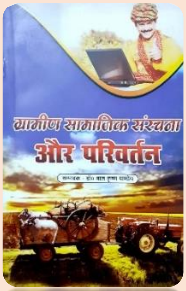

ग्रामीण सामाजिक संरचना और परिवर्तन

डॉ. बालकृष्ण पाण्डेय (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-929060-6-5

संस्करण : 2015, मूल्य : 200/-

फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ 'रेणु' (04 मार्च 1921 –11 अप्रैल 1977) हिंदी भाषा के साहित्यकार थे। उनके पहले उपन्यास मैला आंचल लिए उन्हें पद्‌मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उनका जन्म बिहार के अररिया जिले में फॉरबिसगंज के पास औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। इन्टरमीडिएट के बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। बाद में 1950 में उन्होने नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में भी हिस्सा लिया। उनकी लेखन–शैली वर्णणात्मक थी। पात्रों का चरित्र–निर्माण काफी तेजी से होता था। उनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को आगे बढाता है। उनकी साहित्यिक कृतियाँ हैं, उपन्यास : मैला आंचल, परती परिकथा, जूलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे, पलटू बाबू रोड, कथा–संग्रह : एक आदिम रात्रि की महक, ठुमरी, अग्निखोर, अच्छे आदमीय रिपोर्ताज : ऋणजल–धनजल, नेपाली क्रांतिकथा, वनतुलसी की गंध, श्रुत अश्रुत पूर्वे।

तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम

फणीश्वरनाथ रेणु

हिरामन गाड़ीवान की पीठ में गुदगुदी लगती है... पिछले बीस साल से गाड़ी हाँकता है हिरामन। बैलगाड़ी। सीमा के उस पार, मोरंग राज नेपाल से धान और लकड़ी ढो चुका है। कंट्रोल के जमाने में चोरबाजारी का माल इस पार से उस पार पहुँचाया है। लेकिन कभी तो ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में!

कंट्रोल का जमाना! हिरामन कभी भूल सकता है उस जमाने को! एक बार चार खेप सीमेंट और कपड़े की गाँठों से भरी गाड़ी, जोगबानी में विराटनगर पहुँचने के बाद हिरामन का कलेजा पोख्ता

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

हो गया था। फारबिसगंज का हर चोर–व्यापारी उसको पक्का गाड़ीवान मानता। उसके बैलों की बड़ाई बड़ी गद्दी के बड़े सेठ जी खुद करते, अपनी भाषा में।

गाड़ी पकड़ी गई पाँचवी बार, सीमा के इस पार तराई में। महाजन का मुनीम उसी की गाड़ी पर गाँठों के बीच चुक्की–मुक्की लगा कर छिपा हुआ था। दारोगा साहब की डेढ़ हाथ लंबी चोरबत्ती की रोशनी कितनी तेज होती है, हिरामन जानता है। एक घंटे के लिए आदमी अंधा हो जाता है, एक छटक भी पड़ जाए आँखों पर! रोशनी के साथ कड़कती हुई आवाज– 'ऐ–य! गाड़ी रोको! साले, गोली मार देंगे?'

बीसों गाड़ियाँ एक साथ कचकचा कर रुक गईं। हिरामन ने पहले ही कहा था, श्यह बीस विषावेगा!श दारोगा साहब उसकी गाड़ी में दुबके हुए मुनीम जी पर रोशनी डाल कर पिशाची हँसी हँसे– 'हा–हा–हा! मुनीम जी–ई–ई–ई! ही–ही–ही! ऐ–य, साला गाड़ीवान, मुँह क्या देखता है रे–ए–ए! कंबल हटाओ इस बोरे के मुँह पर से!' हाथ की छोटी लाठी से मुनीम जी के पेट में खोंचा मारते हुए कहा था, 'इस बोरे को! स–स्साला!'

बहुत पुरानी अखज–अदावत होगी दारोगा साहब और मुनीम जी में। नहीं तो उतना रूपया कबूलने पर भी पुलिस–दरोगा का मन न डोले भला! चार हजार तो गाड़ी पर बैठा ही दे रहा है। लाठी से दूसरी बार खोंचा मारा दारोगा ने। श्पाँच हजार!श फिर खोंचा– 'उतरो पहले...'

मुनीम को गाड़ी से नीचे उतार कर दारोगा ने उसकी आँखों पर रोशनी डाल दी। फिर दो सिपाहियों के साथ सड़क से बीस–पच्चीस रस्सी दूर झाड़ी के पास ले गए। गाड़ीवान और गाड़ियों पर पाँच–पाँच बंदूकवाले सिपाहियों का पहरा! हिरामन समझ गया, इस बार निस्तार नहीं। जेल ? हिरामन को जेल का डर नहीं। लेकिन उसके बैल ? न जाने कितने दिनों तक बिना चारा–पानी के सरकारी फाटक में पड़े रहेंगे– भूखे–प्यासे। फिर नीलाम हो जाएँगे। भैया और भौजी को वह मुँह नहीं दिखा सकेगा कभी। ...नीलाम की बोली उसके कानों के पास गूँज गई– एक–दो–तीन! दारोगा और मुनीम में बात पट नहीं रही थी शायद।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

हिरामन की गाड़ी के पास तैनात सिपाही ने अपनी भाषा में दूसरे सिपाही से धीमी आवाज में पूछा, 'का हो ? मामला गोल होखी का?' फिर खैनी–तंबाकू देने के बहाने उस सिपाही के पास चला गया।

एक–दो–तीन! तीन–चार गाड़ियों की आड़। हिरामन ने फैसला कर लिया। उसने धीरे–से अपने बैलों के गले की रस्सियाँ खोल लीं। गाड़ी पर बैठे–बैठे दोनों को जुड़वाँ बाँध दिया। बैल समझ गए उन्हें क्या करना है। हिरामन उतरा, जुती हुई गाड़ी में बाँस की टिकटी लगा कर बैलों के कंधों को बेलाग किया। दोनों के कानों के पास गुदगुदी लगा दी और मन–ही–मन बोला, 'चलो भैयन, जान बचेगी तो ऐसी–ऐसी सग्गड़ गाड़ी बहुत मिलेगी।' ...एक–दो–तीन! नौ–दो–ग्यारह! ..

गाड़ियों की आड़ में सड़क के किनारे दूर तक घनी झाड़ी फैली हुई थी। दम साध कर तीनों प्राणियों ने झाड़ी को पार किया – बेखटक, बेआहट! फिर एक ले, दो ले – दुलकी चाल! दोनों बैल सीना तान कर फिर तराई के घने जंगलों में घुस गए। राह सूँघते, नदी–नाला पार करते हुए भागे पूँछ उठा कर। पीछे–पीछे हिरामन। रात–भर भागते रहे थे तीनों जन।

घर पहुँच कर दो दिन तक बेसुध पड़ा रहा हिरामन। होश में आते ही उसने कान पकड़ कर कसम खाई थी– अब कभी ऐसी चीजों की लदनी नहीं लादेंगे। चोरबाजारी का माल ? तोबा, तोबा!... पता नहीं मुनीम जी का क्या हुआ! भगवान जाने उसकी सग्गड़ गाड़ी का क्या हुआ! असली इस्पात लोहे की धुरी थी। दोनों पहिए तो नहीं, एक पहिया एकदम नया था। गाड़ी में रंगीन डोरियों के फुँदने बड़े जतन से गूँथे गए थे।

दो कसमें खाई हैं उसने। एक चोरबाजारी का माल नहीं लादेंगे। दूसरी – बाँस। अपने हर भाड़ेदार से वह पहले ही पूछ लेता है– 'चोरी– चमारीवाली चीज तो नहीं? और, बाँस? बाँस लादने के लिए पचास रूपए भी दे कोई, हिरामन की गाड़ी नहीं मिलेगी। दूसरे की गाड़ी देखे।

बाँस लदी हुई गाड़ी! गाड़ी से चार हाथ आगे बाँस का अगुआ निकला रहता है और पीछे की ओर चार हाथ पिछुआ! काबू के बाहर रहती है गाड़ी हमेशा। सो बेकाबूवाली लदनी और खरैहिया। शहरवाली

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

बात! तिस पर बाँस का अगुआ पकड़ कर चलनेवाला भाड़ेदार का महाभकुआ नौकर, लड़की–स्कूल की ओर देखने लगा। बस, मोड़ पर घोड़ागाड़ी से टक्कर हो गई। जब तक हिरामन बैलों की रस्सी खींचे, तब तक घोड़ागाड़ी की छतरी बाँस के अगुआ में फँस गई। घोड़ा–गाड़ीवाले ने तड़ातड़ चाबुक मारते हुए गाली दी थी! बाँस की लदनी ही नहीं, हिरामन ने खरैहिया शहर की लदनी भी छोड़ दी। और जब फारबिसगंज से मोरंग का भाड़ा ढोना शुरू किया तो गाड़ी ही पार! कई वर्षों तक हिरामन ने बैलों को आधीदारी पर जोता। आधा भाड़ा गाड़ीवाले का और आधा बैलवाले का। हिस्स! गाड़ीवानी करो मुफ्त! आधीदारी की कमाई से बैलों के ही पेट नहीं भरते। पिछले साल ही उसने अपनी गाड़ी बनवाई है।

देवी मैया भला करें उस सरकस–कंपनी के बाघ का। पिछले साल इसी मेले में बाघगाड़ी को ढोनेवाले दोनों घोड़े मर गए। चंपानगर से फारबिसगंज मेला आने के समय सरकस–कंपनी के मैनेजर ने गाड़ीवान–पट्टी में ऐलान करके कहा– 'सौ रूपया भाड़ा मिलेगा!' एक–दो गाड़ीवान राजी हुए। लेकिन, उनके बैल बाघगाड़ी से दस हाथ दूर ही डर से डिकरने लगे – बाँ–आँ! रस्सी तुड़ा कर भागे। हिरामन ने अपने बैलों की पीठ सहलाते हुए कहा, 'देखो भैयन, ऐसा मौका फिर हाथ न आएगा। यही है मौका अपनी गाड़ी बनवाने का। नहीं तो फिर आधेदारी। अरे पिंजड़े में बंद बाघ का क्या डर? मोरंग की तराई में दहाड़ते हुइ बाघों को देख चुके हो। फिर पीठ पर मैं तो हूँ।...'

गाड़ीवानों के दल में तालियाँ पटपटा उठीं थीं एक साथ। सभी की लाज रख ली हिरामन के बैलों ने। हुमक कर आगे बढ़ गए और बाघगाड़ी में जुट गए – एक–एक करके। सिर्फ दाहिने बैल ने जुतने के बाद ढेर–सा पेशाब किया। हिरामन ने दो दिन तक नाक से कपड़े की पट्टी नहीं खोली थी। बड़ी गद्दी के बडे सेठ जी की तरह नकबंधन लगाए बिना बघाइन गंध बरदास्त नहीं कर सकता कोई। बाघगाड़ी की गाड़ीवानी की है हिरामन ने। कभी ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में। आज रह–रह कर उसकी गाड़ी में चंपा का फूल महक उठता है। पीठ में गुदगुदी लगने पर वह अँगोछे से पीठ झाड़ लेता है।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

हिरामन को लगता है, दो वर्ष से चंपानगर मेले की भगवती मैया उस पर प्रसन्न है। पिछले साल बाघगाड़ी जुट गई। नकद एक सौ रूपए भाड़े के अलावा बुताद, चाह–बिस्कुट और रास्ते–भर बंदर–भालू और जोकर का तमाशा देखा सो फोकट में! और, इस बार यह जनानी सवारी। औरत है या चंपा का फूल! जब से गाड़ी मह–मह महक रही है।

कच्ची सड़क के एक छोटे–से खड्ड में गाड़ी का दाहिना पहिया बेमौके हिचकोला खा गया। हिरामन की गाड़ी से एक हल्की शसिसश की आवाज आई। हिरामन ने दाहिने बैल को दुआली से पीटते हुए कहा, 'साला! क्या समझता है, बोरे की लदनी है क्या?'

'अहा! मारो मत!'

अनदेखी औरत की आवाज ने हिरामन को अचरज में डाल दिया। बच्चों की बोली जैसी महीन, फेनूगिलासी बोली!

मथुरामोहन नौटंकी कंपनी में लैला बननेवाली हीराबाई का नाम किसने नहीं सुना होगा भला! लेकिन हिरामन की बात निराली है! उसने सात साल तक लगातार मेलों की लदनी लादी है, कभी नौटंकी–थियेटर या बायस्कोप सिनेमा नहीं देखा। लैला या हीराबाई का नाम भी उसने नहीं सुना कभी। देखने की क्या बात! सो मेला टूटने के पंद्रह दिन पहले आधी रात की बेला में काली ओढ़नी में लिपटी औरत को देख कर उसके मन में खटका अवश्य लगा था। बक्सा ढोनेवाले नौकर से गाड़ी–भाड़ा में मोल–मोलाई करने की कोशिश की तो ओढ़नीवाली ने सिर हिला कर मना कर दिया। हिरामन ने गाड़ी जोतते हुए नौकर से पूछा, 'क्यों भैया, कोई चोरी चमारी का माल–वाल तो नहीं?' हिरामन को फिर अचरज हुआ। बक्सा ढोनेवाले आदमी ने हाथ के इशारे से गाड़ी हाँकने को कहा और अँधेरे में गायब हो गया। हिरामन को मेले में तंबाकू बेचनेवाली बूढ़ी की काली साड़ी की याद आई थी।

ऐसे में कोई क्या गाड़ी हाँके!

एक तो पीठ में गुदगुदी लग रही है। दूसरे रह–रह कर चंपा का फूल खिल जाता है उसकी गाड़ी में। बैलों को डाँटो तो श्इस–बिसश करने लगती है उसकी सवारी। उसकी सवारी! औरत अकेली, तंबाकू बेचनेवाली बूढ़ी नहीं! आवाज सुनने के बाद वह बार–बार मुड़ कर टप्पर में एक नजर डाल देता है, अँगोछे से पीठ

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

झाड़ता है। ...भगवान जाने क्या लिखा है इस बार उसकी किस्मत में! गाड़ी जब पूरब की ओर मुड़ी, एक टुकड़ा चाँदनी उसकी गाड़ी में समा गई। सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा। हिरामन को सबकुछ रहस्यमय – अजगुत–अजगुत – लग रहा है। सामने चंपानगर से सिंधिया गाँव तक फैला हुआ मैदान... कहीं डाकिन–पिशाचिन तो नहीं ?

हिरामन की सवारी ने करवट ली। चाँदनी पूरे मुखड़े पर पड़ी तो हिरामन चीखते–चीखते रूक गया– 'अरे बाप! ई तो परी है!'

परी की आँखें खुल गईं। हिरामन ने सामने सड़क की ओर मुँह कर लिया और बैलों को टिटकारी दी। वह जीभ को तालू से सटा कर टि–टि–टि–टि आवाज निकालता है। हिरामन की जीभ न जाने कब से सूख कर लकड़ी–जैसी हो गई थी!

'भैया, तुम्हारा नाम क्या है?'

हू–ब–हू फेनूगिलास! ...हिरामन के रोम–रोम बज उठे। मुँह से बोली नहीं निकली। उसके दोनों बैल भी कान खड़े करके इस बोली को परखते हैं।

'मेरा नाम! ...नाम मेरा है हिरामन!'

उसकी सवारी मुस्कराती है। ...मुस्कराहट में खुशबू है।

तब तो मीता कहूँगी, भैया नहीं। – मेरा नाम भी हीरा है।

इस्स! मर्द और औरत के नाम में फर्क होता है।'

'हाँ जी, मेरा नाम भी हीराबाई है।'

कहाँ हिरामन और कहाँ हीराबाई, बहुत फर्क है! हिरामन ने अपने बैलों को झिड़की दी– 'कान चुनिया कर गप सुनने से ही तीस कोस मंजिल कटेगी क्या? इस बाएँ नाटे के पेट में शैतानी भरी है।' हिरामन ने बाएँ बैल को दुआली की हल्की झड़प दी।

'मारो मत, धीरे धीरे चलने दो। जल्दी क्या है!'

हिरामन के सामने सवाल उपस्थित हुआ, वह क्या कह कर शगपश करे हीराबाई से? 'तोहे' कहे या 'अहाँ' ? उसकी भाषा में बड़ों को 'अहाँ' अर्थात 'आप' कह कर संबोधित किया जाता है, कचराही बोली में दो–चार सवाल–जवाब चल सकता है, दिल–खोल गप तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है किसी से।

आसिन–कातिक के भोर में छा जानेवाले कुहासे से हिरामन को पुरानी चिढ़ है। बहुत बार वह सड़क भूल कर भटक चुका है।

किंतु आज के भोर के इस घने कुहासे में भी वह मगन है। नदी के किनारे धन–खेतों से फूले हुए धान के पौधों की पवनिया गंध आती है। पर्व–पावन के दिन गाँव में ऐसी ही सुगंध फैली रहती है। उसकी गाड़ी में फिर चंपा का फूल खिला। उस फूल में एक परी बैठी है। . ..जै भगवती।

हिरामन ने आँख की कनखियों से देखा, उसकी सवारी ... मीता ...हीराबाई की आँखें गुजुर–गुजुर उसको हेर रही हैं। हिरामन के मन में कोई अजानी रागिनी बज उठी। सारी देह सिरसिरा रही है। बोला, 'बैल को मारते हैं तो आपको बहुत बुरा लगता है?'

हीराबाई ने परख लिया, हिरामन सचमुच हीरा है। चालीस साल का हट्टा–कट्टा, काला–कलूटा, देहाती नौजवान अपनी गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता। घर में बड़ा भाई है, खेती करता है। बाल–बच्चेवाला आदमी है। हिरामन भाई से बढ़ कर भाभी की इज्जत करता है। भाभी से डरता भी है। हिरामन की भी शादी हुई थी, बचपन में ही गौने के पहले ही दुलहिन मर गई। हिरामन को अपनी दुलहिन का चेहरा याद नहीं। ...दूसरी शादी ? दूसरी शादी न करने के अनेक कारण हैं। भाभी की जिद, कुमारी लड़की से ही हिरामन की शादी करवाएगी। कुमारी का मतलब हुआ पाँच–सात साल की लड़की। कौन मानता है सरधा–कानून? कोई लड़कीवाला दोब्याहू को अपनी लड़की गरज में पड़ने पर ही दे सकता है। भाभी उसकी तीन–सत्त करके बैठी है, सो बैठी है। भाभी के आगे भैया की भी नहीं चलती! ...अब हिरामन ने तय कर लिया है, शादी नहीं करेगा। कौन बलाय मोल लेने जाए! .. .ब्याह करके फिर गाड़ीवानी क्या करेगा कोई! और सब कुछ छूट जाए, गाड़ीवानी नहीं छोड़ सकता हिरामन।

हीराबाई ने हिरामन के जैसा निश्छल आदमी बहुत कम देखा है। पूछा, 'आपका घर कौन जिल्ला में पड़ता है?' कानपुर नाम सुनते ही जो उसकी हँसी छूटी, तो बैल भड़क उठे। हिरामन हँसते समय सिर नीचा कर लेता है। हँसी बंद होने पर उसने कहा, 'वाह रे कानपुर! तब तो नाकपुर भी होगा?' और जब हीराबाई ने कहा कि नाकपुर भी है, तो वह हँसते–हँसते दुहरा हो गया।

'वाह रे दुनिया! क्या–क्या नाम होता है! कानपुर, नाकपुर!' हिरामन ने हीराबाई के कान के फूल को गौर से देखा। नाक की नकछवि के नग देख कर सिहर उठा– लहू की बूँद!

हिरामन ने हीराबई का नाम नहीं सुना कभी। नौटंकी कंपनी की औरत को वह बाईजी नहीं समझता है। ...कंपनी में काम करनेवाली औरतों को वह देख चुका है। सरकस कंपनी की मालकिन, अपनी दोनों जवान बेटियों के साथ बाघगाड़ी के पास आती थी, बाघ को चारा–पानी देती थी, प्यार भी करती थी खूब। हिरामन के बैलों को भी डबलरोटी–बिस्कुट खिलाया था बड़ी बेटी ने।

हिरामन होशियार है। कुहासा छँटते ही अपनी चादर से टप्पर में परदा कर दिया– 'बस दो घंटा! उसके बाद रास्ता चलना मुश्किल है। कातिक की सुबह की धूल आप बर्दास्त न कर सकिएगा। कजरी नदी के किनारे तेगछिया के पास गाड़ी लगा देंगे। दुपहरिया काट कर... ।'

सामने से आती हुई गाड़ी को दूर से ही देख कर वह सतर्क हो गया। लीक और बैलों पर ध्यान लगा कर बैठ गया। राह काटते हुए गाड़ीवान ने पूछा, 'मेला टूट रहा है क्या भाई?'

हिरामन ने जवाब दिया, वह मेले की बात नहीं जानता। उसकी गाड़ी पर 'बिदागी' (नैहर या ससुराल जाती हुई लड़की) है। न जाने किस गाँव का नाम बता दिया हिरामन ने।

'छतापुर–पचीरा कहाँ है?'

'कहीं हो, यह ले कर आप क्या करिएगा?' हिरामन अपनी चतुराई पर हँसा। परदा डाल देने पर भी पीठ में गुदगुदी लगती है। हिरामन परदे के छेद से देखता है। हीराबाई एक दियासलाई की डिब्बी के बराबर आईने में अपने दाँत देख रही है। ...मदनपुर मेले में एक बार बैलों को नन्हीं–चित्ती कौड़ियों की माला खरीद दी थी। हिरामन ने, छोटी–छोटी, नन्हीं–नन्हीं कौड़ियों की पाँत।

तेगछिया के तीनों पेड़ दूर से ही दिखलाई पड़ते हैं। हिरामन ने परदे को जरा सरकाते हुए कहा, 'देखिए, यही है तेगछिया। दो पेड़ जटामासी बड़ है और एक उस फूल का क्या नाम है, आपके कुरते पर जैसा फूल छपा हुआ है, वैसा ही, खूब महकता है, दो कोस दूर तक गंध जाती है, उस फूल को खमीरा तंबाकू में डाल कर पीते भी हैं लोग।'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

'और उस अमराई की आड़ से कई मकान दिखाई पड़ते हैं, वहाँ कोई गाँव है या मंदिर?'

हिरामन ने बीड़ी सुलगाने के पहले पूछा, 'बीड़ी पीएँ? आपको गंध तो नहीं लगेगी? ...वही है नामलगर ड्योढ़ी। जिस राजा के मेले से हम लोग आ रहे हैं, उसी का दियाद–गोतिया है। ...जा रे जमाना!' हिरामन ने जा रे जमाना कह कर बात को चाशनी में डाल दिया। हीराबाई ने टप्पर के परदे को तिरछे खोंस दिया। हीराबाई की दंतपंक्ति।

'कौन जमाना?' ठुड्डी पर हाथ रख कर साग्रह बोली।

'नामलगर ड्योढ़ी का जमाना! क्या था और क्या–से–क्या हो गया!'

हिरामन गप रसाने का भेद जानता है। हीराबाई बोली, 'तुमने देखा था वह जमाना?'

'देखा नहीं, सुना है। राज कैसे गया, बड़ी हैफवाली कहानी है। सुनते हैं, घर में देवता ने जन्म ले लिया। कहिए भला, देवता आखिर देवता है। है या नहीं? इंदरासन छोड़ कर मिरतूभुवन में जन्म ले ले तो उसका तेज कैसे सम्हाल सकता है कोई! सूरजमुखी फूल की तरह माथे के पास तेज खिला रहता। लेकिन नजर का फेर, किसी ने नहीं पहचाना। एक बार उपलैन में लाट साहब मय लाटनी के, हवागाड़ी से आए थे। लाट ने भी नहीं, पहचाना आखिर लटनी ने। सुरजमुखी तेज देखते ही बोल उठी – ए मैन राजा साहब, सुनो, यह आदमी का बच्चा नहीं है, देवता है।'

हिरामन ने लाटनी की बोली की नकल उतारते समय खूब डैम–फैट–लैट किया। हीराबाई दिल खोल कर हँसी। हँसते समय उसकी सारी देह दुलकती है। हीराबाई ने अपनी ओढ़नी ठीक कर ली। तब हिरामन को लगा कि... लगा कि...

'तब? उसके बाद क्या हुआ मीता?'

'इस्स! कथा सुनने का बड़ा सौक है आपको? ...लेकिन, काला आदमी, राजा क्या महाराजा भी हो जाए, रहेगा काला आदमी ही। साहेब के जैसे अक्किल कहाँ से पाएगा! हँस कर बात उड़ा दी सभी ने। तब रानी को बार–बार सपना देने लगा देवता! सेवा नहीं कर सकते तो जाने दो, नहीं, रहेंगे तुम्हारे यहाँ। इसके बाद देवता का

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

खेल शुरू हुआ। सबसे पहले दोनों दंतार हाथी मरे, फिर घोड़ा, फिर पटपटांग...।'

'पटपटांग क्या है?'

हिरामन का मन पल–पल में बदल रहा है। मन में सतरंगा छाता धीरे–धीरे खिल रहा है, उसको लगता है। ...उसकी गाड़ी पर देवकुल की औरत सवार है। देवता आखिर देवता है!

'पटपटांग! धन–दौलत, माल–मवेसी सब साफ! देवता इंदरासन चला गया।'

हीराबाई ने ओझल होते हुए मंदिर के कँगूरे की ओर देख कर लंबी साँस ली।

'लेकिन देवता ने जाते–जाते कहा, इस राज में कभी एक छोड़ कर दो बेटा नहीं होगा। धन हम अपने साथ ले जा रहे हैं, गुन छोड़ जाते हैं। देवता के साथ सभी देव–देवी चले गए, सिर्फ सरोसती मैया रह गई। उसी का मंदिर है।'

देसी घोड़े पर पाट के बोझ लादे हुए बनियों को आते देख कर हिरामन ने टप्पर के परदे को गिरा दिया। बैलों को ललकार कर बिदेसिया नाच का वंदनागीत गाने लगा –

'जै मैया सरोसती, अरजी करत बानी,
हमरा पर होखू सहाई हे मैया, हमरा पर होखू सहाई!'

घोड़लद्दे बनियों से हिरामन ने हुलस कर पूछा, 'क्या भाव पटुआ खरीदते हैं महाजन?'

लँगड़े घोड़ेवाले बनिए ने बटगमनी जवाब दिया– 'नीचे सताइस–अठाइस, ऊपर तीस। जैसा माल, वैसा भाव।'

जवान बनिये ने पूछा, 'मेले का क्या हालचाल है, भाई? कौन नौटंकी कंपनी का खेल हो रहा है, रौता कंपनी या मथुरामोहन?'

'मेले का हाल मेलावाला जाने?' हिरामन ने फिर छतापुर–पचीरा का नाम लिया।

सूरज दो बाँस ऊपर आ गया था। हिरामन अपने बैलों से बात करने लगा– 'एक कोस जमीन! जरा दम बाँध कर चलो। प्यास की बेला हो गई न! याद है, उस बार तेगछिया के पास सरकस कंपनी के जोकर और बंदर नचानेवाला साहब में झगड़ा हो गया था। जोकरवा ठीक बंदर की तरह दाँत किटकिटा कर किक्रियाने लगा था, न जाने किस–किस देस–मुलुक के आदमी आते हैं!'

हिरामन ने फिर परदे के छेद से देखा, हीराबई एक कागज के टुकड़े पर आँख गड़ा कर बैठी है। हिरामन का मन आज हल्के सुर में बँधा है। उसको तरह–तरह के गीतों की याद आती है। बीस–पच्चीस साल पहले, बिदेसिया, बलवाही, छोकरा–नाचनेवाले एक–से–एक गजल खेमटा गाते थे। अब तो, भोंपा में भोंपू–भोंपू करके कौन गीत गाते हैं लोग! जा रे जमाना! छोकरा–नाच के गीत की याद आई हिरामन को–

'सजनवा बैरी हो गश य हमारो! सजनवा.....!
अरे, चिठिया हो ते सब कोई बाँचे, चिठिया हो तो....
हाय! करमवा, होय करमवा....।'

गाड़ी की बल्ली पर उँगलियों से ताल दे कर गीत को काट दिया हिरामन ने। छोकरा–नाच के मनुवाँ नटुवा का मुँह हीराबाई–जैसा ही था। ...कहाँ चला गया वह जमाना? हर महीने गाँव में नाचनेवाले आते थे। हिरामन ने छोकरा–नाच के चलते अपनी भाभी की न जाने कितनी बोली–ठोली सुनी थी। भाई ने घर से निकल जाने को कहा था।

आज हिरामन पर माँ सरोसती सहाय हैं, लगता है। हीराबाई बोली, 'वाह, कितना बढ़िया गाते हो तुम!'

हिरामन का मुँह लाल हो गया। वह सिर नीचा कर के हँसने लगा।

आज तेगछिया पर रहनेवाले महावीर स्वामी भी सहाय हैं हिरामन पर। तेगछिया के नीचे एक भी गाड़ी नहीं। हमेशा गाड़ी और गाड़ीवानों की भीड़ लगी रहती हैं यहाँ। सिर्फ एक साइकिलवाला बैठ कर सुस्ता रहा है। महावीर स्वामी को सुमर कर हिरामन ने गाड़ी रोकी। हीराबाई परदा हटाने लगी। हिरामन ने पहली बार आँखों से बात की हीराबाई से– साइकिलवाला इधर ही टकटकी लगा कर देख रहा है।

बैलों को खोलने के पहले बाँस की टिकटी लगा कर गाड़ी को टिका दिया। फिर साइकिलवाले की ओर बार–बार घूरते हुए पूछा, 'कहाँ जाना है? मेला? कहाँ से आना हो रहा है? बिसनपुर से? बस, इतनी ही दूर में थसथसा कर थक गए? – जा रे जवानी!'

साइकिलवाला दुबला–पतला नौजवान मिनमिना कर कुछ बोला और बीड़ी सुलगा कर उठ खड़ा हुआ। हिरामन दुनिया–भर की

निगाह से बचा कर रखना चाहता है हीराबाई को। उसने चारों ओर नजर दौड़ा कर देख लिया – कहीं कोई गाड़ी या घोड़ा नहीं।

कजरी नदी की दुबली–पतली धारा तेगछिया के पास आ कर पूरब की ओर मुड़ गई है। हीराबाई पानी में बैठी हुई भैसों और उनकी पीठ पर बैठे हुए बगुलों को देखती रही।

हिरामन बोला, 'जाइए, घाट पर मुँह–हाथ धो आइए!'

हीराबाई गाड़ी से नीचे उतरी। हिरामन का कलेजा धड़क उठा। ...नहीं, नहीं! पाँव सीधे हैं, टेढ़े नहीं। लेकिन, तलुवा इतना लाल क्यों हैं? हीराबाई घाट की ओर चली गई, गाँव की बहू–बेटी की तरह सिर नीचा कर के धीरे–धीरे। कौन कहेगा कि कंपनी की औरत है! . ..औरत नहीं, लड़की। शायद कुमारी ही है।

हिरामन टिकटी पर टिकी गाड़ी पर बैठ गया। उसने टप्पर में झाँक कर देखा। एक बार इधर–उधर देख कर हीराबाई के तकिए पर हाथ रख दिया। फिर तकिए पर केहुनी डाल कर झुक गया, झुकता गया। खुशबू उसकी देह में समा गई। तकिए के गिलाफ पर कढ़े फूलों को उँगलियों से छू कर उसने सूँघा, हाय रे हाय! इतनी सुगंध! हिरामन को लगा, एक साथ पाँच चिलम गाँजा फूँक कर वह उठा है। हीराबाई के छोटे आईने में उसने अपना मुँह देखा। आँखें उसकी इतनी लाल क्यों हैं?

हीराबाई लौट कर आई तो उसने हँस कर कहा, 'अब आप गाड़ी का पहरा दीजिए, मैं आता हूँ तुरंत।'

हिरामन ने अपना सफरी झोली से सहेजी हुई गंजी निकाली। गमछा झाड़ कर कंधे पर लिया और हाथ में बालटी लटका कर चला। उसके बैलों ने बारी–बारी से श्हुँक–हुँकश करके कुछ कहा। हिरामन ने जाते–जाते उलट कर कहा, श्हाँ,हाँ, प्यास सभी को लगी है। लौट कर आता हूँ तो घास दूँगा, बदमासी मत करो!'

बैलों ने कान हिलाए।

नहा–धो कर कब लौटा हिरामन, हीराबाई को नहीं मालूम। कजरी की धारा को देखते–देखते उसकी आँखों में रात की उचटी हुई नींद लौट आई थी। हिरामन पास के गाँव से जलपान के लिए दही–चूड़ा–चीनी ले आया है।

'उठिए, नींद तोड़िए! दो मुट्ठी जलपान कर लीजिए!'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

हीराबाई आँख खोल कर अचरज में पड़ गई। एक हाथ में मिट्टी के नए बरतन में दही, केले के पत्ते। दूसरे हाथ में बालटी–भर पानी। आँखों में आत्मीयतापूर्ण अनुरोध!

'इतनी चीजें कहाँ से ले आए!'

'इस गाँव का दही नामी है। ...चाह तो फारबिसगंज जा कर ही पाइएगा।'

हिरामन की देह की गुदगुदी मिट गई।

हीराबाई ने कहा, 'तुम भी पत्तल बिछाओ। ...क्यों? तुम नहीं खाओगे तो समेट कर रख लो अपनी झोली में। मैं भी नहीं खाऊँगी।'

'इस्स!' हिरामन लजा कर बोला, 'अच्छी बात! आप खा लीजिए पहले!'

'पहले–पीछे क्या? तुम भी बैठो।'

हिरामन का जी जुड़ा गया। हीराबाई ने अपने हाथ से उसका पत्तल बिछा दिया, पानी छींट दिया, चूड़ा निकाल कर दिया। इस्स! धन्न है, धन्न है! हिरामन ने देखा, भगवती मैया भोग लगा रही है। लाल होठों पर गोरस का परस! ...पहाड़ी तोते को दूध–भात खाते देखा है?

दिन ढल गया। टप्पर में सोई हीराबाई और जमीन पर दरी बिछा कर सोए हिरामन की नींद एक ही साथ खुली। ...मेले की ओर जानेवाली गाड़ियाँ तेगछिया के पास रूकी हैं। बच्चे कचर–पचर कर रहे हैं। हिरामन हड़बड़ा कर उठा। टप्पर के अंदर झाँक कर इशारे से कहा– 'दिन ढल गया! गाड़ी में बैलों को जोतते समय उसने गाड़ीवानों के सवालों का कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ी हाँकते हुए बोला, श्सिरपुर बाजार के इसपिताल की डागडरनी हैं। रोगी देखने जा रही हैं। पास ही कुड़मागाम।'

हीराबाई छत्तापुर–पचीरा का नाम भूल गई। गाड़ी जब कुछ दूर आगे बढ़ आई तो उसने हँस कर पूछा, 'पत्तापुर–छपीरा?'

हँसते–हँसते पेट में बल पड़ जाए हिरामन के– 'पत्तापुर–छपीरा! हा–हा। वे लोग छत्तापुर–पचीरा के ही गाड़ीवान थे, उनसे कैसे कहता! ही–ही–ही!'

हीराबाई मुस्कराती हुई गाँव की ओर देखने लगी।

सड़क तेगछिया गाँव के बीच से निकलती है। गाँव के बच्चों ने परदेवाली गाड़ी देखी और तालियाँ बजा–बजा कर रटी हुई पंक्तियाँ दुहराने लगे –

'लाली–लाली डोलिया में
लाली रे दुलहिनिया
पान खाए...!'

हिरामन हँसा। ...दुलहिनिया ...लाली–लाली डोलिया! दुलहिनिया पान खाती है, दुलहा की पगड़ी में मुँह पोंछती है। ओ दुलहिनिया, तेगछिया गाँव के बच्चों को याद रखना। लौटती बेर गुड़ का लड्डू लेती आइयो। लाख बरिस तेरा हुलहा जीए! ...कितने दिनों का हौसला पूरा हुआ है हिरामन का! ऐसे कितने सपने देखे हैं उसने! वह अपनी दुलहिन को ले कर लौट रहा है। हर गाँव के बच्चे तालियाँ बजा कर गा रहे हैं। हर आँगन से झाँक कर देख रही हैं औरतें। मर्द लोग पूछते हैं, 'कहाँ की गाड़ी है, कहाँ जाएगी?' उसकी दुलहिन डोली का परदा थोड़ा सरका कर देखती है। और भी कितने सपने... गाँव से बाहर निकल कर उसने कनखियों से टप्पर के अंदर देखा, हीराबाई कुछ सोच रही है। हिरामन भी किसी सोच में पड़ गया। थोड़ी देर के बाद वह गुनगुनाने लगा–

'सजन रे झूठ मति बोलो, खुदा के पास जाना है।
न हाथी है, न घोड़ा है,
वहाँ पैदल ही जाना है। सजन रे...।'

हीराबाई ने पूछा, 'क्यों मीता? तुम्हारी अपनी बोली में कोई गीत नहीं क्या?'

हिरामन अब बेखटक हीराबाई की आँखों में आँखें डाल कर बात करता है। कंपनी की औरत भी ऐसी होती है? सरकस कंपनी की मालकिन मेम थी। लेकिन हीराबाई! गाँव की बोली में गीत सुनना चाहती है। वह खुल कर मुस्कराया– 'गाँव की बोली आप समझिएगा?'

'हूँ–ऊँ–ऊँ !' हीराबाई ने गर्दन हिलाई। कान के झुमके हिल गए।

हिरामन कुछ देर तक बैलों को हाँकता रहा चुपचाप। फिर बोला, 'गीत जरूर ही सुनिएगा? नहीं मानिएगा? इस्स! इतना सौक गाँव का गीत सुनने का है आपको! तब लीक छोड़ानी होगी। चालू रास्ते में कैसे गीत गा सकता है कोई!'

हिरामन ने बाएँ बैल की रस्सी खींच कर दाहिने को लीक से बाहर किया और बोला, 'हरिपुर होकर नहीं जाएँगे तब।'

चालू लीक को काटते देख कर हिरामन की गाड़ी के पीछेवाले गाड़ीवान ने चिल्ला कर पूछा, 'काहे हो गाड़ीवान, लीक छोड़ कर बेलीक कहाँ उधर?'

हिरामन ने हवा में दुआली घुमाते हुए जवाब दिया– 'कहाँ है बेलीकी? वह सड़क ननपुर तो नहीं जाएगी।' फिर अपने–आप बड़बड़ाया, 'इस मुलुक के लोगों की यही आदत बुरी है। राह चलते एक सौ जिरह करेंगे। अरे भाई, तुमको जाना है, जाओ। ...देहाती भुच्च सब!'

ननपुर की सड़क पर गाड़ी ला कर हिरामन ने बैलों की रस्सी ढीली कर दी। बैलों ने दुलकी चाल छोड़ कर कदमचाल पकड़ी। हीराबाई ने देखा, सचमुच ननपुर की सड़क बड़ी सूनी है। हिरामन उसकी आँखों की बोली समझता है– 'घबराने की बात नहीं। यह सड़क भी फारबिसगंज जाएगी, राह–घाट के लोग बहुत अच्छे हैं। .. .एक घड़ी रात तक हम लोग पहुँच जाएँगे।'

हीराबाई को फारबिसगंज पहुँचने की जल्दी नहीं। हिरामन पर उसको इतना भरोसा हो गया कि डर–भय की कोई बात नहीं उठती है मन में। हिरामन ने पहले जी–भर मुस्करा लिया। कौन गीत गाए वह! हीराबाई को गीत और कथा दोनों का शौक है ...इस्स! महुआ घटवारिन? वह बोला, श्अच्छा, जब आपको इतना सौक है तो सुनिए महुआ घटवारिन का गीत। इसमें गीत भी है, कथा भी है।श ...कितने दिनों के बाद भगवती ने यह हौसला भी पूरा कर दिया। जै भगवती! आज हिरामन अपने मन को खलास कर लेगा। वह हीराबाई की थमी हुई मुस्कुराहट को देखता रहा।

'सुनिए! आज भी परमार नदी में महुआ घटवारिन के कई पुराने घाट हैं। इसी मुलुक की थी महुआ! थी तो घटवारिन, लेकिन सौ सतवंती में एक थी। उसका बाप दारू–ताड़ी पी कर दिन–रात बेहोश पड़ा रहता। उसकी सौतेली माँ साच्छात राकसनी! बहुत बड़ी नजर–चालक। रात में गाँजा–दारू–अफीम चुरा कर बेचनेवाले से ले कर तरह–तरह के लोगों से उसकी जान–पहचान थी। सबसे घुट्टा–भर हेल–मेल। महुआ कुमारी थी। लेकिन काम कराते–कराते उसकी हड्डी

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

निकाल दी थी राकसनी ने। जवान हो गई, कहीं शादी–ब्याह की बात भी नहीं चलाई। एक रात की बात सुनिए!'

हिरामन ने धीरे–धीरे गुनगुना कर गला साफ किया –

हे अ–अ–अ– सावना–भादवा के
र– उमड़ल नदिया –गे–में–मैं–यो–ओ–ओ,
मैयो गे रैनि भयावनि–हे–ए–ए–एय
तड़का–तड़के–धड़के करेज–आ–आ मोरा
कि हमहूँ जे बार–नान्ही रे–ए–ए ...।

ओ माँ! सावन–भादों की उमड़ी हुई नदी, भयावनी रात, बिजली कड़कती है, मैं बारी–क्वारी नन्ही बच्ची, मेरा कलेजा धड़कता है। अकेली कैसे जाऊँ घाट पर? सो भी परदेशी राही–बटोही के पैर में तेल लगाने के लिए! सत–माँ ने अपनी बज्जर–किवाड़ी बंद कर ली। आसमान में मेघ हड़बड़ा उठे और हरहरा कर बरसा होने लगी। महुआ रोने लगी, अपनी माँ को याद करके। आज उसकी माँ रहती तो ऐसे दुरदिन में कलेजे से सटा कर रखती अपनी महुआ बेटी को। गे मइया, इसी दिन के लिए, यही दिखाने के लिए तुमने कोख में रखा था? महुआ अपनी माँ पर गुस्साई– क्यों वह अकेली मर गई, जी–भर कर कोसती हुई बोली।

हिरामन ने लक्ष्य किया, हीराबाई तकिए पर केहुनी गड़ा कर, गीत में मगन एकटक उसकी ओर देख रही है। ...खोई हुई सूरत कैसी भोली लगती है! हिरामन ने गले में कँपकँपी पैदा की–

हूँ–ऊँ–ऊँ–रे डाइनियाँ मैयो मोरी–ई–ई,
नोनवा चटाई काहे नाहिं मारलि सौरी–घर–अ–अ।
एहि दिनवाँ खातिर छिनरो धिया
तेंहु पोसलि कि नेनू–दूध उगटन ..।

हिरामन ने दम लेते हुए पूछा, 'भाखा भी समझती हैं कुछ या खाली गीत ही सुनती हैं?'

हीरा बोली, 'समझती हूँ। उगटन माने उबटन– जो देह में लगाते हैं।'

हिरामन ने विस्मित होकर कहा, 'इस्स! ...सो रोने–धोने से क्या होए! सौदागर ने पूरा दाम चुका दिया था महुआ का। बाल पकड़ कर घसीटता हुआ नाव पर चढ़ा और माँझी को हुकुम दिया, नाव खोलो, पाल बाँधो! पालवाली नाव परवाली चिड़िया की तरह उड़

चली। रात–भर महुआ रोती–छटपटाती रही। सौदागर के नौकरों ने बहुत डराया–धमकाया – चुप रहो, नहीं तो उठा कर पानी में फेंक देंगे। बस, महुआ को बात सूझ गई। भोर का तारा मेघ की आड़ से जरा बाहर आया, फिर छिप गया। इधर महुआ भी छपाक से कूद पड़ी पानी में। ...सौदागर का एक नौकर महुआ को देखते ही मोहित हो गया था। महुआ की पीठ पर वह भी कूदा। उलटी धारा में तैरना खेल नहीं, सो भी भरी भादों की नदी में। महुआ असल घटवारिन की बेटी थी। मछली भी भला थकती है पानी में! सफरी मछली–जैसी फरफराती, पानी चीरती भागी चली जा रही है। और उसके पीछे सौदागर का नौकर पुकार–पुकार कर कहता है– महुआ जरा थमो, तुमको पकड़ने नहीं आ रहा, तुम्हारा साथी हूँ। जिंदगी–भर साथ रहेंगे हम लोग। लेकिन... ।

हिरामन का बहुत प्रिय गीत है यह। महुआ घटवारिन गाते समय उसके सामने सावन–भादों की नदी उमड़ने लगती है, अमावस्या की रात और घने बादलों में रह–रह कर बिजली चमक उठती है। उसी चमक में लहरों से लड़ती हुई बारी–कुमारी महुआ की झलक उसे मिल जाती है। सफरी मछली की चाल और तेज हो जाती है। उसको लगता है, वह खुद सौदागर का नौकर है। महुआ कोई बात नहीं सुनती। परतीत करती नहीं। उलट कर देखती भी नहीं। और वह थक गया है, तैरते–तैरते।

इस बार लगता है महुआ ने अपने को पकड़ा दिया। खुद ही पकड़ में आ गई है। उसने महुआ को छू लिया है, पा लिया है, उसकी थकन दूर हो गई है। पंद्रह–बीस साल तक उमड़ी हुई नदी की उलटी धारा में तैरते हुए उसके मन को किनारा मिल गया है। आनंद के आँसू कोई भी रोक नहीं मानते।

उसने हीराबाई से अपनी गीली आँखें चुराने की कोशिश की। किंतु हीरा तो उसके मन में बैठी न जाने कब से सब कुछ देख रही थी। हिरामन ने अपनी काँपती हुई बोली को काबू में ला कर बैलों को झिड़की दी– 'इस गीत में न जाने क्या है कि सुनते ही दोनों थसथसा जाते हैं। लगता है, सौ मन बोझ लाद दिया किसी ने।'

हीराबाई लंबी साँस लेती है। हिरामन के अंग–अंग में उमंग समा जाती है।

'तुम तो उस्ताद हो मीता!'

'इस्स!'

आसिन–कातिक का सूरज दो बाँस दिन रहते ही कुम्हला जाता है। सूरज डूबने से पहले ही ननपुर पहुँचना है, हिरामन अपने बैलों को समझा रहा है– 'कदम खोल कर और कलेजा बाँध कर चलो ...ए ...छि ...छि! बढ़के भैयन! ले–ले–ले–ए हे –य!'

ननपुर तक वह अपने बैलों को ललकारता रहा। हर ललकार के पहले वह अपने बैलों को बीती हुई बातों की याद दिलाता– याद नहीं, चौधरी की बेटी की बरात में कितनी गाड़ियाँ थीं, सबको कैसे मात किया था! हाँ, वह कदम निकालो। ले–ले–ले! ननपुर से फारबिसगंज तीन कोस! दो घंटे और!

ननपुर के हाट पर आजकल चाय भी बिकने लगी है। हिरामन अपने लोटे में चाय भर कर ले आया। ...कंपनी की औरत जानता है वह, सारा दिन, घड़ी घड़ी भर में चाय पीती रहती है। चाय है या जान!

हीरा हँसते–हँसते लोट–पोट हो रही है– 'अरे, तुमसे किसने कह दिया कि क्वारे आदमी को चाय नहीं पीनी चाहिए?'

हिरामन लजा गया। क्या बोले वह? ...लाज की बात। लेकिन वह भोग चुका है एक बार। सरकस कंपनी की मेम के हाथ की चाय पी कर उसने देख लिया है। बडी गर्म तासीर!

'पीजिए गुरू जी!' हीरा हँसी!

'इस्स!'

ननपुर हाट पर ही दीया–बाती जल चुकी थी। हिरामन ने अपना सफरी लालटेन जला कर पिछवा में लटका दिया। आजकल शहर से पाँच कोस दूर के गाँववाले भी अपने को शहरू समझने लगे हैं। बिना रोशनी की गाड़ी को पकड़ कर चालान कर देते हैं। बारह बखेड़ा !

'आप मुझे गुरू जी मत कहिए।'

'तुम मेरे उस्ताद हो। हमारे शास्तर में लिखा हुआ है, एक अच्छर सिखानेवाला भी गुरू और एक राग सिखानेवाला भी उस्ताद!'

'इस्स! सास्तर–पुरान भी जानती हैं! ...मैंने क्या सिखाया? मैं क्या ...?'

हीरा हँसकर गुनगुनाने लगी– 'हे–अ–अ–अ– सावना–भादवा के–र ...!'

हिरामन अचरज के मारे गूँगा हो गया। ...इस्स! इतना तेज जेहन! हू—ब—हू महुआ घटवारिन!

गाड़ी सीताधार की एक सूखी धारा की उतराई पर गड़गड़ा कर नीचे की ओर उतरी। हीराबाई ने हिरामन का कंधा धर लिया एक हाथ से। बहुत देर तक हिरामन के कंधे पर उसकी उँगलियाँ पड़ी रहीं। हिरामन ने नजर फिरा कर कंधे पर केंद्रित करने की कोशिश की, कई बार। गाड़ी चढ़ाई पर पहुँची तो हीरा की ढीली उँगलियाँ फिर तन गईं।

सामने फारबिसगंज शहर की रोशनी झिलमिला रही है। शहर से कुछ दूर हट कर मेले की रोशनी ...टप्पर में लटके लालटेन की रोशनी में छाया नाचती है आसपास।... डबडबाई आँखों से, हर रोशनी सूरजमुखी फूल की तरह दिखाई पड़ती है।

फारबिसगंज तो हिरामन का घर—दुआर है! न जाने कितनी बार वह फारबिसगंज आया है। मेले की लदनी लादी है। किसी औरत के साथ? हाँ, एक बार। उसकी भाभी जिस साल आई थी गौने में। इसी तरह तिरपाल से गाड़ी को चारों ओर से घेर कर बासा बनाया गया था।

हिरामन अपनी गाड़ी को तिरपाल से घेर रहा है, गाड़ीवान—पट्टी में। सुबह होते ही रौता नौटंकी कंपनी के मैनेजर से बात करके भरती हो जाएगी हीराबाई। परसों मेला खुल रहा है। इस बार मेले में पालचट्टी खूब जमी है। ...बस, एक रात। आज रात—भर हिरामन की गाड़ी में रहेगी वह। ...हिरामन की गाड़ी में नहीं, घर में! श्कहाँ की गाड़ी है? ...कौन, हिरामन! किस मेले से? किस चीज की लदनी है?श

गाँव—समाज के गाड़ीवान, एक—दूसरे को खोज कर, आसपास गाड़ी लगा कर बासा डालते हैं। अपने गाँव के लालमोहर, धुन्नीराम और पलटदास वगैरह गाड़ीवानों के दल को देख कर हिरामन अचकचा गया। उधर पलटदास टप्पर में झाँक कर भड़का। मानो बाघ पर नजर पड़ गई। हिरामन ने इशारे से सभी को चुप किया। फिर गाड़ी की ओर कनखी मार कर फुसफुसाया— 'चुप! कंपनी की औरत है, नौटंकी कंपनी की।'

'कंपनी की —ई—ई—ई!'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

एक नहीं, अब चार हिरामन! चारों ने अचरज से एक–दूसरे को देखा। कंपनी नाम में कितना असर है! हिरामन ने लक्ष्य किया, तीनों एक साथ सटक–दम हो गए। लालमोहर ने जरा दूर हट कर बतियाने की इच्छा प्रकट की, इशारे से ही। हिरामन ने टप्पर की ओर मुँह करके कहा, 'होटिल तो नहीं खुला होगा कोई, हलवाई के यहाँ से पक्की ले आवें!'

'हिरामन, जरा इधर सुनो। ...मैं कुछ नहीं खाऊँगी अभी। लो, तुम खा आओ।'

'क्या है, पैसा? इस्स!' ...पैसा दे कर हिरामन ने कभी फारबिसगंज में कच्ची–पक्की नहीं खाई। उसके गाँव के इतने गाड़ीवान हैं, किस दिन के लिए? वह छू नहीं सकता पैसा। उसने हीराबाई से कहा, 'बेकार, मेला–बाजार में हुज्जत मत कीजिए। पैसा रखिए।श मौका पा कर लालमोहर भी टप्पर के करीब आ गया। उसने सलाम करते हुए कहा, श्चार आदमी के भात में दो आदमी खुसी से खा सकते हैं। बासा पर भात चढा हुआ है। हें–हें–हें! हम लोग एकहि गाँव के हैं। गौंवाँ–गिरामिन के रहते होटिल और हलवाई के यहाँ खाएगा हिरामन?'

हिरामन ने लालमोहर का हाथ टीप दिया– 'बेसी भचर–भचर मत बको।'

गाड़ी से चार रस्सी दूर जाते–जाते धुन्नीराम ने अपने कुलबुलाते हुए दिल की बात खोल दी– 'इस्स! तुम भी खूब हो हिरामन! उस साल कंपनी का बाघ, इस बार कंपनी की जनानी!'

हिरामन ने दबी आवाज में कहा, 'भाई रे, यह हम लोगों के मुलुक की जनाना नहीं कि लटपट बोली सुन कर भी चुप रह जाए। एक तो पच्छिम की औरत, तिस पर कंपनी की!'

धुन्नीराम ने अपनी शंका प्रकट की– 'लेकिन कंपनी में तो सुनते हैं पतुरिया रहती है।'

'धत्!' सभी ने एक साथ उसको दुरदुरा दिया, 'कैसा आदमी है! पतुरिया रहेगी कंपनी में भला! देखो इसकी बुद्धि। सुना है, देखा तो नहीं है कभी!'

धुन्नीराम ने अपनी गलती मान ली। पलटदास को बात सूझी– 'हिरामन भाई, जनाना जात अकेली रहेगी गाड़ी पर? कुछ भी हो, जनाना आखिर जनाना ही है। कोई जरूरत ही पड़ जाए!'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

यह बात सभी को अच्छी लगी। हिरामन ने कहा, 'बात ठीक है। पलट, तुम लौट जाओ, गाड़ी के पास ही रहना। और देखो, गपशप जरा होशियारी से करना। हाँ!'

हिरामन की देह से अतर–गुलाब की खुशबू निकलती है। हिरामन करमसाँड़ है। उस बार महीनों तक उसकी देह से बघाइन गंध नहीं गई। लालमोहर ने हिरामन की गमछी सूँघ ली– 'ए–ह!' हिरामन चलते–चलते रुक गया– 'क्या करें लालमोहर भाई, जरा कहो तो! बड़ी जिद्द करती है, कहती है, नौटंकी देखना ही होगा।'

'फोकट में ही?'

'और गाँव नहीं पहुँचेगी यह बात?'

हिरामन बोला, 'नहीं जी! एक रात नौटंकी देख कर जिंदगी–भर बोली–ठोली कौन सुने? ...देसी मुर्गी विलायती चाल!'

धुन्नीराम ने पूछा, 'फोकट में देखने पर भी तुम्हारी भौजाई बात सुनाएगी?'

लालमोहर के बासा के बगल में, एक लकड़ी की दुकान लाद कर आए हुए गाड़ीवानों का बासा है। बासा के मीर–गाड़ीवान मियाँजान बूढ़े ने सफरी गुड़गुड़ी पीते हुए पूछा, 'क्यों भाई, मीनाबाजार की लदनी लाद कर कौन आया है?'

मीनाबाजार! मीनाबाजार तो पतुरिया–पट्टी को कहते हैं। ... क्या बोलता है यह बूढ़ा मियाँ? लालमोहर ने हिरामन के कान में फुसफुसा कर कहा, 'तुम्हारी देह मह–मह–महकती है। सच!'

लहसनवाँ लालमोहर का नौकर–गाड़ीवान है। उम्र में सबसे छोटा है। पहली बार आया है तो क्या? बाबू–बबुआइनों के यहाँ बचपन से नौकरी कर चुका है। वह रह–रह कर वातावरण में कुछ सूँघता है, नाक सिकोड़ कर। हिरामन ने देखा, लहसनवाँ का चेहरा तमतम गया है। कौन आ रहा है धड़धड़ाता हुआ? – 'कौन, पलटदास? क्या है?'

पलटदास आकर खड़ा हो गया चुपचाप। उसका मुँह भी तमतमाया हुआ था। हिरामन ने पूछा, 'क्या हुआ? बोलते क्यों नहीं?' क्या जवाब दे पलटदास! हिरामन ने उसको चेतावनी दे दी थी, गपशप होशियारी से करना। वह चुपचाप गाड़ी की आसनी पर जा कर बैठ गया, हिरामन की जगह पर।

हीराबाई ने पूछा, 'तुम भी हिरामन के साथ हो?'

पलटदास ने गरदन हिला कर हामी भरी।

हीराबाई फिर लेट गई। ...चेहरा–मोहरा और बोली–बानी देख–सुन कर, पलटदास का कलेजा काँपने लगा, न जाने क्यों। हाँ! रामलीला में सिया सुकुमारी इसी तरह थकी लेटी हुई थी। जै! सियावर रामचंद्र की जै! ...पलटदास के मन में जै–जैकार होने लगा। वह दास–वैस्नव है, कीर्तनिया है। थकी हुई सीता महारानी के चरण टीपने की इच्छा प्रकट की उसने, हाथ की उँगलियों के इशारे से, मानो हारमोनियम की पटरियों पर नचा रहा हो। हीराबाई तमक कर बैठ गई– 'अरे, पागल है क्या? जाओ, भागो!...'

पलटदास को लगा, गुस्साई हुई कंपनी की औरत की आँखों से चिनगारी निकल रही है – छटक–छटक! वह भागा।

पलटदास क्या जवाब दे! वह मेला से भी भागने का उपाय सोच रहा है। बोला, 'कुछ नहीं। हमको व्यापारी मिल गया। अभी ही टीसन जा कर माल लादना है। भात में तो अभी देर हैं। मैं लौट आता हूँ तब तक।'

खाते समय धुन्नीराम और लहसनवाँ ने पलटदास की टोकरी–भर निंदा की। छोटा आदमी है। कमीना है। पैसे–पैसे का हिसाब जोड़ता है। खाने–पीने के बाद लालमोहर के दल ने अपना बासा तोड़ दिया। धुन्नी और लहसनवाँ गाड़ी जोत कर हिरामन के बासा पर चले, गाड़ी की लीक धर कर। हिरामन ने चलते–चलते रूक कर, लालमोहर से कहा, 'जरा मेरे इस कंधे को सूँघो तो। सूँघ कर देखो न?'

लालमोहर ने कंधा सूँघ कर आँखे मूँद लीं। मुँह से अस्फुट शब्द निकला– 'ए–ह!'

हिरामन ने कहा, 'जरा–सा हाथ रखने पर इतनी खुशबू! ...समझे!'

लालमोहर ने हिरामन का हाथ पकड़ लिया–'श्कंधे पर हाथ रखा था, सच? ...सुनो हिरामन, नौटंकी देखने का ऐसा मौका फिर कभी हाथ नहीं लगेगा। हाँ!'

'तुम भी देखोगे?' लालमोहर की बत्तीसी चौराहे की रोशनी में झिलमिला उठी।

बासा पर पहुँच कर हिरामन ने देखा, टप्पर के पास खड़ा बतिया रहा है कोई, हीराबाई से। धुन्नी और लहसनवाँ ने एक ही साथ कहा, 'कहाँ रह गए पीछे? बहुत देर से खोज रही है कंपनी...!'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

हिरामन ने टप्पर के पास जा कर देखा– अरे, यह तो वही बक्सा ढोनेवाला नौकर, जो चंपानगर मेले में हीराबाई को गाड़ी पर बिठा कर अँधेरे में गायब हो गया था।

'आ गए हिरामन! अच्छी बात, इधर आओ। ...यह लो अपना भाड़ा और यह लो अपनी दच्छिना! पच्चीस–पच्चीस, पचास।'

हिरामन को लगा, किसी ने आसमान से धकेल कर धरती पर गिरा दिया। किसी ने क्यों, इस बक्सा ढोनेवाले आदमी ने। कहाँ से आ गया? उसकी जीभ पर आई हुई बात जीभ पर ही रह गई ...इस्स! दच्छिना! वह चुपचाप खड़ा रहा।

हीराबाई बोली, 'लो पकड़ो! और सुनो, कल सुबह रौता कंपनी में आ कर मुझसे भेंट करना। पास बनवा दूँगी। ...बोलते क्यों नहीं?'

लालमोहर ने कहा, 'इलाम–बकसीस दे रही है मालकिन, ले लो हिरामन! हिरामन ने कट कर लालमोहर की ओर देखा। ...बोलने का जरा भी ढंग नहीं इस लालमोहरा को।'

धुन्नीराम की स्वगतोक्ति सभी ने सुनी, हीराबाई ने भी – गाड़ी–बैल छोड़ कर नौटंकी कैसे देख सकता है कोई गाड़ीवान, मेले में?

हिरामन ने रूपया लेते हुए कहा, 'क्या बोलेंगे!' उसने हँसने की चेष्टा की। कंपनी की औरत कंपनी में जा रही है। हिरामन का क्या! बक्सा ढोनेवाला रास्ता दिखाता हुआ आगे बढ़ा– 'इधर से।' हीराबाई जाते–जाते रुक गई। हिरामन के बैलों को संबोधित करके बोली, 'अच्छा, मैं चली भैयन।'

बैलों ने, भैयन शब्द पर कान हिलाए।

'? ? ..!'

'भा–इ–यो, आज रात! दि रौता संगीत कंपनी के स्टेज पर! गुलबदन देखिए, गुलबदन! आपको यह जान कर खुशी होगी कि मथुरामोहन कंपनी की मशहूर एक्ट्रेस मिस हीरादेवी, जिसकी एक–एक अदा पर हजार जान फिदा हैं, इस बार हमारी कंपनी में आ गई हैं। याद रखिए। आज की रात। मिस हीरादेवी गुलबदन...!'

नौटंकीवालों के इस एलान से मेले की हर पट्टी में सरगर्मी फैल रही है। ...हीराबाई? मिस हीरादेवी? लैला, गुलबदन...? फिलिम एक्ट्रेस को मात करती है।

तेरी बाँकी अदा पर मैं खुद हूँ फिदा,

तेरी चाहत को दिलबर बयाँ क्या करूँ!
यही ख्वाहिश है कि इ–इ–इ तू मुझको देखा करे
और दिलोजान मैं तुमको देखा करूँ।
...किर्र–र्र–र्र–र्र ...कडड़ड़ड़डड़ड़र्र–ई–घन–घन–धड़ाम।
हर आदमी का दिल नगाड़ा हो गया है।

लालमोहर दौड़ता–हाँफता बासा पर आया– 'ऐ, ऐ हिरामन, यहाँ क्या बैठे हो, चल कर देखो जै–जैकार हो रहा है! मय बाजा–गाजा, छापी–फाहरम के साथ हीराबाई की जै–जै कर रहा हूँ।'

हिरामन हड़बड़ा कर उठा। लहसनवाँ ने कहा, 'धुन्नी काका, तुम बासा पर रहो, मैं भी देख आऊँ।'

धुन्नी की बात कौन सुनता है। तीनों जन नौटंकी कंपनी की एलानिया पार्टी के पीछे–पीछे चलने लगे। हर नुक्कड़ पर रूक कर, बाजा बंद कर के एलान किया जाना है। एलान के हर शब्द पर हिरामन पुलक उठता है। हीराबाई का नाम, नाम के साथ अदा–फिदा वगैरह सुन कर उसने लालमोहर की पीठ थपथपा दी– 'धन्न है, धन्न है! है या नहीं?'

लालमोहर ने कहा, 'अब बोलो! अब भी नौटंकी नहीं देखोगे?' सुबह से ही धुन्नीराम और लालमोहर समझा रहे थे, समझा कर हार चुके थे–'कंपनी में जा कर भेंट कर आओ। जाते–जाते पुरसिस कर गई है।'

लेकिन हिरामन की बस एक बात– 'धत्त, कौन भेंट करने जाए! कंपनी की औरत, कंपनी में गई। अब उससे क्या लेना–देना! चीन्हेगी भी नहीं!'

वह मन–ही–मन रूठा हुआ था। एलान सुनने के बाद उसने लालमोहर से कहा, 'जरूर देखना चाहिए, क्यों लालमोहर?'

दोनों आपस में सलाह करके रौता कंपनी की ओर चले। खेमे के पास पहुँच कर हिरामन ने लालमोहर को इशारा किया, पूछताछ करने का भार लालमोहर के सिर। लालमोहर कचराही बोलना जानता है। लालमोहर ने एक काले कोटवाले से कहा, 'बाबू साहेब, जरा सुनिए तो!'

काले कोटवाले ने नाक–भौं चढ़ा कर कहा– 'क्या है? इधर क्यों?'

लालमोहर की कचराही बोली गड़बड़ा गई— तेवर देख कर बोला, 'गुलगुल ..नहीं—नहीं ...बुल—बुल ...नहीं ...।'

हिरामन ने झट—से सम्हाल दिया— 'हीरादेवी किधर रहती है, बता सकते हैं?'

उस आदमी की आँखें हठात लाल हो गई। सामने खड़े नेपाली सिपाही को पुकार कर कहा, 'इन लोगों को क्यों आने दिया इधर?'

'हिरामन!' ...वही फेनूगिलासी आवाज किधर से आई? खेमे के परदे को हटा कर हीराबाई ने बुलाया— 'यहाँ आ जाओ, अंदर! ...देखो, बहादुर! इसको पहचान लो। यह मेरा हिरामन है। समझे?'

नेपाली दरबान हिरामन की ओर देख कर जरा मुस्कराया और चला गया। काले कोटवाले से जा कर कहा, 'हीराबाई का आदमी है। नहीं रोकने बोला!'

लालमोहर पान ले आया नेपाली दरबान के लिए— 'खाया जाए!'

'इस्स! एक नहीं, पाँच पास। चारों अठनिया! बोली कि जब तक मेले में हो, रोज रात में आ कर देखना। सबका खयाल रखती है। बोली कि तुम्हारे और साथी है, सभी के लिए पास ले जाओ। कंपनी की औरतों की बात निराली होती है! है या नहीं?''

लालमोहर ने लाल कागज के टुकड़ों को छू कर देखा— 'पा—स! वाह रे हिरामन भाई! ...लेकिन पाँच पास ले कर क्या होगा? पलटदास तो फिर पलट कर आया ही नहीं है अभी तक।'

हिरामन ने कहा, 'जाने दो अभागे को। तकदीर में लिखा नहीं। ...हाँ, पहले गुरूकसम खानी होगी सभी को, कि गाँव—घर में यह बात एक पंछी भी न जान पाए।'

लालमोहर ने उत्तेजित हो कर कहा, 'कौन साला बोलेगा, गाँव में जा कर? पलटा ने अगर बदनामी की तो दूसरी बार से फिर साथ नहीं लाऊँगा।'

हिरामन ने अपनी थैली आज हीराबाई के जिम्मे रख दी है। मेले का क्या ठिकाना! किस्म—किस्म के पाकिटकाट लोग हर साल आते हैं। अपने साथी—संगियों का भी क्या भरोसा! हीराबाई मान गई। हिरामन के कपड़े की काली थैली को उसने अपने चमड़े के बक्स में बंद कर दिया। बक्से के ऊपर भी कपड़े का खोल और अंदर भी झलमल रेशमी अस्तर! मन का मान—अभिमान दूर हो गया।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

लालमोहर और धुन्नीराम ने मिल कर हिरामन की बुद्धि की तारीफ की, उसके भाग्य को सराहा बार–बार। उसके भाई और भाभी की निंदा की, दबी जबान से। हिरामन के जैसा हीरा भाई मिला है, इसीलिए! कोई दूसरा भाई होता तो...।

लहसनवाँ का मुँह लटका हुआ है। एलान सुनते–सुनते न जाने कहाँ चला गया कि घड़ी–भर साँझ होने के बाद लौटा है। लालमोहर ने एक मालिकाना झिड़की दी है, गाली के साथ– 'सोहदा कहीं का!'

धुन्नीराम ने चूल्हे पर खिचड़ी च्ढ़ाते हुए कहा, 'पहले यह फैसला कर लो कि गाड़ी के पास कौन रहेगा!'

'रहेगा कौन, यह लहसनवाँ कहाँ जाएगा?'

लहसनवाँ रो पड़ा– 'ऐ–ए–ए मालिक, हाथ जोड़ते हैं। एक्को झलक! बस, एक झलक!'

हिरामन ने उदारतापूर्वक कहा, 'अच्छा–अच्छा, एक झलक क्यों, एक घंटा देखना। मैं आ जाऊँगा।'

नौटंकी शुरू होने के दो घंटे पहले ही नगाड़ा बजना शुरू हो जाता है। और नगाड़ा शुरू होते ही लोग पतिंगों की तरह टूटने लगते हैं। टिकटघर के पास भीड़ देख कर हिरामन को बड़ी हँसी आई– 'लालमोहर, उधर देख, कैसी धक्कमधुक्की कर रहे हैं लोग!'

'हिरामन भाय!'

'कौन, पलटदास! कहाँ की लदनी लाद आए?' लालमोहर ने पराए गाँव के आदमी की तरह पूछा।

पलटदास ने हाथ मलते हुए माफी माँगी– 'कसूरबार हैं, जो सजा दो तुम लोग, सब मंजूर है। लेकिन सच्ची बात कहें कि सिया सुकुमारी...।'

हिरामन के मन का पुरइन नगाड़े के ताल पर विकसित हो चुका है। बोला, 'देखो पलटा, यह मत समझना कि गाँव–घर की जनाना है। देखो, तुम्हारे लिए भी पास दिया है, पास ले लो अपना, तमासा देखो।'

लालमोहर ने कहा, 'लेकिन एक सर्त पर पास मिलेगा। बीच–बीच में लहसनवाँ को भी...।'

पलटदास को कुछ बताने की जरूरत नहीं। वह लहसनवाँ से बातचीत कर आया है अभी।

लालमोहर ने दूसरी शर्त सामने रखी– 'गाँव में अगर यह बात मालूम हुई किसी तरह...!'

'राम–राम!' दाँत से जीभ को काटते हुए कहा पलटदास ने।

पलटदास ने बताया– 'अठनिया फाटक इधर है!' फाटक पर खड़े दरबान ने हाथ से पास ले कर उनके चेहरे को बारी–बारी से देखा, बोला, 'यह तो पास है। कहाँ से मिला?'

अब लालमोहर की कचराही बोली सुने कोई! उसके तेवर देख कर दरबान घबरा गया– 'मिलेगा कहाँ से? अपनी कंपनी से पूछ लीजिए जा कर। चार ही नहीं, देखिए एक और है।' जेब से पाँचवा पास निकाल कर दिखाया लालमोहर ने।

एक रूपयावाले फाटक पर नेपाली दरबान खड़ा था। हिरामन ने पुकार कर कहा, 'ए सिपाही दाजू, सुबह को ही पहचनवा दिया और अभी भूल गए?'

नेपाली दरबान बोला, 'हीराबाई का आदमी है सब। जाने दो। पास हैं तो फिर काहे को रोकता है?'

अठनिया दर्जा!

तीनों ने श्कपड़घरश को अंदर से पहली बार देखा। सामने कुरसी–बेंचवाले दर्जे हैं। परदे पर राम–बन–गमन की तसवीर है। पलटदास पहचान गया। उसने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया, परदे पर अंकित रामसिया सुकुमारी और लखनलला को। श्जै हो, जै हो!श पलटदास की आँखें भर आई।

हिरामन ने कहा, 'लालमोहर, छापी सभी खड़े हैं या चल रहे हैं?'

लालमोहर अपने बगल में बैठे दर्शकों से जान–पहचान कर चुका है। उसने कहा, 'खेला अभी परदा के भीतर है। अभी जमिनका दे रहा है, लोग जमाने के लिए।'

पलटदास ढोलक बजाना जानता है, इसलिए नगाड़े के ताल पर गरदन हिलाता है और दियासलाई पर ताल काटता है। बीड़ी आदान–प्रदान करके हिरामन ने भी एकाध जान–पहचान कर ली। लालमोहर के परिचित आदमी ने चादर से देह ढकते हुए कहा, 'नाच शुरू होने में अभी देर है, तब तक एक नींद ले लें। ...सब दर्जा से अच्छा अठनिया दर्जा। सबसे पीछे सबसे ऊँची जगह पर है। जमीन

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पर गरम पुआल! हे–हे! कुरसी–बेंच पर बैठ कर इस सरदी के मौसम में तमासा देखनेवाले अभी घुच–घुच कर उठेंगे चाह पीने।'

उस आदमी ने अपने संगी से कहा, 'खेला शुरू होने पर जगा देना। नहीं–नहीं, खेला शुरू होने पर नहीं, हिरिया जब स्टेज पर उतरे, हमको जगा देना।'

हिरामन के कलेजे में जरा आँच लगी। ...हिरिया! बड़ा लटपटिया आदमी मालूम पड़ता है। उसने लालमोहर को आँख के इशारे से कहा, 'इस आदमी से बतियाने की जरूरत नहीं।'

घन–घन–घन–धड़ाम! परदा उठ गया। हे–ए, हे–ए, हीराबाई शुरू में ही उतर गई स्टेज पर! कपड़घर खचमखच भर गया है। हिरामन का मुँह अचरज में खुल गया। लालमोहर को न जाने क्यों ऐसी हँसी आ रही है। हीराबाई के गीत के हर पद पर वह हँसता है, बेवजह।

गुलबदन दरबार लगा कर बैठी है। एलान कर रही है, जो आदमी तख्तहजारा बना कर ला देगा, मुँहमाँगी चीज इनाम में दी जाएगी। ...अजी, है कोई ऐसा फनकार, तो हो जाए तैयार, बना कर लाए तख्तहजारा–आ! किड़किड़–किर्रि–! अलबत्त नाचती है! क्या गला है! मालूम है, यह आदमी कहता है कि हीराबाई पान–बीड़ी, सिगरेट–जर्दा कुछ नहीं खाती! ठीक कहता है। बड़ी नेमवाली रंडी है। कौन कहता है कि रंडी है! दाँत में मिस्सी कहाँ है। पौडर से दाँत धो लेती होगी। हरगिज नहीं। कौन आदमी है, बात की बेबात करता है! कंपनी की औरत को पतुरिया कहता है! तुमको बात क्यों लगी? कौन है रंडी का भड़वा? मारो साले को! मारो! तेरी...।

हो–हल्ले के बीच, हिरामन की आवाज कपड़घर को फाड़ रही है– 'आओ, एक–एक की गरदन उतार लेंगे।'

लालमोहर दुलाली से पटापट पीटता जा रहा है सामने के लोगों को। पलटदास एक आदमी की छाती पर सवार है– 'साला, सिया सुकुमारी को गाली देता है, सो भी मुसलमान हो कर?'

धुन्नीराम शुरू से ही चुप था। मारपीट शुरू होते ही वह कपड़घर से निकल कर बाहर भागा।

काले कोटवाले नौटंकी के मैनेजर नेपाली सिपाही के साथ दौड़े आए। दारोगा साहब ने हंटर से पीट–पाट शुरू की। हंटर खा कर लालमोहर तिलमिला उठा, कचराही बोली में भाषण देने लगा–

'दारोगा साहब, मारते हैं, मारिए। कोई हर्ज नहीं। लेकिन यह पास देख लीजिए, एक पास पाकिट में भी हैं। देख सकते हैं हुजूर। टिकट नहीं, पास! ...तब हम लोगों के सामने कंपनी की औरत को कोई बुरी बात करे तो कैसे छोड़ देंगे?'

कंपनी के मैनेजर की समझ में आ गई सारी बात। उसने दारोगा को समझाया– 'हुजूर, मैं समझ गया। यह सारी बदमाशी मथुरामोहन कंपनीवालों की है। तमाशे में झगड़ा खड़ा करके कंपनी को बदनाम ...नहीं हुजूर, इन लोगों को छोड़ दीजिए, हीराबाई के आदमी हैं। बेचारी की जान खतरे में हैं। हुजूर से कहा था न!'

हीराबाई का नाम सुनते ही दारोगा ने तीनों को छोड़ दिया। लेकिन तीनों की दुआली छीन ली गई। मैनेजर ने तीनों को एक रूपएवाले दरजे में कुरसी पर बिठाया– 'आप लोग यहीं बैठिए। पान भिजवा देता हूँ।' कपड़घर शांत हुआ और हीराबाई स्टेज पर लौट आई।

नगाड़ा फिर घनघना उठा।

थोड़ी देर बाद तीनों को एक ही साथ धुन्नीराम का खयाल हुआ– अरे, धुन्नीराम कहाँ गया?

'मालिक, ओ मालिक!' लहसनवाँ कपड़घर से बाहर चिल्ला कर पुकार रहा है, 'ओ लालमोहर मा–लि–क...!'

लालमोहर ने तारस्वर में जवाब दिया– 'इधर से, उधर से! एकटकिया फाटक से।' सभी दर्शकों ने लालमोहर की ओर मुड़ कर देखा। लहसनवाँ को नेपाली सिपाही लालमोहर के पास ले आया। लालमोहर ने जेब से पास निकाल कर दिखा दिया। लहसनवाँ ने आते ही पूछा, 'मालिक, कौन आदमी क्या बोल रहा था? बोलिए तो जरा। चेहरा दिखला दीजिए, उसकी एक झलक!'

लोगों ने लहसनवाँ की चौड़ी और सपाट छाती देखी। जाड़े के मौसम में भी खाली देह! ...चेले–चाटी के साथ हैं ये लोग! लालमोहर ने लहसनवाँ को शांत किया।

तीनों–चारों से मत पूछे कोई, नौटंकी में क्या देखा। किस्सा कैसे याद रहे! हिरामन को लगता था, हीराबाई शुरू से ही उसी की ओर टकटकी लगा कर देख रही है, गा रही है, नाच रही है। लालमोहर को लगता था, हीराबाई उसी की ओर देखती है। वह समझ गई है, हिरामन से भी ज्यादा पावरवाला आदमी है लालमोहर!

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पलटदास किस्सा समझता है। ...किस्सा और क्या होगा, रमैन की ही बात। वही राम, वही सीता, वही लखनलाल और वही रावन! सिया सुकुमारी को राम जी से छीनने के लिए रावन तरह–तरह का रूप धर कर आता है। राम और सीता भी रूप बदल लेते हैं। यहाँ भी तख्त–हजारा बनानेवाला माली का बेटा राम है। गुलबदन मिया सुकुमारी है। माली के लड़के का दोस्त लखनलला है और सुलतान है रावन। धुन्नीराम को बुखार है तेज! लहसनवाँ को सबसे अच्छा जोकर का पार्ट लगा है ...चिरैया तोंहके लेके ना जइवै नरहट के बजरिया! वह उस जोकर से दोस्ती लगाना चाहता है। नहीं लगावेगा दोस्ती, जोकर साहब?

हिरामन को एक गीत की आधी कड़ी हाथ लगी है– 'मारे गए गुलफाम!'

कौन था यह गुलफाम? हीराबाई रोती हुई गा रही थी– 'अजी हाँ, मरे गए गुलफाम! टिड़िड़िड़ि... बेचारा गुलफाम!

तीनों को दुआली वापस देते हुए पुलिस के सिपाही ने कहा, 'लाठी–दुआली ले कर नाच देखने आते हो?'

दूसरे दिन मेले–भर में यह बात फैल गई– मथुरामोहन कंपनी से भाग कर आई है हीराबाई, इसलिए इस बार मथुरामोहन कंपनी नहीं आई हैं। ...उसके गुंडे आए हैं। हीराबाई भी कम नहीं। बड़ी खेलाड़ औरत है। तेरह–तेरह देहाती लठैत पाल रही है। ...वाह मेरी जान भी कहे तो कोई! मजाल है!

दस दिन... दिन–रात...! दिन–भर भाड़ा ढोता हिरामन। शाम होते ही नौटंकी का नगाड़ा बजने लगता। नगाड़े की आवाज सुनते ही हीराबाई की पुकार कानों के पास मँडराने लगती – भैया ...मीता ...हिरामन ...उस्ताद गुरू जी! हमेशा कोई–न–कोई बाजा उसके मन के कोने में बजता रहता, दिन–भर। कभी हारमोनियम, कभी नगाड़ा, कभी ढोलक और कभी हीराबाई की पैजनी। उन्हीं साजों की गत पर हिरामन उठता–बैठता, चलता–फिरता। नौटंकी कंपनी के मैनेजर से ले कर परदा खींचनेवाले तक उसको पहचानते हैं। ...हीराबाई का आदमी है।

पलटदास हर रात नौटंकी शुरू होने के समय श्रद्धापूर्वक स्टेज को नमस्कार करता, हाथ जोड़ कर। लालमोहर, एक दिन अपनी कचराही बोली सुनाने गया था हीराबाई को। हीराबाई ने पहचाना ही

नहीं। तब से उसका दिल छोटा हो गया है। उसका नौकर लहसनवाँ उसके हाथ से निकल गया है, नौटंकी कंपनी में भर्ती हो गया है। जोकर से उसकी दोस्ती हो गई है। दिन–भर पानी भरता है, कपड़े धोता है। कहता है, गाँव में क्या है जो जाएँगे! लालमोहर उदास रहता है। धुन्नीराम घर चला गया है, बीमार हो कर।

हिरामन आज सुबह से तीन बार लदनी लाद कर स्टेशन आ चुका है। आज न जाने क्यों उसको अपनी भौजाई की याद आ रही है। ...धुन्नीराम ने कुछ कह तो नहीं दिया है, बुखार की झोंक में! यहीं कितना अटर–पटर बक रहा था – गुलबदन, तख्त–हजारा! लहसनवाँ मौज में है। दिन–भर हीराबाई को देखता होगा। कल कह रहा था, हिरामन मालिक, तुम्हारे अकबाल से खूब मौज में हूँ। हीराबाई की साड़ी धोने के बाद कठौते का पानी अत्तरगुलाब हो जाता है। उसमें अपनी गमछी डुबा कर छोड़ देता हूँ। लो, सूँघोगे? हर रात, किसी–न–किसी के मुँह से सुनता है वह – हीराबाई रंडी है। कितने लोगों से लड़े वह! बिना देखे ही लोग कैसे कोई बात बोलते हैं! राजा को भी लोग पीठ–पीछे गाली देते हैं! आज वह हीराबाई से मिल कर कहेगा, नौटंकी कंपनी में रहने से बहुत बदनाम करते हैं लोग। सरकस कंपनी में क्यों नही काम करती? सबके सामने नाचती है, हिरामन का कलेजा दप–दप जलता रहता है उस समय। सरकस कंपनी में बाघ को ...उसके पास जाने की हिम्मत कौन करेगा! सुरक्षित रहेगी हीराबाई! किधर की गाड़ी आ रही है?

'हिरामन, ए हिरामन भाय!' लालमोहर की बोली सुनकर हिरामन ने गरदन मोड़ कर देखा। ...क्या लाद कर लाया है लालमोहर? 'तुमको ढूँढ़ रही है हीराबाई, इस्टिसन पर। जा रही है।' एक ही साँस में सुना गया। लालमोहर की गाड़ी पर ही आई है मेले से।

'जा रही है? कहाँ? हीराबाई रेलगाड़ी से जा रही है?'

हिरामन ने गाड़ी खोल दी। मालगुदाम के चौकीदार से कहा, 'भैया, जरा गाड़ी–बैल देखते रहिए। आ रहे हैं।'

'उस्ताद!' जनाना मुसाफिरखाने के फाटक के पास हीराबाई ओढ़नी से मुँह–हाथ ढक कर खड़ी थी। थैली बढ़ाती हुई बोली, 'लो! हे भगवान! भेंट हो गई, चलो, मैं तो उम्मीद खो चुकी थी। तुमसे अब भेंट नहीं हो सकेगी। मैं जा रही हूँ गुरू जी!'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

बक्सा ढोनेवाला आदमी आज कोट–पतलून पहन कर बाबूसाहब बन गया है। मालिकों की तरह कुलियों को हुकम दे रहा है– 'जनाना दर्जा में चढ़ाना। अच्छा?'

हिरामन हाथ में थैली ले कर चुपचाप खड़ा रहा। कुरते के अंदर से थैली निकाल कर दी है हीराबाई ने। चिड़िया की देह की तरह गर्म है थैली।

'गाड़ी आ रही है।' बक्सा ढोनेवाले ने मुँह बनाते हुए हीराबाई की ओर देखा। उसके चेहरे का भाव स्पष्ट है– इतना ज्यादा क्या है?

हीराबाई चंचल हो गई। बोली, 'हिरामन, इधर आओ, अंदर। मैं फिर लौट कर जा रही हूँ मथुरामोहन कंपनी में। अपने देश की कंपनी है। ...वनैली मेला आओगे न?'

हीराबाई ने हिरामन के कंधे पर हाथ रखा, ...इस बार दाहिने कंधे पर। फिर अपनी थैली से रूपया निकालते हुए बोली, 'एक गरम चादर खरीद लेना...।'

हिरामन की बोली फूटी, इतनी देर के बाद– 'इस्स! हरदम रूपैया–पैसा! रखिए रूपैया! क्या करेंगे चादर?'

हीराबाई का हाथ रुक गया। उसने हिरामन के चेहरे को गौर से देखा। फिर बोली, 'तुम्हारा जी बहुत छोटा हो गया है। क्यों मीता? महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है गुरू जी!' गला भर आया हीराबाई का।

बक्सा ढोनेवाले ने बाहर से आवाज दी– 'गाड़ी आ गई।' हिरामन कमरे से बाहर निकल आया। बक्सा ढोनेवाले ने नौटंकी के जोकर जैसा मुँह बना कर कहा, 'लाटफारम से बाहर भागो। बिना टिकट के पकड़ेगा तो तीन महीने की हवा...।'

हिरामन चुपचाप फाटक से बाहर जा कर खड़ा हो गया। ...टीसन की बात, रेलवे का राज! नहीं तो इस बक्सा ढोनेवाले का मुँह सीधा कर देता हिरामन।

हीराबाई ठीक सामनेवाली कोठरी में चढ़ी। इस्स! इतना टान! गाड़ी में बैठ कर भी हिरामन की ओर देख रही है, टुकुर–टुकुर। लालमोहर को देख कर जी जल उठता है, हमेशा पीछे–पीछे, हरदम हिस्सादारी सूझती है।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

गाड़ी ने सीटी दी। हिरामन को लगा, उसके अंदर से कोई आवाज निकल कर सीटी के साथ ऊपर की ओर चली गई– कू–ऊ–ऊ! इ–स्स! –छी–ई–ई–छक्क! गाड़ी हिली। हिरामन ने अपने दाहिने पैर के अँगूठे को बाएँ पैर की एड़ी से कुचल लिया। कलेजे की धड़कन ठीक हो गई। हीराबाई हाथ की बैंगनी साफी से चेहरा पोंछती है। साफी हिला कर इशारा करती है ...अब जाओ। आखिरी डिब्बा गुजरा, प्लेटफार्म खाली सब खाली ...खोखले ... मालगाड़ी के डिब्बे! दुनिया ही खाली हो गई मानो! हिरामन अपनी गाड़ी के पास लौट आया।

हिरामन ने लालमोहर से पूछा, 'तुम कब तक लौट रहे हो गाँव?' लालमोहर बोला, 'अभी गाँव जा कर क्या करेंगे? यहाँ तो भाड़ा कमाने का मौका है! हीराबाई चली गई, मेला अब टूटेगा।'

'अच्छी बात। कोई समाद देना है घर?'

लालमोहर ने हिरामन को समझाने की कोशिश की। लेकिन हिरामन ने अपनी गाड़ी गाँव की ओर जानेवाली सड़क की ओर मोड़ दी। अब मेले में क्या धरा है! खोखला मेला!

रेलवे लाइन की बगल से बैलगाड़ी की कच्ची सड़क गई है दूर तक। हिरामन कभी रेल पर नहीं चढ़ा है। उसके मन में फिर पुरानी लालसा झाँकी, रेलगाड़ी पर सवार हो कर, गीत गाते हुए जगरनाथ–धाम जाने की लालसा। उलट कर अपने खाली टप्पर की ओर देखने की हिम्मत नहीं होती है। पीठ में आज भी गुदगुदी लगती है। आज भी रह–रह कर चंपा का फूल खिल उठता है, उसकी गाड़ी में। एक गीत की टूटी कड़ी पर नगाड़े का ताल कट जाता है, बार–बार!

उसने उलट कर देखा, बोरे भी नहीं, बाँस भी नहीं, बाघ भी नहीं – परी ...देवी ...मीता ...हीरादेवी ...महुआ घटवारिन– कोई नहीं। मरे हुए मुहर्तों की गूँगी आवाजें मुखर होना चाहती है। हिरामन के होंठ हिल रहे हैं। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है– कंपनी की औरत की लदनी...।

हिरामन ने हठात अपने दोनों बैलों को झिड़की दी, दुआली से मारते हुए बोला, 'रेलवे लाइन की ओर उलट–उलट कर क्या देखते हो?' दोनों बैलों ने कदम खोल कर चाल पकड़ी।

हिरामन गुनगुनाने लगा– 'अजी हाँ, मारे गए गुलफाम...!'

राजीव मणि
मणिआलय, बालूपर–कुर्जी, सदाकत आश्रम, पटना
navpallav2@gmail.com

साहित्य जगत के कोहिनूर : फणीश्वर नाथ रेणु

आजीवन शोषण और दमन के विरूद्ध संघर्षरत रहे फणीश्वर नाथ 'रेणु' का जीवन काफी सादा व सरल था। जन्म 4 मार्च, 1921 को बिहार के पूर्णिया जिले के औराही हिंगना नामक गांव में हुआ था। अब यह अररिया जिले में पड़ता है। शोषण और दमन से प्रभावित होने के कारण ही ये सोशलिस्ट पार्टी से जा जुड़े और राजनीति में सक्रिय रहे। इन्होंने 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में बढ़ चढ़कर भाग लिया और स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। आगे चलकर 1950 में नेपाली क्रांतिकारी आन्दोलन में भी हिस्सा लिया, जिसके परिणामस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। वे राजनीति में प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे। अपने प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' के लिए उन्हें पद्म श्री से सम्मानित किया गया था। लेकिन, जे.पी. आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी व सत्ता के दमनकारी नीतियों के खिलाफ इन्होंने पद्म श्री का त्याग कर दिया। रेणु जी को हिंदी के साथ बांग्ला और नेपाली भाषाओं पर भी अच्छी पकड़ थी।

फणीश्वर नाथ 'रेणु' की शिक्षा भारत और नेपाल में हुई थी। प्रारंभिक शिक्षा फारबिसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद उन्होंने मैट्रिक नेपाल के विराटनगर के विराटनगर आदर्श विश्वविद्यालय से कोईराला परिवार में रहकर की। फणीश्वर नाथ ने इन्टरमीडिएट काशी हिंदू विश्वविद्यालय से 1942 में की, जिसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े।

'रेणु' जी के पिता कांग्रेसी थे, इसलिए उनका बचपन आजादी की लड़ाई को देखते–समझते बीता था। रेणु ने स्वयं लिखा है– पिताजी किसान थे और इलाके के स्वराज–आंदोलन के प्रमुख कार्यकर्ता। वे खादी पहनते थे, घर में चरखा चलता था। 1953 से वे लगातार साहित्य साधना में लगे रहे। कहानी, उपन्यास, निबंध सहित विविध साहित्यिक विधाओं में सैकड़ों रचनाएं लिखी गईं। अधिकांश रचनाएं साहित्य 'जगत का कोहिनूर' साबित हुईं। इनके उपन्यास पर 'तीसरी कसम' नाम से राजकपूर और वहीदा रहमान की मुख्य भूमिका में प्रसिद्ध फिल्म बनी, जिसे बासु भट्टाचार्य ने निर्देशित किया और सुप्रसिद्ध गीतकार शैलेन्द्र इसके निर्माता थे। यह फिल्म हिंदी सिनेमा में मील का पत्थर मानी जाती है। समकालीन कवि सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय उनके परम मित्र थे। फणीश्वर नाथ 'रेणु' की कई रचनाओं में कटिहार के रेलवे स्टेशन का उल्लेख मिलता है। इनकी लेखन–शैली वर्णणात्मक थी। पात्रों का चरित्र–निर्माण काफी तेजी से होता था। इनकी लगभग हर कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रधान होती थी। एक आदिम रात्रि की महक इसका एक सुंदर उदाहरण है। इनकी लेखन–शैली प्रेमचंद से काफी मिलती है और इन्हें आजादी के बाद का प्रेमचंद की संज्ञा भी दी जाती है। अपनी कृतियों में उन्होंने आंचलिक भाषा का प्रयोग काफी किया है। निहायत ही ठेठ या देहाती भाषा इनकी रचनाओं में देखी जा सकती है।

फणीश्वर नाथ 'रेणु' की रचनाओं को पढ़ते हुए आप अनायास अपने गांव की मिट्टी से जुड़ जाते हैं। उनकी भाषा आम बोलचाल

की होती है। उनकी रचनाओं में उत्तरी बिहार की खुशबू है। वाक्य विन्यास आंचलिक प्रभाव से अछूता नहीं है। संवाद पात्रानुकूल, रोचक तथा कथा को गति प्रदान करने वाले होते हैं। हालांकि 1936 के आसपास से ही फणीश्वर नाथ 'रेणु' ने कहानी लेखन की शुरुआत कर दी थी। उस समय कुछ कहानियां प्रकाशित भी हुईं, किंतु वे रेणु की अपरिपक्व कहानियां थीं। 1942 के आंदोलन में गिरफ्तार होने के बाद जब वे 1944 में जेल से मुक्त हुए, तब घर लौटने पर उन्होंने 'बटबाबा' नामक पहली परिपक्व कहानी लिखी, जो 'साप्ताहिक विश्वमित्र' के 27 अगस्त, 1944 के अंक में प्रकाशित हुई। रेणु की दूसरी कहानी 'पहलवान की ढोलक' 11 दिसम्बर, 1944 को 'साप्ताहिक विश्वमित्र' में छपी। 1972 में रेणु ने अपनी अंतिम कहानी 'भित्तिचित्र की मयूरी' लिखी। उनकी अबतक उपलब्ध कहानियों की संख्या 63 है।

'रेणु' जी को जितनी प्रसिद्धि उपन्यासों से मिली, उतनी ही प्रसिद्धि उनको उनकी कहानियों से भी मिली। ठुमरी, अगिनखोर, आदिम रात्रि की महक, एक श्रावणी दोपहरी की धूप, अच्छे आदमी, सम्पूर्ण कहानियां, आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। उनकी कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर आधारित फिल्म 'तीसरी कसम' ने भी उन्हें काफी प्रसिद्धि दिलवाई। कथा–साहित्य के अलावा उन्होंने संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज आदि विधाओं में भी लिखा है। 11 अप्रैल, 1977 को पटना में फणीश्वर नाथ 'रेणु' की मृत्यु हो गई।

ख़्वाहिशें
बृजेन्द्र अग्निहोत्री
आईएसबीएन : 978-81-929060-4-1
संस्करण : 2015, मूल्य : 300/-

पुण्य स्मरण

दीपक रूहानी
deepakruhani@gmail.com

(दीपक रूहानी जाने–माने शायर और अनुवादक हैं। उर्दू से हिन्दी अनुवाद के कई महत्त्वपूर्ण कार्य कर चुके हैं। अभी पिछले बरस ही इनकी एक किताब "राहत साहब : मुझे सुनाते रहे लोग वाकिया मेरा" नाम से राहत इन्दौरी की जिन्दगी पर आयी, जो कि राहत–प्रेमियों में खासी चर्चित रही। अमेजन की वेबसाइट पर यह किताब तीन महीनों तक लगातार 'बेस्ट रीड' में रही। दीपक रूहानी आजकल बिहार प्रान्त के मधुबनी जिले में हिन्दी के असिस्टेंट प्रोफेसर हैं।)

सामाजिक सरोकारों का शायर : राहत इन्दौरी

यहाँ मैं राहत साहब की शायरी और उनके व्यक्तिगत जीवन से जुडी घटनाओं की कुछ चर्चा कर रहा हूँ। इन बातों से बहुत–सारे निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। ये निष्कर्ष प्रत्येक पाठक के अपने होंगे और वो अलग–अलग भी हो सकते हैं, यहाँ तक कि किसी एक ही बात पर परस्पर विरोधी निष्कर्ष भी निकाले जा सकते।

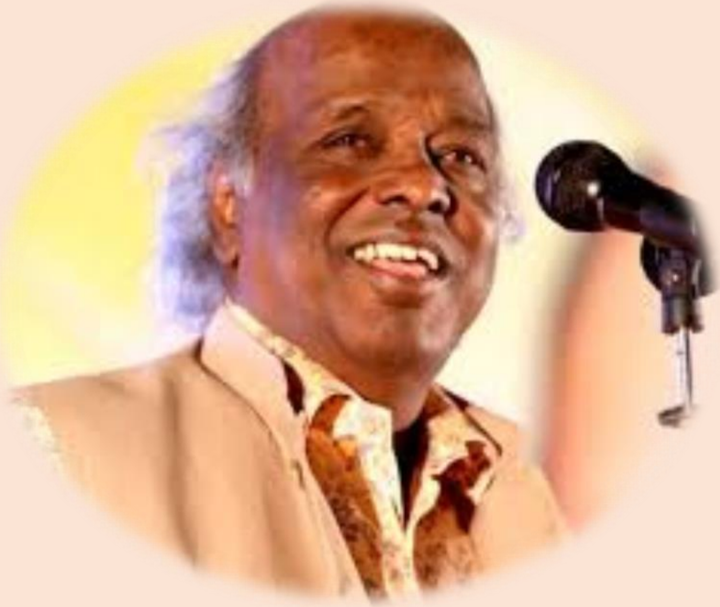

किसी भी शायर की मानसिकता के निर्माण में या उसकी अदबी मिजाज के बनने–बदलने में कब कौन–सी घटना का कितना हाथ है, ये अंदाजा लगाना जरा मुश्किल है। इंदौर में एक–दो बार बड़े स्तर पर दंगे हुए हैं, जिनका असर राहत साहब के जेहन पर भी पड़ा, लेकिन इस असर ने जो प्रतिक्रियाएँ दी हैं वो बहुत कलात्मक और प्रतीकात्मक हैं।

जून 1969 में एक दंगा हुआ था। राहत साहब के करीबी दोस्त शब्बीर कुरैशी साहब ने बातों–बातों में इंदौर में हुए उस दंगे के बारे में बताया। सन् 1969 में चंदगीराम ने एक दंगल का फाइनल जीता जिससे इन्हें उस वर्ष 'भारत केसरी' की उपाधि मिली थी। सत्तर के दशक के नामी पहलवान चंदगीराम (1937–2010) जिला हिसार हरियाणा के रहनेवाले थे। ये कुछ समय भारतीय सेना की जाट रेजीमेंट में भी रहे। देश का कोई ऐसा पहलवानी का खिताब न था जो इन्हें न मिला रहा हो। फाइनल में इन्होंने मेहरदीन को हराया। पंजाब के रहनेवाले मेहरदीन भी कोई मामूली पहलवान नहीं थे। इन्होंने 1964 में ईरान में गोल्ड मेडल जीता था। इन्हें 'रुस्तमे–हिंद'

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

की उपाधि प्राप्त थी। ये भी इंटरनेशनल चौम्पियन थे। दंगल और पहलवानी का माहौल उस वक्त इंदौर में जोरों पर था।

12 मई 1969 को 'भारत–केसरी' खिताब के लिए मेहरदीन और चंदगीराम में फाइनल मुकाबला हुआ। ये मुकाबला दिल्ली में हुआ था। मेहरदीन चंदगीराम की अपेक्षा शारीरिक रूप से बहुत तगड़े और मजबूत कद–काठी के थे, लेकिन वे दस मिनट की कुश्ती को 7 मिनट 45 सेकंड पर ही छोड़कर पीछे हट गये और अपनी हार स्वीकार कर ली। दारा सिंह इस फाइनल मुकाबले के निर्णायक (रेफरी) थे। इस जीत के बाद चंदगीराम का हिंदुस्तान के कई शहरों में स्वागत एवं अभिनंदन आयोजनों के माध्यम से किया गया। इंदौर में दुग्ध–विक्रेता संघ ने ये आयोजन किया था।

यही स्वागत का क्रम जब इंदौर पहुँचा तो मामला कुछ–से–कुछ हो गया। शाम ढले चंदगीराम की ट्रेन इंदौर पहुँची तो एक बड़ा हुजूम उन्हें लेने स्टेशन पहुँचा। चंदगीराम शुद्ध शाकाहारी थे और मेहरदीन मांसाहारी थे, फितूर का एक मुद्दा ये भी बना। दूसरा चंदगीराम को हिंदू का प्रतीक मान लिया गया और मेहरदीन को मुस्लिम का प्रतीक माना गया। चंदगीराम के नाम के आगे अक्सर 'आर्य पहलवान चंदगीराम' भी लिखा जाता था। चंदगीराम का जुलूस 'बॉम्बे बाजार' इलाके से गुजरा। ये मुस्लिम बाहुल्य इलाका था और यहाँ कई अच्छे नामचीन पहलवान थे, जैसे करामत पहलवान वगैरह। जुलूसवालों ने नारा लगाया– 'दाल–रोटी जीत गयी, गोश्त–रोटी हार गयी'। पहलवानी में रुचि लेना सीधे–सीधे शारीरिक बल में रुचि लेना है। कुल मिलाकर दंगा भड़क गया। चंदगीराम जान बचाकर भागे। इसके बाद शहर भर में दंगा फैल गया। दंगे को रोकने के लिए महू कैंट से सेना को बुलाना पड़ा था। राहत साहब की उम्र उस वक्त उन्नीस बरस थी। इस घटना का इनके ऊपर गहरा असर पड़ा जिसे हम कई शे'रों में देख सकते हैं–

हम अपने शहर में महफूज भी हैं, खुश भी हैं।
ये सच नहीं है, मगर ऐतबार करना है।।

मुझे खबर नहीं मंदिर जले हैं या मस्जिद।
मेरी निगाह के आगे तो सब धुआँ है मियाँ।।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

महँगी कालीनें लेकर क्या कीजेगा।
अपना घर भी इक दिन जलनेवाला है।।

वैसे अब इंदौर में इस तरह के दंगे नहीं होते। इंदौर की अपेक्षा उसका पड़ोसी धार जिला साम्प्रदायिक रूप से अधिक संवेदनशील है। 1969 के उस दंगे के बारे में अगर विस्तार से जानना हो तो प्रतीप कुमार लाहिरी की किताब 'डिकोडिंग इनटॉलरेंस' पढ़ी जा सकती है। उस वक्त ये इंदौर के डी. एम. थे और दंगे को नियंत्रित करने में अहम भूमिका निभायी थी।

–0–

राहत साहब नौवीं क्लास में थे तो नूतन हायर सेकेंड्री स्कूल में पढ़ते थे। एक बार वहाँ मुशायरा होना तय हुआ। राहत साहब और स्कूल के ही कई लड़कों को तरह–तरह के कामों के लिए तैनात किया गया। राहत साहब भी शायरों की खिदमत में लगे थे। जाँ निसार अख्तर (जावेद अख्तर के वालिद) भी आये हुए थे। राहत साहब अपने एक–दो साथियों के साथ उनके पास ऑटोग्राफ लेने पहुँचे। राहत साहब ने उनसे कहादृ ''मैं भी शेर कहना चाहता हूँ, इसके लिए मुझे क्या करना होगा?'' जाँ निसार बोले– ''पहले कम–से–कम पाँच हजार शेर याद करो।'' राहत साहब बोले– ''इतने तो मुझे अभी याद हैं।'' तो वे बोले– ''तो फिर अगला शेर जो होगा वो तुम्हारा खुद का होगा।''

इसके बाद वो ऑटोग्राफ देने लगे। जाँ निसार साहब ने अपनी गजल का एक शेर लिखना शुरू किया– *'हमसे भागा न करो दूर, गजालों की तरह'.....* ये पहला मिस्रा वो लिख ही रहे थे कि राहत साहब के मुँह से बेसाख्ता दूसरा मिस्रा निकल गया– *'हमने चाहा है तुम्हें चाहनेवालों की तरह'।* जाँ निसार साहब ने सर उठाकर हैरत और खुशी के मिले–जुले भाव से राहत साहब को देखा। उनकी मुस्कुराहट में राहत साहब के लिए दुआ थी। बाद में जब राहत साहब बाकायदा मुशायरों में जाने लगे तो जाँ निसार साहब से कभी–कभी मुलाकात भी हो जाती थी। राहत साहब उनका बहुत एहतराम करते थे।

–0–

राहत साहब के साथ किसी मुशायरे में फिराक साहब भी थे, जब इन्होंने शेर पढ़े तो फिराक साहब बोले– ''मियाँ, जब शे'र खुद ही अच्छा है तो चीखने की क्या जरुरत है।'' फिराक साहब का इतना कह देना राहत साहब के लिए तारीफ जैसा था। राहत साहब फिराक गोरखपुरी के जबरदस्त मद्दाह हैं। सैकड़ों शेर याद हैं।

ये चीखना भी एक आर्ट है। मुशायरा एक 'परफार्मिंग आर्ट' बन गया है। ऐसी स्थिति में आवाज का खास रोल हो गया है। राहत साहब की आवाज की फ्रीक्वेंसी बहुत अधिक है। ये भी कह सकते हैं कि उनकी आवाज की 'रेंज' बहुत जियादा हैं। इसे आप सुनकर तो महसूस कर ही सकते हैं, साथ ही कभी इसे कम्प्यूटर स्क्रीन पर मापने की कोशिश करें तो भी आप देखेंगे कि जब इनकी आवाज शुरू होती है तो ग्राफ बहुत हाई फ्रीक्वेंसी तक जाने लगते हैं। टेक्निकली उनकी आवाज का माइक्रोफोन के साथ बेह्तर तालमेल बिठाना उनकी शानदार पेशकश को और भी अधिक शानदार बनाता है। यही नहीं, वे माइक्रोफोन का सटीक इस्तेमाल करना भी जानते हैं। राहत साहब की एक खास आदत है जिसे वो नेचुरल तौर पर करते हैं। करते क्या हैं, मेरे खयाल से ऐसा हो जाता होगा। गायन की भाषा में कहें तो वे अपनी आवाज को माइक्रोफोन के सहारे 'फेड इन' और 'फेड आउट' करते हैं। आजकल तो कम्प्यूटर और बहुत–सारे उपकरण आ गये हैं, जिनके सहारे गायन में 'फेड इन' या 'फेड आउट' कर दिया जाता है, लेकिन पहले के गायकों के सामने जब किसी मिस्रे में इस तरह के इफेक्ट लाने होते थे, तो वे अपने मुँह और माइक्रोफोन के बीच की दूरी को कम या जियादा करते थे। गाते हुए दूर से धीरे–धीरे मुँह माइक तक लाकर 'फेड इन' करते और 'फेड आउट' की जरूरत पड़ने पर मुँह को माइक्रोफोन से दूर ले जाते थे।

राहत साहब भी प्रायः ऐसा करते हैं। उनकी आवाज का वॉल्यूम जरूरत के मुताबिक कम– जियादा होता रहता है, लेकिन अक्सर वो अपनी आवाज का वॉल्यूम बराबर रखते हुए माइक से अपने मुँह की दूरी को संतुलित करते हैं। इस तरह वे अपने मिसरों को 'फेड आउट' या 'फेड इन' करते हैं। इससे एक खास कैफीयत पैदा होती हैं और सामईन पर एक खास असर पड़ता है।

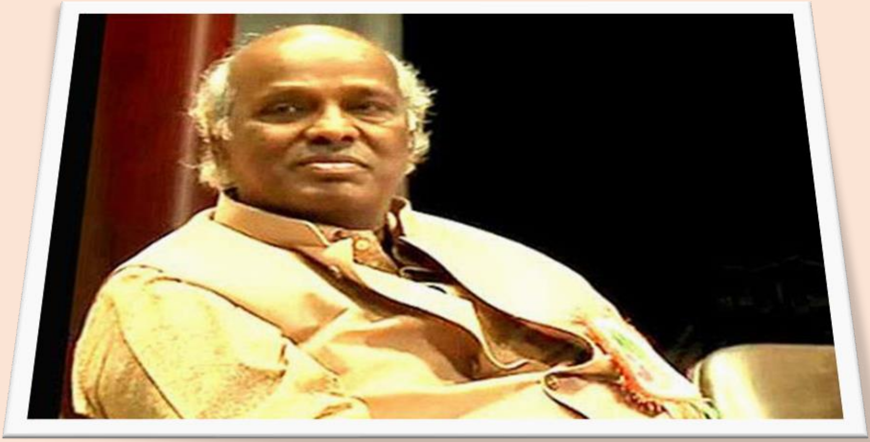

राहत साहब की शायरी से गुजरना किसी दीर्घवृत्त (ellipse) की परिधि पर चलने जैसा है। जिस तरह दीर्घवृत्त में दो नाभि (विबने) होते हैं उसी तरह राहत साहब की शायरी में भी दो केंद्र हैंदृ एक तो वो जिसे हम खालिस अदबी कह सकते हैं और दूसरा वो है जिसे हम मुशायरों के फराइज अंजाम देनेवाला कह सकते हैं। पहले केंद्र के आसपास जाती तौर पर अपनी संवेदनशीलता से महसूस किये गये अनुभव हैं तो दूसरे केंद्र के पास सियासत और मजहब से पैदा हुए मसाइल हैं। हमें राहत साहब की शायरी को पूरी तरह से समझने के लिए कम–से–कम इस दीर्घवृत्त एक पूरा तवाफ (परिक्रमा) जरूरी है।

राहत साहब की शायरी से असहमति रखनेवाले और खुले तौर पर इनका विरोध करनेवाले शुरू से ही कम नहीं थे। दरअस्ल राहत साहब की शायरी उर्दू–शायरी के तीन सौ बरसों के तमाम मिथकों को तोड़नेवाली शायरी है। इनकी गजलगोई गजल के रिवायती और जदीद (परम्परगत और आधुनिक), दोनों ही ढाँचों को तोड़ती है। न इन्होंने इश्क–माशूक, बुलबुल–सैयाद, गुल और चाँद के प्रतीकों को अपनी शायरी में शामिल किया और न ही जदीद शायरी की अमूर्तता ही इन्हें पसंद आयी। मुनासिबत और रिआयत की तर्तीब का बहुत ध्यान न रखकर इन्होंने सीधे–सीधे 'स्टेटमेंट' देने शुरू किये।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

इसे हिंदी आलोचना की शब्दावली में कहा जाये तो ये 'सपाटबयानी के कवि' के तौर पर सामने आये। ये भी कहा जा सकता है कि इन्होंने गद्य को मीटर–बह्र में करने का काम किया। इस लिहाज से ये कलावादियों को तो बिल्कुल ही नहीं पसंद आये। प्रतीकात्मक शैली में शेर कहनेवाले शायर जहाँ एक ओर अपने श्रोताओं को बखूबी साध लेते हैं, वहीं दूसरी तरफ अपने आकाओं या अपने राजनीतिक सरपरस्तों को भी नाराज नहीं होने देते। इस तरह की दोहरी तीरंदाजी करनेवालों ने राहत साहब को कभी पसंद नहीं किया और न ही राहत साहब ने ऐसे लोगों को पसंद किया।

–0–

राहत साहब की खुश किस्मती ये रही कि शुरू से ही उस वक्त के जितने बड़े और उम्दा शोअरा हजरात थे, उनकी दुआएँ इन्हें मिलती रहीं। खुमार बाराबंकवी, शमीम जयपुरी, कृष्णबिहारी नूर, फना निजामी, कैफ भोपाली जैसे लोगों की मुहब्बतें इन्हें शुरू से ही मिलती रहीं। ऐसे पायेदार शायरों के साथ ही इनका सफर शुरू हुआ। भुसावल के उस मुशायरे में कृष्णबिहारी 'नूर', निहाल ताबाँ, ताबाँ झाँसवी, खुमार साहब, कैफ भोपाली वगैरह शामिल थे। अपनी टूटी–फूटी तरन्नुम के साथ राहत साहब भी थे। तरन्नुम के शायर के रूप में थोड़ी–बहुत पहचान बन चुकी थी। उस मुशायरे के सफर के दौरान ही राहत साहब ने एक गजल कही, लेकिन उसका कोई तरन्नुम नहीं था। 'तरन्नुम नहीं था' का मतलब है कि राहत साहब उस अल्हड़पन के दौर में भी कभी गजल गुनागुनाकर नहीं कहते थे। शेर के मिस्रे उनके जेहन में तहत में उतरते थे और बाद में वे उसका तरन्नुम निकालते थे।

गजल हो गयी और वक्त कम होने के कारण तरन्नुम नहीं सेट हो पाया था। राहत साहब कृष्णबिहारी 'नूर' के पास पहुँचे और कहा– "सर मैंने एक गजल कही है, उसके कुछ शेर आपको सुनाना चाहता हूँ।" नूर साहब सोचे कि अभी ये तरन्नुम में ही सुनायेगा। राहत साहब ने तहत में ही वो गजल उन्हें सुनायी और उन्होंने बहुत दाद दी, बड़ी तारीफ की। नूर साहब ने कहा– "राहत आज सुनाओ इसे मुशायरे में।" राहत साहब बोले– "जरूर सुनाऊँगा, लेकिन अभी

इसकी तरन्नुम नहीं सेट हो पायी है।'' नूर साहब बोले कि– ''ये गजल ऐसी है कि इसके लिए तरन्नुम की जरूरत नहीं है, तुम इसे तहत में ही सुनाओ। इस गजल के शेर ऐसे हैं कि इसमें गाने की गुंजाइश ही नहीं हैं।'' उस गजल का एक शेर था–

जिन चरागों से तअस्सुब का धुआँ उठता है।
उन चरागों को बुझा दो तो उजाले होंगे।।

–0–

मुशायरों की परम्परा में बेशुमार पेचो–खम हैं। गजल पर जितना काम पिछले चार–पाँच सौ बरसों में हुआ है उतना हिन्दी–उर्दू मिलाकर किसी अन्य विधा पर नहीं हुआ। गजल पर हुए बेशुमार कामों ने इसमें इतनी चमक पैदा की है कि उर्दू की अन्य विधाएँ (अस्नाफ)इसके सामने फीकी पड़ जाती हैं। 'अदब' का एक मतलब 'लिहाज' भी होता है। मुशायरों में 'अदब' की हिफाजत होती थी, यानी 'लिहाज' की भी हिफाजत होती थी। एक मिसाल राहत साहब ने सुनायी–

किसी शेरी महफिल में जिगर मुरादाबादी और असगर गोंडवी मौजूद थे। जिगर मुरादाबादी असगर साहब को अपना उस्ताद मानते थे। असगर साहब कोई गजल पढ़ने लगे तो एक कीड़ा जिगर साहब की शेरवानी में घुस गया। उसने जख्म बनाना शुरू किया, लेकिन जिगर साहब टस–से–मस नहीं हुए। इसमें उस्ताद की बेहुर्मती थी। आखिरकार जब असगर साहब ने मक्ता पढ़ा तब जिगर साहब उठकर दूर गये और किसी तरह उस कीड़े को निकाला। तब तक वो काफी बड़ा जख्म बना चुका था। इसी तरह पहले के मुशायरों में नये शायरों को दाद देने तक की इजाजत नहीं रहती थी। उनसे ये उम्मीद की जाती थी कि पहले वो ठीक से सुनना सीखें, फिर उसे समझना सीखें तब दाद देने की कोशिश करें। पहले के मुशायरों में कोई नया शायर जिस तरह बैठ जाता था उसी तरह घंटों बैठा रहता था। बार–बार हाथ–पाँव इधर–उधर फैलाना–सिकोड़ना बेअदबी माना जाता था और कहा जाता था कि फलाँ साहब को तो महफिल में बैठने की भी तमीज नहीं, बार–बार पहलू बदलते रहते हैं। राहत साहब भी मुशायरों की हर रिवायत को जितना मुमकिन हो सका निभाते आये हैं। अपने से बड़े शायरों का उन्होंने हमेशा खयाल रखा। अगर किसी मुशायरे में

सामईन सीटी बजाने लगते तो राहत साहब फौरन उन्हें टोक देते और तरह–तरह की नसीहतें देकर उन्हें कायल करते। अगर सामईन सीनियर शायरों को बिना सुने जाने लगते तो राहत साहब खड़े होकर अपील करते और सामईन को कुछ देर और रोक लेते थे। जब तक हालात ऐसे नहीं हुए कि इन्हें पहली सफ में आकर बैठना पड़े तब तक बुजुर्गों के एहतराम में पिछली सफों में बैठना ही मुनासिब समझा। अभी ऊपर राहत साहब के एक शेर का जिक्र आया है–

जिन चरागों से तअस्सुब का धुआँ उठता है
उन चरागों को बुझा दो तो उजाले होंगे

इस शेर पर राहत साहब को इतनी जियादा तारीफ क्यूँ मिली, इस बात पर गौर करना जरूरी है। बजाहिर तो दूसरे मिस्रे में 'चरागों को बुझाने पर उजाला' होने की बात की जा रही है, जो कि फित्री तौर पर बिल्कुल सही नहीं है। इस शेर की तहें इसके हवालों (सन्दर्भों) में हैं और उन हवालों की तरफ तरन्नुम से इशारा नहीं किया जा सकता। इस शेर का एक राजनीतिक अर्थ (सियासी मानी) भी है इसलिए उस अर्थ का गला गलेबाजी करके नहीं घोटा जा सकता। मुझे इस शेर के अर्थ की तरफ शब्बीर कुरैशी साहब ने इशारा किया था जो कि राहत साहब के करीबी दोस्त हैं।

जो लोग भारतीय जनता पार्टी का इतिहास जानते हैं, उन्हें पता है कि इसकी उत्पत्ति मूलतरू भारतीय जनसंघ (जिसे जनसंघ भी कहते हैं) से हुई। इस पार्टी की स्थापना (1951) श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने की। 1952 के संसदीय चुनाव में इसे दो या तीन सीटें मिली थीं। 1975–1976 में कांग्रेस सरकार द्वारा लागू किये गये आपातकाल के बाद भारत के अन्य राजनैतिक दलों और इस जनसंघ को मिलाकर जनता पार्टी बनी।

जनसंघ अपनी स्थापना के दिनों से ही साम्प्रदायिक विचारोंवाली पार्टी थी। फिलहाल, उन सब बातों का लम्बा इतिहास है, जिसकी यहाँ अभी जरूरत नहीं है। इसी जनसंघ पार्टी का चुनाव चिह्न था 'जलता हुआ दीपक' या 'दिया'। चूँकि ये 'जलता हुआ दिया' था, इसलिए इसमें से धुआँ उठने की बात प्राकृतिक रूप से तर्कसंगत लगती है। इस पार्टी की साम्प्रदायिक मानसिकता को देखते हुए 'तअस्सुब' (धार्मिक पक्षपात, बेजा तरफदारी) लफ्ज का इस्तेमाल भी एकदम सटीक ढंग से हुआ था। इन सब हालात के खुलकर सामने

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

आने से अब दूसरे मिस्रे में चरागों को बुझाने पर उजाला होने की उलटबाँसी भी तर्कसंगत लग रही। काँग्रेस पार्टी के लोग अपने कार्यक्रमों में राहत साहब के इस शेर का बहुत जोरदार ढंग से प्रयोग करने लगे। यहाँ तक कि इसी शेर से उनके कार्यक्रमों, चुनावी सभाओं और रैलियों की शुरूआत भी होने लगी थी। कांग्रेसवाले पहले भी जनसंघ के चुनाव चिह्न को लेकर कई नारे लगाया करते थेदृ जनसंघ के दीप में तेल नहीं, सत्ता चलाना कोई खेल नहीं। या इस दीपक में तेल नहीं, सरकार बनाना खेल नहीं।

जहाँ इस तरह के घिसे–पिटे तुकबंदीवाले नारे लगाये जाते थे, वहाँ राहत साहब का शेर बहुत प्रतीकात्मक था। अब जरा सोचिए कि इस शेर को पढ़ने पर जनसंघ के विपक्षियों में किस प्रकार की शोरअंगेजी होती रही होगी। एक बात इस सिल्सिले में साफ करना और जरूरी हैदृ राहत साहब ने जानबूझकर ये शेर जनसंघ पर नहीं कहा था। शेर की आमद हो गयी तो खयाल इस तरफ भी गया।

—0—

राहत साहब को सबसे अलहदा बनाती है, वो है इनके शेर पढ़ने का अंदाज। इनके शेर पढ़ने के अंदाज में संगीत का सहारा बिल्कुल नहीं है। शायरी की आंतरिक लय ही राहत साहब की लय है। तरन्नुम छोड़कर राहत साहब ने अपनी शायरी को तरन्नुम के दायरों से उठाकर बहसों–मुबाहिसों के दायरों में पहुँचा दिया। पढ़ने का अंदाज ही एक–एक शेर को सामईन के दिलो–दिमाग में पैवस्त कर देता है। जब से राहत साहब मंचों पर हैं तब से जाने कितने शोअरा आये और चले गये। पिछले पचास सालों में राहत साहब की आँखों के सामने एक युग की शुरूआत हुई और वो युग समाप्त भी हो गया, लेकिन वे आज भी उसी दमखम के साथ मंचों पर डटे हुए हैं। उनके लिए अब पैसा भी बहुत मायने नहीं रखता। बच्चे खुद सक्षम हैं कि वे अपना घर–परिवार चला सकें। पिछले कई सालों से राहत साहब ने शराब भी नहीं पी, लेकिन मुशायरों में बराबर जा रहे हैं। इससे ये भी सिद्ध होता है कि वे कभी शराब के मोहताज नहीं रहे। आज अगर राहत साहब मंचों पर डटे हैं, जमे हैं तो सिर्फ अपनी शायराना काविशों की बदौलत। शायरी ही सिर्फ एक जरीआ है, एक वसीला है जो उन्हें

आज भी खराब तबीअत और खराब मौसम में इस मुशायरे से उस मुशायरे तक लेकर जा रही है। वे आजीवन शायरी को समर्पित शायर हैं। कभी उन्होंने दर–दर अपने इसी भटकने को लेकर कहा था–

तुम्हें पता ये चले घर की राहतें क्या हैं।
अगर हमारी तरह चार दिन सफर में रहो।।

–0–

ऐसा नहीं है कि राहत साहब से पहले उर्दू–गजल में एहतेजाज या विरोध का कोई पहलू नहीं था। परम्परागत उर्दू–शायरी में इंसान की आजादी के लिए जितनी काविशें–कोशिशें हैं उनको दरकिनार करके अगर हम जदीद दौर के सियासी एहतेजाज की बात करें तो भी ऐसे शायरों की कमी नहीं है जिनके यहाँ विरोध ओर विद्रोह की आवाज बुलंद है। जोश, साहिर, फैसला, फराज वगैरह जैसे और भी कई शायर मौजूद हैं। राहत साहब की शायरी इन सबसे अलग है, या यूँ कहें कि राहत साहब की स्थिति इन सबसे अलग है। 'संसद–भवन में आग लगा देनी चाहिए' जैसे मिस्रे अगर राहत साहब ने कहे तो इसे रिसालों और किताबों में छपवाने के लिए नहीं कहे। इसे जिस झुँझलाहट, जिस झल्लाहट में कहा गया था, उसी झुँझलाहट और झल्लाहट से मुशायरों में पढ़ा भी गया। आज भी पढ़ा जाता है। मुशायरे इस बात का जिन्दा सुबूत होते हैं कि शायर कितना जिन्दा है। आज की शायरी में वो माहौल नहीं है कि शायर धर्म और मजहब के कर्मकांडों का विरोध करे और लोग उसे हँस–हँसकर दाद दें। हमारे दौर में नासेह, वाइज, शेख, काबा, बुतखाना, काफिर, शराब वगैरह के हवाले से प्रतीकात्मक शायरी करने पर युवा पीढ़ी के सामईन शायद ही कुछ समझ पायें, लेकिन 'रवायतों की सफें तोड़कर बढ़ो वर्ना, जो तुमसे आगे हैं वो रास्ता नहीं देंगे' जैसे मिस्रे सीधे–सीधे जेहन में उतर जाते हैं। राहत साहब का पूरा शब्दकोश ही अलग है।

–0–

लेख

देवी नागरानी
dnangrani@gmail.com

रामकथा की पात्र कैकेयी

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने यह साबित कर दिया है कि हर इंसान में कुछ अच्छाइयां और कुछ बुराइयां जरूर होतीं हैं। उन्हीं के आसपास से कहानियां बुनी जातीं हैं, उपन्यास लिखे जाते हैं. कभी–कभी कहानी पढ़ कर भूल जाना स्वाभाविक होता है पर कुछ किरदारों में ऐसे गुण दोष होते हैं कि उनकी शख्सियत को भुला पाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन होता है, जैसे शरद का 'देवदास', टोल्स्तोय की 'अना' और रामायण की 'कैकेयी'।

रामायण की जब जब बात आती है तो मर्यादा पुरुषोतम राम का सम्पूर्ण जीवन सामने आ जाता है, जैसे– अयोध्या नगरी का वैभव, राजा दशरथ, उनकी तीन पत्नियां कौशल्या–सुमित्रा–कैकेयी और हृदय–पटल पर कैकेयी के कांड का सारा दृश्य जीवित हो उठता है, जहां उनके चरित्र का एक विकृत रुप सामने आता है, वहीँ उनके चरित्र के अनेक पक्ष–पुत्र मोह, सौतेलेपन के भेद–भाव, षड़यंत्र रचने

वाली नारी के रुप में उभर आते हैं। और उसी कुचक्र का अंजाम भी यादों में दोहराया जाता है—राम का बनवास, राजा दशरथ की मृत्यु, सीताहरण तथा लंका का ध्वंस होना। रामायण का एक और सकारात्मक पहलू भी है जो कैकेयी के इस बर्ताव को दोष के कटघरे में खड़ा नहीं करता। संभवता कैकेयी की भूमिका में रामावतार का उद्देश्य शामिल रहा, जिसकी पूर्ति के लिए राम का वन गमन आवश्यक व महत्वपूर्ण कदम था।

राम को अपने जाए पुत्र भरत से भी अधिक स्नेह करने वाली एक आदर्श माता का चरित्र अचानक ही कुछ क्षणों में संसार की कुटिल कुमाता के रुप में कैसे परिवर्तित हो गया? उनके चरित्र में आए इस बदलाव के पीछे क्या कोई गूढ़ रहस्य है जो एक साधारण मनुष्य की बुद्धि व नजरिए को आंक पाने में असक्षम है? शोधर्थियों ने भी अपने अपने दृष्टिकोण से इस विषय वस्तु को गहराइयों तक खंगाला है और उतर पाने की संभावना को अर्थपूर्ण और तर्कपूर्ण बनाया है।

शोधार्थी कुछ निष्कर्ष निकालते हैं, पर हर धारणा के जवाब के सामने एक नया सवाल खड़ा हो जाता है, जो कैकई के संपूर्ण चरित्र, उनके मातृत्व की भावना को, उन पर लगाए गए लांछनों को शोध का विषय बनाती है।

- ✓ ऐसी सर्वगुण संपन्न राम की विमाता—कुमाता बनने का सौभाग्य चारों युगों में सिर्फ कैकेयी को ही प्राप्त हुआ।
- ✓ ऐसे पद पर पदासीन प्रतिष्ठित नारी ने एक ही दृष्टांत से चारों युगों में स्वयं को सबसे अधिक नीच कुमाता होने का श्रेय लिया।
- ✓ क्यों जानते हुए उसने अपने चरित्र को रसताल की गहराइयों में धंसने दिया, आखिर क्यों ?
- ✓ क्यों वह मूक रहकर इन लांछनों को सहन करती रही ?
- ✓ क्या वह मोह ही था जिसने कैकेयी को इतना नीचे गिरा दिया था कि उसने अपने सद्‌गुणों की छवि पर लांछन की कालिख पोत कर सदा—सर्वदा के लिए अपने चरित्र को इतिहास के अंधेरों में धकेल दिया ?

- ✓ क्या मंथरा जैसी मंदबुद्धि, कुबुद्धि की सोच के बहकावे में आ गई कि पुत्र मोह में डूबी एक दुर्बल माँ इतना बड़ा कलंक लेने को तैयार हो गई ?
- ✓ कैकेयी को विदूषी, बुद्धिमती, शस्त्र व शास्त्र की ज्ञाता, शक्ति संपन्न वीरांगना माना गया है। अतःएक दासी की सलाह पर कैकेयी द्वारा इतना बड़ा निर्णय लेना उचित या संभव प्रतीत नहीं होता। क्या इसकी जड़ में कहीं कोई और कारण है ?

संदर्भों की पठनीयता यही सिद्ध कर रही है कि इस कांड के अलावा कैकेयी का चरित्र, इस घटना से पहले या इस घटना के बाद कभी कहीं भी दुर्बल नहीं पाया गया। जिस कैकेयी का मातृ प्रेम आकाश की ऊंचाइयों को छूता रहा, जिसने राम को भरत से बढ़कर माना, जिसे जन्म से ही स्नेहिल गोद में पाला पोसा, अपने आंचल के संरक्षण में बड़ा किया, वही कैकेयी उसी राम को बिना किसी दोष के, बिना किसी अपराध के इतना बड़ा दंड देने को तत्पर हो गई? क्यों, क्यों ? यह सवाल भी अपने जवाब की तलब में मारा मारा फिर रहा है। कैकेयी न होती तो रामकथा का यह स्वरूप कभी भी उजगार न होता, और रामायण के हर पात्र का चरित्र यूँ आदर्शमय पूर्णता के साथ सामने मुखर कर न आता। कैकेयी का राम को वन भेजना नियति की ओर से एक आयोजन था– विशेष रूप से उस रावण वध हेतु भेजना, जिसे उसके पराक्रमी पति महाराज दशरथ भी न मार सके। यह कार्य किसी भी प्रकार संभव न होता अगर राज्य त्याग कर राम वन न चले जाते, और न ही देवताओं का कार्य सिद्ध होता!

फिर भी एक सवाल मन में कुनमुनाता है– क्या कैकेयी का ध्येय धर्म की पुनर्स्थापना करना था ? क्या राम को विजयी व यशस्वी बनाना था ? क्या राम के लिए बनवास का वर मांगना कैकेयी का राम के प्रति प्रेम और श्रद्धा थी ? श्रीराम खुद त्रिकालदर्शी थे। कैकेयी क्या, कोई भी ज्ञाता श्रीराम की इच्छा मात्र के विरुद्ध अणु मात्र भी कार्य करने की क्षमता या सामर्थ्य का हकदार न था, न ही ऐसी संभावना का कोई अस्तित्व ही था। फिर भी एक माता के रूप में श्री राम को चौदह वर्ष का बनवास देने के पीछे कैकेयी का कौन उद्देश्य था ?

क्या यह नियति है ? जिसके वश में कैकेयी ने यह सब किया या एक सिद्धि की पूर्ति के लिए उससे करवाया गया ? रामावतार एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही था– एक, असुरों के सर्वनाश के लिए, दूसरा, वेदों की मर्यादा की स्थापना के लिए और तीसरा राक्षस राजा रावण को मार कर धर्म की अधर्म पर विजय पाने के लिए। ये तीनों ही कार्य श्रीराम ने प्रति पादन किए।

रामकथा में दो बातें सामने आतीं हैं जिससे रामावतार का कारण स्पष्ट हो जाता है। राम नर के रुप में नारायण थे, उनका अवतार ही राक्षसों और रावण के वध के लिए हुआ। ध्येय साफ था– असुरों का सर्वनाश करना, वेदों की मर्यादा को स्थापित करना, धर्म की अधर्म पर विजय। शायद यही एक विकल्प था। राम को श्रेय दिलाने के लिए कैकेयी ने उन्हें बनवास भेजा जहां उनके द्वारा राक्षसों का वध करते हुए राम राज्य की स्थापना सम्पन्न हुई।

भक्ति साहित्य के हर युग में ये सवाल बार–बार अपना जवाब पाने के लिए दोहराए जाएंगे। जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में इतना कहा जा सकता है कि रामायण का हर पात्र अपने आप में एक उदहारण है। राम को मर्यादा पुरुषोतम कहकर याद किया जाता है, क्योंकि उन्होंने अपने पिता के दिए हुए वचन की खातिर माता कैकेयी का दिया बनवास स्वीकार कर लिया।

देश हो चाहे परदेस हम भारतवासी इस पवन भूमि की जड़ों से जुड़े हैं। रामायण के पात्र कहीं न कहीं न कहीं हमें बुराइयों पर अच्छाइयों की फतह का सन्देश देते हैं। आज के संदर्भ में भक्ति साहित्य में विश्व बंधुत्व की भावना को लेकर कई पहलू सामने आ रहे हैं। भारत में ही नहीं विदेश में भी इन पुरातन संदर्भों की चर्चा, परिचर्चा है, कैकेयी के माता–विमाता–कुमाता पक्ष को लेकर–कई सवाल सामने ले आती है। विदेश में भी मंदिरों में, मठों में, रामकृष्ण मिशन में, विवेकानंद सोसाइटी में, ग्रंथालयों में, स्वाध्याय बैठकों में जहाँ भाषा और संस्कृति के प्रचार प्रसार की बात होती है, इस विस्मयकारी चरित्र पर वाद विवाद करते है. स्वाध्याय क्लास में कभी गीता, कभी रामचरित मानस पर कोई चर्चा परिचर्चा। और कभी उनके पात्रों कैकेयी, राम, भरत, रावण आदि के चरित्र का विश्लेषण. कहीं तो नाट्य स्वरुप इन चरित्रों को मंच पर दिखाया जाता है। विदेश में रहते हुए यही पाया गया है कि जो हमारे मजहबी ग्रन्थ

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

है—रामयण व महाभारत के जो पात्र है, वे कहीं न कहीं अच्छाइयों की बुराइयों पर फतह का सन्देश देते हैं। इसी सकारात्मक पहलू से प्रेरणा पाकर आने वाले कल में हमारे अनुज नीति, आदर्श और कर्त्तव्य के इस ध्येय को सामने रखते हुए आगे कदम बढ़ाएंगे और अपने असली लक्ष्य को पाने का प्रयास करेंगे। इसे अपने जीवन को संचारित करना एक लक्ष्य है. बात वहीं आकर खत्म होती है कि राम मात्र शब्द नहीं एक संस्कार है, जो जीवन में उतारना है। बड़ों का आदर, उनका सम्मान और उनके कथन की पूर्ति को अपनी जवाबदारियों में शामिल करना होगा। रामायण के सभी पात्र मर्यादा की परिभाषा जानते थे, मानते थे, और पालन करते थे। यही मूल मन्त्र अगर आज इंसान अपने जीवन में उतार ले, तो यह बीज भाव हमारी पहचान बन जायेगा। जो साहित्य के पन्नों में दर्ज है, वही हमारे जीवन में संचारित हो पाए तो जीवन अर्थपूर्ण बन जायेगा।

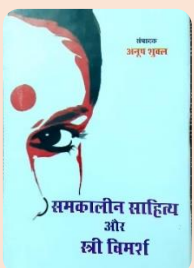

समकालीन साहित्य और स्त्री विमर्श

अनूप शुक्ल (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-929060-5-8

संस्करण : 2015, मूल्य : 400/-

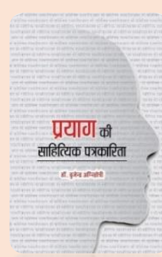

प्रयाग की साहित्यिक पत्रकारिता

डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री

आईएसबीएन : 978-93-87831-60-1

संस्करण : 2019, मूल्य : 250/-

लेख

डॉ. शोभा ठाकुर
13/24 आइन्सटाइन एवेन्यु, दुर्गापुर,
पश्चिम बंगाल

कोरोना काल में शिक्षा व्यवस्था पर संकट व चुनौतियाँ

रिश्तों की बुनियाद प्रेम और विश्वास पर टिकी होती है, ये किसे नहीं पता? लेकिन रिश्तों का भविष्य कर्तव्य और संवेदनाओं के साये में पलता है, ये भी उतना ही तथ्यपूर्ण है। रिश्तों में यदि कर्तव्य की आँच और संवेदनाओं की नमी न हो तो वह दीर्घकालिक नहीं हो सकता। रिश्ता फिर चाहे वह पारिवारिक हो या सामाजिक। रिश्तों की इस परिभाषा में एक रिश्ता ऐसा ही है जो सदा से भारतवर्ष की पहचान बना रहा है। फिर चाहे बात विष्णुगुप्त द्वारा राजा के तीन राजकुमारों को महज कहानियों के माध्यम से राजधर्म की पूरी शिक्षा देने की बात हो, या नालंदा विश्वविद्यालय का इतिहास हो।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वर
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।"

मैं बात कर रही हूँ शिक्षक और छात्र के उस पुनीत रिश्ते की जो विश्वास ,कर्तव्य और संवेदनाओं के साये में पलता पनपता है। हालांकि, आज के इस कलियुगी दौर में आधुनिकता की चोट से यह रिश्ता भी आहत हुआ है पर बावजूद इसके इसकी बुनियाद जिस प्रेम और विश्वास पर टिकी है, वह इतनी हल्की नहीं कि किसी झंझावात से उसका अस्तित्व मिट जाए। इसीलिए आज कोरोना महामारी नामक इस वैश्विक समस्या से जो लोग हैरान परेशान हैं और छात्रों के भविष्य को लेकर चिंतित हैं, मैं उन्हें आश्वस्त करना चाहती हूँ कि छात्रों का भविष्य बिलकुल सुरक्षित है। उनके भविष्य को कोई खतरा नहीं बल्कि इस वैश्विक समस्या के कारण वे ऐसी कई चीजों को जान पाएँगे, कई तथ्यों से परिचित हो पाएँगे जिन पर उनकी नजर वैसे नहीं जाती।

हमारी भारतीय संस्कृति में दान की अद्भुत महिमा बताई गई है और शिक्षा को हमारे देश में परंपरित रूप में दान से ही जोड़ कर देखा गया है, इसलिए यह ज्ञानदान कहलाता है। कहावत है कि जहाँ चाह होती है वहाँ राह भी निकल ही आती है। कोरोना काल के इस महासंकट की स्थिति में शिक्षण संस्थानों द्वारा ऑनलाइन कक्षाओं के तहत पढ़ाने का निर्णय लेना इसी तथ्य को उजागर करता है कि ज्ञान की प्रक्रिया उस अविरल धारा के समान है जो कभी रुकती नहीं और शिक्षक छात्र का यह रिश्ता ऐसा है जो परिस्थितियों के किसी भयावहता के आगे झुकता नहीं बल्कि वहाँ से अपने लिए नई राह खोज निकालता है। इस चुनौती को भी शिक्षक समुदाय ने बड़ी कर्मठता से सँभाला है। हाँ, ये सच्चाई है कि इस प्रक्रिया से होनेवाली शिक्षण पद्धति थोड़ी कष्टसाध्य है तो कहीं कहीं वह थोड़ी सी जटिल भी। पर बावजूद इसके यह सकारात्मक प्रयास अपने आप में हमें बहुत कुछ सिखा जाता है। जिस मोबाइल फोन और टैब से बच्चों को दूर रहने का निर्देश दिया जाता था आज वही मोबाइल फोन शिक्षा प्राप्ति में उनके लिए साधन बन गए हैं। इसने पुनः एक बार ये समझाया कि वस्तु की उपादेयता उसके प्रयोग पर निर्भर करती है। अभिभावकों को भी मौका मिला इस नई तकनीक के माध्यम से शिक्षण प्रक्रिया की बारीकियों को देखने व समझने का, साथ ही अपने बच्चे की

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

विकास प्रक्रिया से अवगत होने का भी। अपने बच्चों की पढ़ाई से जुड़ने का भी। नियमित कक्षाओं के साथ कई विद्यालयों ने ऑनलाइन परीक्षाएँ भी सफलतापूर्वक सम्पन्न की। संघर्ष जहाँ इंसान को अनुभवी बनाता है, वहीं दृढ़ इच्छाशक्ति उसे कर्मठ बनाती है। इसी दृढ़ इच्छाशक्ति ने इस वैश्विक महामारी के दौर में जहाँ एक ओर शिक्षकों को चॉक डस्टर की परंपरित पाठशाला से निकालकर तकनीक के नए आयामों से परिचित कराया तो वहीं दूसरी ओर शिक्षार्थियों को भी यह समझा दिया कि शिक्षण प्रणाली में शिक्षक के स्थान का कोई विकल्प नहीं हो सकता।

शिक्षक का स्थान एक मशीन कभी नहीं ले सकती क्योंकि भावनाओं और संवेदनाओं का वह आलोड़न मशीन कभी नहीं दे सकता जो एक शिक्षक के द्वारा बच्चे को मिलता है । जबकि पिछले कई दशकों से यह चर्चा परिचर्चा का विषय बना रहा कि क्या शिक्षक का स्थान मोबाइल फोन और टैब ले सकते हैं ? लेकिन इस कोरोना काल ने छात्रों को यह भली भाँति समझा दिया कि मशीन उन्हें जानकारी तो दे सकती है पर हर दिमाग तक उस जानकारी को पहुँचाने के लिए जिस भावनात्मक संयम और कला की आवश्यकता है वह मशीन द्वारा पूरी नहीं की जा सकती।

हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। शिक्षा भी दो प्रकार की होती है। एक वह जो हमें पाठ्यक्रम में सफलता प्राप्ति के द्वारा न केवल एक प्रतिष्ठित डिग्री प्राप्त कराती है बल्कि उस डिग्री के द्वारा जीवन में व्यवस्थित व संपन्न होने का भी रास्ता दिखाती है। दूसरी वह जो हमें पाठ्यक्रम के साथ–साथ जीवन के मूल्यों को भी धारण करना सिखाती है, व्यक्ति को अपने परिवार, समाज और देश के प्रति उसके कर्तव्यों से परिचित कराती है और देश की मिट्टी को मोल देना सिखाती है। आज जबकि विश्व के तमाम बड़े–बड़े देश इस वैश्विक महामारी से निपटने में स्वयं को असमर्थ महसूस कर रहे हैं, आर्थिक मंदी के दौर से गुजर रहे हैं, और अपनी स्थितियों को सुधारने के क्रम में प्रवासी भारतीयों के लिए परेशानी का कारण बन रहे हैं तब उनकी गुहार अपने देश की मिट्टी को ही पुकार रही है। केवल अपने जीवन की सफलता व संपन्नता के लिए अपनी बेहतरीन शिक्षा व ज्ञान से अपने देश को लाभांवित न करके विदेशों में अपने लिए आश्रय

बनाने वालों की यह विडंबना क्या एक बहुत बड़ी शिक्षा नहीं है आज के छात्रों के लिए। रहीमदास ने कभी कहा था–

रहिमन निज संपति बिना कोऊ न विपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को रवि सके नहीं बचाए।।

संपत्ति से कवि का आशय यहाँ केवल धन से नहीं है, बल्कि इसका अर्थ बहुत गंभीर है। संपति धन का परिचायक है क्योंकि वह उसके जीवन की जरूरतों को पूरा करती है, संपति उसके ज्ञान व गुण का परिचायक है जो उसे विपद काल में उससे निकलने का रास्ता दिखाती है और संपति अपने देश की मिट्टी भी है जो अंततः हमें हर हाल में शरण देती है। जिस देश ने उसे सबकुछ दिया, महज् अपने जीवन की सुख सुविधाओं के लिए उसका त्याग कर देना, क्या अपने देश से यह विश्वास घात नहीं। आज की इस विकट परिस्थिति ने छात्रों को कहीं न कहीं जीवन के इस रूप से भी परिचित कराया ही है। क्या यह एक सम्पूर्ण शिक्षा नहीं है।

कोरोना वायरस का मूल स्रोत कहाँ है, ये अभी तक शोध का विषय है लेकिन इस वायरस ने क्या मनुष्य को यह नहीं दिखाया कि मनुष्य की आत्मश्लाघा किस प्रकार दूसरों के लिए विनाशक बन जाती है। कहते हैं कि मकड़ी जाला बनाती है दूसरों जीवों को उसमें फँसाने के लिए लेकिन अंततः वह स्वयं भी उसी जाले में उलझ कर मरती है। जीवन का यह दृष्टिकोण हर छात्र को समझने की जरूरत है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियाँ याद आ रही हैं–

वही पशुप्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।।

जीवन में संयम को धारण करना, अपने ज्ञान का सही उपयोग करना, सीमित जरूरतों के साथ जीवन बसर करना, परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालने की कोशिश करना, ये सभी शिक्षा के ही विभिन्न रूप हैं, जो कहीं न कहीं पाठ्यक्रम के नीचे और आधुनिक जीवन शैली के नीचे दब गए थे। दबे ही थे, मिटे नहीं थे इसलिए आज ये सारे मूल्य एक बार फिर उभर कर हमारे सामने प्रस्तुत हुए हैं जो छात्रों की इस पीढ़ी को निश्चित ही एक उज्ज्वल भविष्य प्रदान करेंगे जो न केवल स्वयं के लिए, देश के लिए बल्कि पूरी मानवता के लिए एक मिसाल बनेगी।

–0–

लेख

डॉ. विदुषी शर्मा
अकादमिक काउंसलर , IGNOU
drvidushisharma9300@gamil.com

आदि शंकराचार्य : सत्य सनातन धर्म के आधार

(आदि शंकराचार्य जी स्वयं शंकर के अवतार रहे हैं। जो स्वयं ईश्वर है, ईश्वर का अवतार है उनके गुणों का बखान करने में मेरी लेखनी सक्षम नहीं है। उनके बारे में लिखना सूरज को दिया दिखाने के समान है। फिर भी हम यथासाध्य प्रयत्न कर रहे हैं। पूर्णता केवल ईश्वर में विद्यमान है। इसीलिए इस धृष्टता के लिए अग्रिम क्षमा याचना प्रस्तुत करती हूँ।)

शंकर दिग्विजय, शंकरविजयविलास, शंकरजय आदि ग्रन्थों में उनके जीवन से सम्बन्धित तथ्य उद्घाटित होते हैं। दक्षिण भारत के केरल राज्य (तत्कालीन मालाबारप्रांत) में आद्य शंकराचार्य जी का जन्म हुआ था। उनके पिता शिव गुरु तैत्तिरीय शाखा के यजुर्वेदी भट्ट ब्राह्मण थे। भारतीय प्राच्य परम्परा में आद्यशंकराचार्य को शिव का अवतार स्वीकार

किया जाता है। कुछ उनके जीवन के चमत्कारिक तथ्य सामने आते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि वास्तव में आद्य शंकराचार्य शिव के अवतार थे। आठ वर्ष की अवस्था में श्री गोविन्द नाथ के शिष्यत्व को ग्रहण कर संन्यासी हो जाना, पुनरू वाराणसी से होते हुए बद्रिकाश्रम तक की पैदल यात्रा करना, सोलह वर्ष की अवस्था में बद्रीकाश्रम पहुंच कर ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखना, सम्पूर्ण भारत वर्ष में भ्रमण कर अद्वैत वेदान्त का प्रचार करना, दरभंगा में जाकर मण्डन मिश्र से शास्त्रार्थ कर वेदान्त की दीक्षा देना तथा मण्डन मिश्र को संन्यास धारण कराना, भारतवर्ष में प्रचलित तत्कालीन कुरीतियों को दूर कर समभावदर्शी धर्म की स्थापना करना– इत्यादि कार्य इनके महत्व को और बढ़ा देता है। चार धार्मिक मठों में दक्षिण के शृंगेरी शंकराचार्यपीठ, पूर्व (ओडिशा) जगन्नाथपुरी में गोवर्धनपीठ, पश्चिम द्वारिका में शारदामठ तथा बद्रिकाश्रम में ज्योतिर्पीठ भारत की एकात्मकता को आज भी दिग्दर्शित कर रहा है। कुछ लोग शृंगेरी को शारदापीठ तथा गुजरात के द्वारिका में मठ को काली मठ कहते है। उक्त सभी कार्य को सम्पादित कर 32 वर्ष की आयु में ब्रह्मलीन हुए।

आदि शंकराचार्य जी का जीवन वृत्तांत : शंकर आचार्य का जन्म 788 ई. में केरल में कालपी अथवा श्काषलश नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम शिवगुरु भट्ट और माता का नाम सुभद्रा था। बहुत दिन तक सपत्नीक शिव को आराधना करने के अनंतर शिवगुरु ने पुत्र–रत्न पाया था, अतरू उसका नाम शंकर रखा। जब ये तीन ही वर्ष के थे तब इनके पिता का देहांत हो गया। ये बड़े ही मेधावी तथा प्रतिभाशाली थे। छह वर्ष की अवस्था में ही ये प्रकांड पंडित हो गए थे और आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। इनके संन्यास ग्रहण करने के समय की कथा बड़ी विचित्र है। कहते हैं, माता एकमात्र पुत्र को संन्यासी बनने की आज्ञा नहीं देती थीं। तब एक दिन नदीकिनारे एक मगरमच्छ ने शंकराचार्यजी का पैर पकड़ लिया तब इस वक्त का फायदा उठाते शंकराचार्यजी ने अपने माँ से कहा 'माँ मुझे सन्यास लेने की आज्ञा दो, नहीं तो ये मगरमच्छ मुझे खा जायेगी।' इससे भयभीत होकर माता ने तुरंत इन्हें संन्यासी होने की आज्ञा प्रदान की, और आश्चर्य की बात है की, जैसे ही माता ने आज्ञा दी वैसे

तुरन्त मगरमच्छ ने शंकराचार्यजी का पैर छोड़ दिया। और इन्होंने गोविन्द नाथ से संन्यास ग्रहण किया।

आदि शंकराचार्य जी के जन्म के कुछ प्रमाण : भारतीय संस्कृति के विकास एवं संरक्षण में आद्य शंकराचार्य का विशेष योगदान रहा है। आचार्य शंकर का जन्म पश्चिम सुधन्वा चौहान, जो कि शंकर के समकालीन थे, उनके ताम्रपत्र अभिलेख में शंकर का जन्म युधिष्ठिराब्द 2631 शक् (507 ई०पू०) तथा शिवलोक गमन युधिष्ठिराब्द 2663 शक् (475 ई०पू०) सर्वमान्य है। इसके प्रमाण सभी शांकर मठों में मिलते हैं।

सर्गे प्राथमिके प्रयाति विरतिं मार्गे स्थिते
दौर्गतेस्वर्गे दुर्गमतामुपेयुषि भृशं दुर्गेपवर्गे सति।
वर्गे देहभृतां निसर्ग मलिने जातोपसर्गेखिलेसर्गे
विश्वसृजस्तदीयवपुषा भर्गोवतीर्णो भुवि।।

अर्थ– सनातन संस्कृति के पुरोधा सनकादि महर्षियों का प्राथमिक सर्ग जब उपरति को प्राप्त हो गया, अभ्युदय तथा निरूश्रेयसप्रद वैदिक सन्मार्ग की दुर्गति होने लगी, फलस्वरुप स्वर्ग दुर्गम होने लगा, अपवर्ग अगम हो गया, तब इस भूतल पर भगवान भर्ग (शिव) शंकर रूप से अवतीर्ण हुऐ।

भगवान शिव द्वारा द्वारा कलियुग के प्रथम चरण में अपने चार शिष्यों के साथ जगदगुरु आचार्य शंकर के रूप में अवतार लेने का वर्णन पुराणशास्त्र में भी वर्णित हैं जो इस प्रकार हैं–

कल्यब्दे द्विसहस्त्रान्ते लोकानुग्रहकाम्यया।
चतुभिर्रू सह शिष्यैस्तु शंकरोवतरिष्यति।।

(भविष्योत्तर पुराण, 36)

अर्थ– कलि के दो सहस्त्र वर्ष व्यतीत होने के पश्चात लोक अनुग्रह की कामना से श्री सर्वेश्वर शिव अपने चार शिष्यों के साथ अवतार धारण कर अवतरित होते हैं।

निन्दन्ति वेदविद्यांच द्विजारू कर्माणि वै कलौ।
कलौ देवो महादेवरू शंकरो नीललोहितः।।
प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः।
ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनापि शंकरम्।।
कलिदोषान्विनिर्जित्य प्रयान्ति परमं पदम्।

(लिंगपुराण, 40.20–21.1/2)

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

अर्थ– कलि में ब्राह्मण वेदविद्या और वैदिक कर्मों की जब निन्दा करने लगते हैं, रुद्र संज्ञक विकटरुप नीललोहित महादेव धर्म की प्रतिष्ठा के लिये अवतीर्ण होते हैं। जो ब्राह्मणादि जिस किसी उपाय से उनका आस्था सहित अनुसरण सेवन करते हैं, वे परमगति को प्राप्त होते हैं।

कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वररू परः।
न देवता भवेन्नृणां देवतानांच दैवतम्।।
करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः।
श्रौतस्मार्त्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया।।
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मासंज्ञितम।
सर्ववेदान्तसार हि धर्मान वेदनदिर्शितान।।
ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनोपचारतः।
विजित्य कलिजान दोषान यान्ति ते परमं पदम।।

(कूर्मपुराण 1.28.32–34)

अर्थ– कलि में देवों के देव महादेव लोकों के परमेश्वर रुद्र शिव मनुष्यों के उद्धार के लिये उन भक्तों की हित की कामना से श्रौत–स्मार्त –प्रतिपादित धर्म की प्रतिष्ठा के लिये विविध अवतारों को ग्रहण करेंगे। वे शिष्यों को वेदप्रतिपादित सर्ववेदान्तसार ब्रह्मज्ञानरुप मोक्ष धर्मों का उपदेश करेंगें। जो ब्राह्मण जिस किसी भी प्रकार उनका सेवन करते हैं य वे कलिप्रभव दोषों को जीतकर परमपद को प्राप्त करते हैं।

व्याकुर्वन् व्याससूत्रार्थं श्रुतेरर्थं यथोचिवान्।
श्रुतेर्न्यायः स एवाथर्रू शंकरः सविताननः।।

(शिवपुराण–रुद्रखण्ड 7.1)

अर्थ– सूर्यसदृश प्रतापी श्री शिवावतार आचार्य शंकर श्री बादरायण–वेदव्यासविरचित ब्रह्मसूत्रों पर श्रुतिसम्मत युक्तियुक्त भाष्य संरचना करते हैं।

आदि शंकराचार्य की शिक्षा, ज्ञानार्जन एवम पांडित्य :

अष्टवर्षेचतुर्वेदी, द्वादशेसर्वशास्त्रवित्
षोडशेकृतवान्भाष्यम्द्वात्रिंशेमुनिरभ्यगात्

अर्थात् आठ वर्ष की आयु में चारों वेदों में निष्णात हो गए, बारह वर्ष की आयु में सभी शास्त्रों में पारंगत, सोलह वर्ष की आयु में शांकरभाष्यतथा बत्तीस वर्ष की आयु में शरीर त्याग दिया। ब्रह्मसूत्र के ऊपर शांकरभाष्य की रचना कर विश्व को एक सूत्र में बांधने का

प्रयास भी शंकराचार्य के द्वारा किया गया है, जो कि सामान्य मानव से सम्भव नहीं है। शंकराचार्य के दर्शन में सगुण ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म दोनों का हम दर्शन, कर सकते हैं। निर्गुण ब्रह्म उनका निराकार ईश्वर है तथा सगुण ब्रह्म साकार ईश्वर है। जीव अज्ञान व्यष्टि की उपाधि से युक्त है। तत्त्वमसि तुम ही ब्रह्म होय अहं ब्रह्मास्मि मैं ही ब्रह्म हूंय श्अयामात्मा ब्रह्मश यह आत्मा ही ब्रह्म है, इन बृहदारण्यकोपनिषद् तथा छान्दोग्योपनिषद वाक्यों के द्वारा इस जीवात्मा को निराकार ब्रह्म से अभिन्न स्थापित करने का प्रयत्न शंकराचार्य जी ने किया है। ब्रह्म को जगत् के उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का निमित्त कारण बताए हैं। ब्रह्म सत् (त्रिकालाबाधित) नित्य, चौतन्यस्वरूप तथा आनंद स्वरूप है। ऐसा उन्होंने स्वीकार किया है। जीवात्मा को भी सत् स्वरूप, चौतन्य स्वरूप तथा आनंद स्वरूप स्वीकार किया है। जगत् के स्वरूप को बताते हुए कहते हैं कि–

नामरूपाभ्यां व्याकृतस्य अनेककर्तृभोक्तृसंयुक्तस्य
प्रतिनियत देशकालनिमित्तक्रियाफलाश्रयस्य
मनसापि अचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभंगंयतः।

अर्थात् नाम एवं रूप से व्याकृत, अनेक कर्ता, अनेक भोक्ता से संयुक्त, जिसमें देश, काल, निमित्त और क्रियाफल भी नियत हैं। जिस जगत् की सृष्टि को मन से भी कल्पना नहीं कर सकते, उस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय जिससे होता है, उसको ब्रह्म कहते है। सम्पूर्ण जगत् के जीवों को ब्रह्म के रूप में स्वीकार करना, तथा तर्क आदि के द्वारा उसके सिद्ध कर देना, आदि शंकराचार्य की विशेषता रही है। इस प्रकार शंकराचार्य के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के मूल्यांकन से हम कह सकते है कि राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने का कार्य शंकराचार्य जी ने सर्वतोभावेनकिया था। भारतीय संस्कृति के विस्तार में भी इनका अमूल्य योगदान रहा है।

इन्हीं शंकराचार्य जी को प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ल पंचमी को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए श्री शंकराचार्य जयंती मनाई जाती है। जिस समय जगद्गुरु शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ, उस समय भरत में वैदिक धर्म म्लान हो रहा था तथा मानवता बिसर रही थी, ऐसे में आचार्य शंकर मानव धर्म के भास्कर प्रकाश स्तम्भ बनकर प्रकट हुए। मात्र 32 वर्ष के जीवन काल में उन्होंने सनातन धर्म को ऐसी ओजस्वी शक्ति प्रदान की कि उसकी समस्त मूर्छा दूर हो गई। शंकराचार्य जी तीन वर्ष की अवस्था में मलयालम का अच्छा ज्ञान

प्राप्त कर चुके थे। इनके पिता चाहते थे कि ये संस्कृत का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें। परंतु पिता की अकाल मृत्यु होने से शैशवावस्था में ही शंकर के सिर से पिता की छत्रछाया उठ गई और सारा बोझ शंकर जी की माता के कंधों पर आ पड़ा। लेकिन उनकी माता ने कर्तव्य पालन में कमी नहीं रखी॥ पाँच वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत संस्कार करवाकर वेदों का अध्ययन करने के लिए गुरुकुल भेज दिया गया। ये प्रारंभ से ही प्रतिभा संपन्न थे, अतरू इनकी प्रतिभा से इनके गुरु भी बेहद चकित थे। अप्रतिम प्रतिभा संपन्न श्रुतिधर बालक शंकर ने मात्र दो वर्ष के समय में वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ कंठस्थ कर लिए। तत्पश्चात गुरु से सम्मानित होकर घर लौट आए और माता की सेवा करने लगे। उनकी मातृ शक्ति इतनी विलक्षण थी कि उनकी प्रार्थना पर आलवाई (पूर्णा) नदी, जो उनके गाँव से बहुत दूर बहती थी, अपना रुख बदल कर कालाड़ी ग्राम के निकट बहने लगी, जिससे उनकी माता को नदी स्नान में सुविधा हो गई। कुछ समय बाद इनकी माता ने इनके विवाह की सोची। पर आचार्य शंकर गृहस्थी के झंझट से दूर रहना चाहते थे। एक ज्योतिषी ने जन्म–पत्री देखकर बताया भी था कि अल्पायु में इनकी मृत्यु का योग है। ऐसा जानकर आचार्य शंकर के मन में संन्यास लेकर लोक–सेवा की भावना प्रबल हो गई थी। संन्यास के लिए उन्होंने माँ से हठ किया और बालक शंकर ने सात वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण कर लिया। फिर जीवन का उच्चतम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए माता से अनुमति लेकर घर से निकल पड़े।

वे केरल से लंबी पदयात्रा करके नर्मदा नदी के तट पर स्थित ओंकारनाथ पहुँचे। वहाँ गुरु गोविंदपाद से योग शिक्षा तथा अद्वैत ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने लगे। तीन वर्ष तक आचार्य शंकर अद्वैत तत्व की साधना करते रहे। तत्पश्चात गुरु आज्ञा से वे काशी विश्वनाथ जी के दर्शन के लिए निकल पड़े। जब वे काशी जा रहे थे कि एक चांडाल उनकी राह में आ गया। उन्होंने क्रोधित हो चांडाल को वहाँ से हट जाने के लिए कहा तो चांडाल बोला– 'हे मुनि! आप शरीरों में रहने वाले एक परमात्मा की उपेक्षा कर रहे हैं, इसलिए आप अब्राह्मण हैं। अतएव मेरे मार्ग से आप हट जायें।' चांडाल की देववाणी सुन आचार्य शंकर ने अति प्रभावित होकर कहा–'आपने मुझे ज्ञान दिया है, अतः आप मेरे गुरु हुए।' यह कहकर आचार्य शंकर ने उन्हें प्रणाम किया

तो चांडाल के स्थान पर शिव तथा चार देवों के उन्हें दर्शन हुए। काशी में कुछ दिन रहने के दौरान वे माहिष्मति नगरी (बिहार का महिषी) में आचार्य मंडन मिश्र से मिलने गए। आचार्य मिश्र के घर जो पालतू मैना थी, वह भी वेद मंत्रों का उच्चारण करती थी। मिश्र जी के घर जाकर आचार्य शंकर ने उन्हें शास्त्रार्थ में हरा दिया। पति आचार्य मिश्र को हारता देख पत्नी आचार्य शंकर से बोलीं– 'महात्मन! अभी आपने आधे ही अंग को जीता है। अपनी युक्तियों से मुझे पराजित करके ही आप विजयी कहला सकेंगे।' तब मिश्र जी की पत्नी भारती ने कामशास्त्र पर प्रश्न करने प्रारम्भ किए। किंतु आचार्य शंकर तो बाल–ब्रह्मचारी थे, अतः काम से संबंधित उनके प्रश्नों के उत्तर कहाँ से देते ? इस पर उन्होंने भारती देवी से कुछ दिनों का समय माँगा तथा पर–काया में प्रवेश कर उस विषय की सारी जानकारी प्राप्त की। इसके बाद आचार्य शंकर ने भारती को भी शास्त्रार्थ में हरा दिया। काशी में प्रवास के दौरान उन्होंने और भी बड़े–बड़े ज्ञानी पंडितों को शास्त्रार्थ में परास्त किया और गुरु पद पर प्रतिष्ठित हुए। अनेक शिष्यों ने उनसे दीक्षा ग्रहण की। इसके बाद वे धर्म का प्रचार करने लगे। वेदांत प्रचार में संलग्न रहकर उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना भी की।

अब आचार्य शंकर ऐसे महासागर बन गए, जिसमें अद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, निर्गुण ब्रह्म ज्ञान के साथ सगुण साकार की भक्ति की धाराएँ एक साथ हिलोरें लेने लगीं। उन्होंने अनुभव किया कि ज्ञान की अद्वैत भूमि पर जो परमात्मा निर्गुण निराकार ब्रह्म है, वही द्वैत की भूमि पर सगुण साकार है। उन्होंने निर्गुण और सगुण दोनों का समर्थन करके निर्गुण तक पहुँचने के लिए सगुण की उपासना को अपरिहार्य सीढ़ी माना। ज्ञान और भक्ति की मिलन भूमि पर यह भी अनुभव किया कि अद्वैत ज्ञान ही सभी साधनाओं की परम उपलब्धि है। उन्होंने 'ब्रह्मं सत्यं जगन्मिथ्या' का उद्घोष भी किया और शिव, पार्वती, गणेश, विष्णु आदि के भक्तिरसपूर्ण स्तोत्र भी रचे, 'सौन्दर्य लहरी', 'विवेक चूड़ामणि' जैसे श्रेष्ठतम ग्रंथों की रचना की। प्रस्थान त्रयी के भष्य भी लिखे। अपने अकाट्य तर्कों से शैव–शाक्त–वैष्णवों का द्वंद्व समाप्त किया और पंचदेवोपासना का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने आसेतु हिमालय संपूर्ण भरत की यात्रा की और चार मठों की स्थापना करके पूरे देश को सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक

तथा भौगोलिक एकता के अविच्छिन्न सूत्र में बाँध दिया। उन्होंने समस्त मानव जाति को जीवन्मुक्ति का एक सूत्र दिया–

दुर्जनः सज्जनो भूयात सज्जनः शांतिमाप्नुयात्।

शान्तो मुच्येत बंधेम्यो मुक्तः चान्यान् विमोच्येत्॥

अर्थात दुर्जन सज्जन बनें, सज्जन शांति बनें। शांतजन बंधनों से मुक्त हों और मुक्त अन्य जनों को मुक्त करें।

हिंदू धर्म का संत समाज शंकराचार्य द्वारा नियुक्त चार मठों के अधीन है। हिंदू धर्म की एकजुटता और व्यवस्था के लिए चार मठों की परंपरा को जानना आवश्यक है। चार मठों से ही गुरु–शिष्य परम्परा का निर्वाह होता है। चार मठों के संतों को छोड़कर अन्य किसी को गुरु बनाना हिंदू संत धारा के अंतर्गत नहीं आता। आदिशंकराचार्यजी ने जो चारपीठ स्थापित किये, उनके काल निर्धारण में उत्थापित की गई भ्रांतियाँ––

- उत्तर दिशा में बदरिकाश्रममें ज्योतिर्पीठ, स्थापना–युधिष्ठिर संवत् 2641–2645
- पश्चिम में द्वारिकाशारदा पीठ– यु.सं. 2648
- दक्षिण शृंगेरीपीठ– यु.सं. 2648
- पूर्व दिशा जगन्नाथपुरीगोवर्द्धन पीठ, यु.सं. 2655

शंकराचार्य जी ने इन मठों की स्थापना के साथ–साथ उनके मठाधीशों की भी नियुक्ति की, जो बाद में स्वयं शंकराचार्य कहे जाते हैं। जो व्यक्ति किसी भी मठ के अंतर्गत संन्यास लेता हैं वह दसनामी संप्रदाय में से किसी एक सम्प्रदाय पद्धति की साधना करता है। ये चार मठ निम्न हैं–

श्रृंगेरी मठ : श्रृंगेरी मठ भारत के दक्षिण में चिकमंगलुर में स्थित है। श्रृंगेरी मठ के अन्तर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले संन्यासियों के नाम के बाद सरस्वती, भारती तथा पुरी सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उक्त संप्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य श्अहं ब्रह्मास्मिश है तथा मठ के अन्तर्गत 'यजुर्वेद' को रखा गया है। इस मठ के प्रथम मठाधीश आचार्य सुरेश्वरजी थे,

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

जिनका पूर्व में नाम मण्डन मिश्र था।वर्तमान में स्वामी भारती कृष्णतीर्थ इसके 36वें मठाधीश हैं।

गोवर्धन मठ : गोवर्धन मठ भारत के पूर्वी भाग में ओडिशा राज्य के जगन्नाथ पुरी में स्थित है। गोवर्धन मठ के अंतर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले सन्यासियों के नाम के बाद 'वन' व 'आरण्य' सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उक्त संप्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य है 'प्रज्ञानं ब्रह्म' तथा इस मठ के अंतर्गत 'ऋग्वेद' को रखा गया है। इस मठ के प्रथम मठाधीश आदि शंकराचार्य के प्रथम शिष्य पद्मपाद चार्य हुए। वर्तमान में निश्चलानन्द सरस्वती इस मठ के 145वें मठाधीश हैं।

शारदा मठ : शारदा (कालिका) मठ गुजरात में द्वारकाधाम में स्थित है। शारदा मठ के अंतर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले सन्यासियों के नाम के बाद श्तीर्थश और श्आश्रमश सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है, जिससे उन्हें उक्त संप्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य है 'तत्त्वमसि' तथा इसके अंतर्गत 'सामवेद' को रखा गया है। शारदा मठ के प्रथम मठाधीश हस्तामलक (पृथ्वीधर) थे। हस्तामलक शंकराचार्य जी के प्रमुख चार शिष्यों में से एक थे। हस्तामलक आदि शंकराचार्य के प्रमुख चार शिष्यों में से एक थे। वर्तमान में स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती इसके 79वें मठाधीश हैं।

ज्योतिर्मठ : उत्तरांचल के बद्रीनाथ में स्थित है ज्योतिर्मठ। ज्योतिर्मठ के अंतर्गत दीक्षा प्राप्त करने वाले संन्यासियों के नाम के बाद 'गिरि', 'पर्वत' एवं 'सागर' सम्प्रदाय नाम विशेषण लगाया जाता है जिससे उन्हें उक्त संप्रदाय का संन्यासी माना जाता है। इस मठ का महावाक्य 'अयमात्मा ब्रह्म' है। इस मठ के अंतर्गत अथर्ववेद को रखा गया है। ज्योतिर्मठ के प्रथम मठाधीश त्रोटकाचार्य,, बनाए गए थे।वर्तमान में स्वामी माधवाश्रम जी इसके 44वें मठाधीश हैं।

उक्त मठों तथा इनके अधीन उपमठों के अंतर्गत संन्यस्त संतों को गुरु बनाना या उनसे दीक्षा लेना ही हिंदू धर्म के अंतर्गत माना जाता है। यही हिंदुओं की संत धारा मानी गई है।

आदि शंकराचार्य जी की प्रमुख रचनाएँ : आदि शंकराचार्य ने अपने 11–12 वर्ष की आयु में ही संस्कृत भाषा में 250 से ज्यादा ग्रन्थों की रचना की थी। ब्रह्मसूत्रभाष्य, उपनिषद् (ईशोपनिषद, केनोपनिषद, कठोपनिषद, प्रश्नोपनिषद, मुण्डकोपनिषद, माण्डुक्यपनिषद, एतरेय, तैतरीय, छन्दोग्य, बृहदार्ण्यक, नृसिहपूर्वतापनिय, श्वेताश्वर इत्यादि) भाष्य, गीताभाष्य, विष्णुसहस्त्रनामभाष्य, सनत्सुजातीयभाष्य, हस्तामलकभाष्य, ललितात्रिशतीभाष्य, विविकचूडामणि, प्रबोधसुधाकर, उपदेशसाहस्त्री, अपरोक्षानुभूति, शतश्लोकी, दशश्लोकी, सर्ववेदान्तसिद्धांतसारसंग्रह, वाक्सुधा, पंचीकरण, प्रपंचसारतन्त्र, आत्मबोध, मनिषपंचक, आनन्दलहरीस्त्रोत्र इत्यादि उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं जिसमें से एक विवेकचूडामणि है। विवेकचूडामणि ग्रंथ का आरम्भ निम्न श्लोक के साथ होता है–

मायाकल्पिततुच्छसंसृतिलसत्प्रज्ञैरवेद्यं
जगत्सृष्टि स्थित्यवसानतोप्यनुमितं सर्वाश्रयं सर्वगम्।
इन्दोपेन्द्रमरुद्रणप्रमृतिमिर्नित्यं त्वदब्जेर्चितं
वन्देशेष फलप्रदं श्रुतिशिरोवाक्यैकवेद्यं शिवम्ष्।।

इस मंगलाचरण के बाद शंकराचार्य जी अपने गुरु को प्रणाम करते हैं और आगे मनुष्य जन्म मिलना ही कितना दुर्लभ है, उसमें भी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति और वैदिक धर्मपरायण होना कितना कठिन, उसमें भी इसमें विद्वान होना कितना कठिन है और अन्त में सबकुछ होते हुए भी ब्रह्म को जानना और मोक्ष की प्राप्ति करना कितना दुर्लभ कार्य है इस बात का निरुपण किया गया है। सुप्रसिद्ध श्लोक वाक्य ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः (ब्रह्म सत्य है, जीवन मिथ्या है, जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है) इस ग्रन्थ का ही एक भाग है।

पाठालोचन

डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल (सं.)

आईएसबीएन : 978-81-929060-7-2

संस्करण : 2019, मूल्य : 1100/-

लेख

अमित कुमार पाण्डेय
शोध छात्र, शिक्षा शास्त्र
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थ नगर, उत्तर प्रदेश
amitkumarpandey25@gmail.com

भारतीय ज्ञान–परंपराओं पर शोध कार्य को बढ़ावा देने की आवश्यकता

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

(श्रीमद्भगवद्गीता, 4.38)

इस मानव लोक में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला कोई दूसरा साधन नहीं है। जिसका योग भली–भांति सिद्ध हो गया है वही कर्मयोगी, उस तत्वज्ञान को अवश्य ही स्वयं अपने आप प्राप्त कर लेता है।

वैदिक काल से शुरू होने वाली भारतीय सभ्यता ने एक ज्ञानपरक सभ्यता के रूप रूप में अपने आप को प्रस्तुत किया है। मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्यों को पता लगाने की दिशा में अनंत काल से ही भारतीय मनीषी जिज्ञासु रहे हैंद्य विभिन्न कालखंडों में भारतीय बौद्धिक परंपरा निर्बाध रूप से प्रवाहित होती रही है।

वेद–वेदांत, दर्शन, आयुर्वेद, सौंदर्यशास्त्र, खगोलशास्त्र, ज्योतिष, योग, वास्तु, गणित, भाषा विज्ञान, चिकित्साशास्त्र और इस प्रकार की अन्य विधाओं में भारतीय ज्ञान की स्पष्ट झलक दिखाई देती हैद्य भारतीय मनीषियों ने अज्ञानता को बंधन का कारण माना है। भारतीय दर्शन में मोक्ष को मुक्ति का साधन माना गया है। विद्या वही है, जो हमें मुक्ति प्रदान करें। *'सा विद्या या विमुक्तये'* अज्ञानता ही बंधन है। अतः हमें अपने अज्ञानता को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। भारतीय वांग्मय ज्ञान की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि, जो हमारे राष्ट्र के ज्ञानीजनों तथा वीरों का हनन करते हैं, हम उनका मर्दन करने वाले बने। अथर्ववेद 3 19 13 उपनिषद कहते हैं कि, *'विद्ययामृतमश्नुते'* अर्थात विद्या से अमृत मिलता है। पतंजलि कहते हैं कि *'ज्योतिर्वज ज्ञानानि भवति'* अर्थात ज्ञान ज्योति की तरह होता है। यह सभी कथन इस बात को प्रमाणित करते हैं, कि प्रत्यक्ष अनुमान या आगम से जब हमें ज्ञान मिलता है तभी अज्ञात पदार्थ प्रकाश में आता है। यही ज्ञान है। यहां मैं भारतीय ज्ञान की श्रेष्ठता को एक छोटे से उदाहरण द्वारा प्रस्तुत करना चाहूंगा, सदियों से हमारे यहां प्रयुक्त होने वाला दातुन को, आज अमेरिका में ऑर्गेनिक टूथब्रश कहकर बेचा जा रहा है। इसके लिए कई डालर कीमत वसूली जा रही है। हमारे यहां तो दातुन का उपहास उड़ा कर, इसका इस्तेमाल करने वाले को पुरातनपंथी कहा जाता था। ऐसे कई उदाहरण भरे पड़े हैं, आपको मिलेंगे जिन पर हमारा उपहास उड़ाया जाता था, आज पश्चिम उन्ही के पीछे दौड़ रहा है और उन्हें अपना रहा है।

आज से लगभग दो सौ से ढाई सौ वर्ष पूर्व जब पश्चिम में ज्ञान का अभ्युदय होना शुरू हुआ, वैज्ञानिक क्रांति का दौर आया तब दुनिया शायद, इसके अभूतपूर्व होने का जश्न मनाने लगी। उनकी यह धारणा थी कि ये खोजेंध्अविष्कार नए हैं। इसी भ्रमपूर्ण धारणा के कारण भारतवर्ष को अर्द्धसभ्य कहा, वेदों को गड़ेरियों का गीत कहा गयाद्य भारतीय सभ्यता में सभी को अपने में समाहित करने का गुण रहा है। इसीलिए विभिन्न काल खंडों में आक्रांताओं द्वारा दिए गए आघात से स्वयं को अक्षुण्ण बनाए रख सकी है। विदेशी आक्रांताओं द्वारा नष्ट होने पर भी, ज्ञान सुरक्षित रहा है।

प्राचीन भारतीय ज्ञान पर शोध कार्य न केवल भारतीयों वरन अखंड विश्व के लिए महत्वपूर्ण सूत्रों को उद्घाटित करने वाला हो

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

सकता है। इससे संपूर्ण दुनिया के वर्तमान विज्ञान को और अधिक समुन्नत 5 जा सकता है। प्राचीन ज्ञानधविज्ञान में शोध कार्य को बढ़ावा देने से हमारा ज्ञान और अधिक तीव्रता के साथ प्रवाहित हो सकता है। इसे आधुनिक बनाया जा सकता है, और संपूर्ण दुनिया को इस ज्ञान से परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक बनाया जा सकता है, जिससे कि वे अपनी कूपमंडूकता से बाहर निकल सकें। पश्चिम की इस धारणा को तोड़ने में मदद मिल सकेगी कि, भारतीय ज्ञान–विज्ञान अंधविश्वास से परिपूर्ण है। समर्थ भारत के निर्माण के लिए भी यह आवश्यक है कि, भारतीय ज्ञान–परंपराओं पर शोध कार्य को बढ़ावा दिया जाए और वर्तमान की आवश्यकताओं की पृष्ठभूमि में इनकी वैज्ञानिकता को प्रमाणित किया जाए।

- **दर्शन–** भारतीय मनीषियों ने आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही दर्शनों में अभूतपूर्व प्रगति की। महर्षि वेदव्यास के वेदांत और कपिल मुनि के सांख्य दर्शन ने ज्ञान के पुँज को प्रस्तुत किया।
- **ज्योतिष–** प्राचीन भारतीय मनीषियों ने ही सर्वप्रथम पंचांगों की रचना की, राशिचक्र बनाया, पृथ्वी की दूरी का निर्धारण किया, ग्रहों की गति का पता लगाया, सूर्य ग्रहण और चंद्र ग्रहण का अध्ययन प्रस्तुत किया।
- **गणित–** दशमलव प्रणाली, बीजगणित, रेखा गणित, त्रिकोणमिति समेत नाप–जोख के पैमानों का आविष्कार किया गया। जो यूरोपियन देशों के लिए आज तक कौतूहल का विषय है। यज्ञ कुंडों, हवन मण्डपों के लिए त्रिभुज, व्यास और वृत्त इत्यादि के क्षेत्रफल के महत्वपूर्ण सूत्रों का प्रतिपादन हुआ। आर्यभट्ट प्रथम, भास्कर प्रथम, ब्रह्मगुप्त, महावीर आर्यभट्ट द्वितीय, श्रीहरि, भास्कर द्वितीय इत्यादि के कृतित्व शोध की विषय वस्तु बन सकते हैं। इनके द्वारा प्रतिपादित सूत्रों को नवीनता दी जा सकती हैं।
- **भौतिकी–** भौतिकी का महत्वपूर्ण सूत्र, समस्त विश्व एक ही तत्व से रचा गया है और उसे नियमों के अध्ययन तथा अनुभव द्वारा जाना जा सकता है, इस बात को प्रतिपादित भारतीय मनीषियों ने ही किया। आर्कमिडीज को अपने उत्प्लावन बल के सिद्धांत के लिए आधार भारतीय भौतिकी से ही मिला।

सूर्य सिद्धांत की गणना इस बात का परिचायक है कि, भारतीय भाप की शक्ति से पहले ही परिचित थे।

- **रसायन विज्ञान–** पानी की बनावट, गंधक, शोरा, नमक का परिचय भारतीयों को पहले से ही था। विभिन्न धातुओं के रासायनिक स्वरूपों का परिवर्तन भारतीय पहले से जानते थे।
- **औषधिशास्त्र–** चरक और सुश्रुत ने भारतीय चिकित्सा विज्ञान को सृष्टि के समक्ष आधार रूप में प्रस्तुत किया है। विभिन्न औषधियों, शल्यक्रिया से भारतीय अपने सभ्यता के आरंभिक दौर से ही परिचित थे। अरब और यूरोपीय चिकित्सा ग्रंथों में आधार सामग्री भारतीय है। अथर्ववेद विश्व चिकित्सा के क्षेत्र में सबसे प्राचीन ग्रंथ है। सुश्रुत संहिता और चरक संहिता विपुल ज्ञान के स्रोत हैं।
- **व्याकरण–** दुनिया की सबसे प्राचीन वैज्ञानिक भाषा के रूप में भारतीयों ने संस्कृत को विकसित किया, जिसे आज के कंप्यूटर के लिए प्रयोग किए जाने की बात कही जा रही है। समस्त पूर्वी और यूरोपीय भाषा विज्ञान तथा व्याकरण शास्त्र का आधार भारतीय भाषाएँ ही है।
- **काव्य परंपरा–** कविता की विभिन्न प्रणालियों में भारतीय काव्यशास्त्र ने अपनी विलक्षणता प्रस्तुत की है। शकुंतला, उत्तररामचरित, सारंग, मेघदूत की तुलना किसी पश्चिमी काव्य पद्धति के बस की बात नही है। संगीत ज्ञान विज्ञान के सात सुरों की रचना भारतीयों ने ही की थी। बहुसंख्यक राग–रागनीयों को भारतीयों ने विकसित किया है।
- **वास्तु विज्ञान–** भारत का भवन निर्माण एवं वास्तु शास्त्र ऐसे अद्‌भुत, अकल्पनीय गुंबज और शिखरों, शीलाओ कोट, दुर्ग से परिपूर्ण है जो आज के इंजीनियरों के लिए अत्यंत कौतूहल है। प्राचीन भारतीय वास्तुकला के नमूनों को आज देखने पर हम अपने दांतो तले उंगली दबाने को मजबूर हो जाते हैं कि, कैसे–कैसे चमत्कारिक ढंग से इनका निर्माण किया गया है।

हमने भारतीय ज्ञान परंपरा को मैक्स मूलर और लार्ड मैकाले के आधार पर ही आज तक जानने और समझने की कोशिश की है, यही हमारी सबसे बड़ी गलती है। वास्तव में यह दोनों भारतीयता के सबसे बड़े अपराधी हैं। इन्होंने अपने कार्यों द्वारा भारतीय सभ्यता और संस्कृ

ति में अत्यंत दूरगामी प्रभाव डाला है। मैक्स मूलर ने अपनी लेखनी की चतुराई में वैदिक ज्ञान को छिपाकर यूरोपीय ज्ञान को संदर्भित किया तथा मैकाले ने अपने पूर्वाग्रहों और शासकीय हस्तक्षेप के माध्यम से भारतीय सभ्यता और संस्कृति को पद–आक्रांत करने में तनिक भी संकोच नहीं खाई। अब नई पीढ़ी का यह उत्तर दायित्व बनता है कि अपने ज्ञान विज्ञान को पहचानने की कोशिश करें, अपनी जड़ों को पहचाने। अपनी समस्याओं की तह तक पहुंचने में प्राचीन ज्ञान परंपरा पर शोध कार्य को बढ़ावा देना अनिवार्य बन जाता है। दैनिक जीवन की व्यवहारिक समस्याओं, व्याधियों, पर्यावरण ह्रास, अशांति इत्यादि को अपनी प्राचीन विलक्षण ज्ञान परंपरा द्वारा समझकर भारत को पुनः विश्वगुरु बनाया जा सकता है। हम भारतीयों के लिए सबसे अधिक खेद की बात यह है कि, भारतीय ज्ञान में मिलावट इस कदर हावी है कि, संभवतः भारत दुनिया का पहला ऐसा देश है, जिसके आधिकारिक इतिहास की शुरुआत इसी बात से होती है कि, भारत में रहने वाले, यहां के मूल निवासी नहीं हैं, ये सब विदेशी हैं। यह विदेश से आए हैं। वामपंथी इतिहासकारों के दुष्चक्र ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि, आर्य बाहरी हैं, लेकिन कहां से आए हैं इस बात पर उनमें इतनी मत विभिन्नता है जिसका वर्णन हास्यास्पद होगा।

ऋग्वेद यूनेस्को की विरासत सूची में सम्मिलित हो सकता है, लेकिन भारतीय पाठशाला के शिक्षण में इस पर एक लाइन नहीं मिल सकती है। अब समय आ गया है कि, हम अपने को सत्य–सनातन, सर्वकालिक और सार्वभौमिक सिद्ध करने के लिए निरोगी, सुखी जीवन, पृथ्वी–पर्यावरण की रक्षा, विश्व–शांति तथा मानव कल्याण के भाव से भारतीय ज्ञान पर शोध कार्यों के माध्यम से इसके सर्वमंगलास्वरूप का दर्शन करें।

संदर्भ ग्रंथ :

1– थापर, रोमिला, भारत का इतिहास (1000 से 1500ई) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

2– दामोदरन , के– भारतीय चिंतन परंपरा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2001

3– डॉक्टर धर्मपाल, रमणीय वृक्ष

4– विद्यावाचस्पति, डॉक्टर आशापुरी, भारतीय मिथक कोष, नेशनल पब्लिशिंग नई दिल्ली

5– अखंड ज्योति 1952

सत्यजीत कुमार
शोधार्थी, असम विश्वविद्यालय, सिलचर
satyajit.aus@gmail.com

हिन्दुस्तान में सिनेमा की शुरुआत

सिनेमा आधुनिक समय की एक ऐसी सशक्त विधा है जिसने अपने विकास के कुछ ही समय में न सिर्फ मनोरंजन जगत में सर्वाधिक प्रमुख स्थान अर्जित कर लिया बल्कि सामान्य मनुष्यों के जीवन को भी विभिन्न रूपों में छूने और प्रभावित करने लगी। यह विधा कला की महानतम उपलब्धियों में से एक इस लिहाज से भी है कि इसमें कई कलाओं का संगम होता है और सहृदय उनके समेकित रूप का आनंद एक साथ ले सकते हैं। साहित्यकारों ने इस विधा के इस सामर्थ्य को गहरे अनुभव किया है और यही कारण है कि दुनिया भर में अनेक साहित्यकारों ने सिनेमा की दुनिया में भी समुचित शिरकत की। मलयालम के प्रतिष्ठित साहित्यकार एम. टी. वासुदेवन नायर का कहना है कि "वर्तमान युग में जनमानस को प्रभावित करने का शक्तिशाली माध्यम फिल्म ही है। ...जैसे संगीतकार अपने संगीत के माध्यम से, एक उपन्यासकार अपने उपन्यास के माध्यम से अपनी योग्यता साबित करता है, ठीक उसी तरह एक फिल्म निर्माता भी। फिल्म में साहित्य, नाटक, अभिनय, संगीत, छायाकंन, चित्रकला और शिल्पकला– इन सात बुनियादी कलाओं का संगम होता है। इन सब की आत्मा का समावेश फिल्म में होता है।"[1]

जिस तरह उपन्यास विधा का जन्म यूरोप में हुआ लेकिन हिन्दुस्तान में इसने अपने आगमन के कुछ ही समय पश्चात एक बड़ा मकाम हासिल कर लिया, ठीक वही कहानी सिनेमा की भी है। सिनेमा का विकास मूलतः यूरोप और अमेरिका में हुआ। अमेरिका, फ्रांस और ब्रिटेन जैसे देशों ने इसका प्रारंभिक स्वरूप तैयार करने में महती भूमिका निभाई। हिन्दुस्तान में इस विधा की शुरुआत करने का श्रेय लुमिएर बन्धुओं और मेलिए को जाता है। लुमिएर बन्धुओं ने अपनी पहली फिल्म का प्रदर्शन दिसम्बर 1895 ई. में पेरिस में किया था। इसके कुछ ही समय पश्चात अप्रैल 1896 ई. में उन्होंने अमेरिका में भी अपनी फिल्मों का प्रदर्शन किया। इसी क्रम में 19 मई 1896 ई. को रूस के सेंट पीटर्सबर्ग शहर में भी फिल्म प्रदर्शन का आयोजन किया गया। अपने इन प्रारंभिक प्रदर्शनों से ही इन फिल्मों ने हलचल मचा दी। अनिल भार्गव इस संदर्भ में बताते हैं कि "जून माह में रूस के नोवोगोर्ट मेले में लुमिएर बंधुओं की फिल्मों का प्रदर्शन किया गया। यहाँ एक स्थानीय समाचार पत्र के रिपोर्टर के रूप में मैक्सिम गोर्की ने इन फिल्मों को देखा। अगले दिन गोर्की ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा था– "कल रात मैं छायाओं के साम्राज्य में था और मैंने लुमिएर के सिनेमैटोग्राफ द्वारा प्रदर्शित चलचित्र देखे। इन बिम्बों का असाधारण प्रभाव विलक्षण, जटिल और बहुआयामी है। मुझे नहीं लगता कि मैं इन प्रभाव के सभी पहलुओं की स्पष्ट व्याख्या करने में समर्थ हो पाऊँगा...।"[2] कहना न होगा कि इस विधा का आगमन कितना प्रभावपूर्ण रहा होगा कि रूस के महानतम लेखकों में से एक मैक्सिम गोर्की इसे देखकर अचंभित थे। गोर्की ने इस विधा को लेकर परवर्ती दिनों में और भी बहुत सी गंभीर बातें कहीं जिसने सिनेमा के आलोचकों और दर्शकों को इसके प्रभावों–दुष्प्रभावों के बारे में गहराई से सोचने–विचारने के लिए प्रेरित किया। रूस में इन प्रदर्शनों के कुछ ही समय पश्चात 7 जुलाई 1896 ई. को लुमिएर बन्धुओं ने बंबई के वाटसंस होटल में छह लघु फिल्मों का प्रदर्शन किया। सिनेमैटोग्राफी के जरिए भारतीय दर्शकों को पहली बार चलने–फिरने वाली तस्वीरें देखने का मौका मिला। वाटसंस होटल में आयोजित प्रथम प्रदशर्न को देखने के बाद टाइम्स ऑफ इंडिया ने कुछ इस प्रकार अपनी टिप्पणी दी– "एक शक्तिशाली लालटेन की मदद से वास्तविक जीवन से मिलते–जुलते अनेक दृश्य परदे पर दिखाये गए, इन दृश्यों को

दर्शकों ने बेहद पसंद किया।"[3] लुमिएर बन्धुओं द्वारा हिन्दुस्तान में दिखायी गई छह फिल्मों का ब्यौरा कुछ इस प्रकार है– पहले दृश्य में कारखाने से छूटते हुए मजदूर और गाड़ी पर सवार एक महिला है। दूसरे दृश्य में एक बच्चा और उसके माता–पिता का दृश्य है जिसमें पिता अपने बच्चे को खाना खिलाता है। तीसरे दृश्य में एक माली बाग में पाइप से पानी देता है और एक शरारती बच्चा उस पाइप पर पैर रखता है जिससे पाइप से पानी आना बन्द हो जाता है। लेकिन जब माली पाइप को मुँह के पास लाता है तो बच्चा पाइप से पैर हटा देता है। चौथे दृश्य में तीन व्यक्ति ताश खेलते दिखाए गए हैं। पाँचवे दृश्य में एक रेलगाड़ी को प्लेटफोर्म पर आते दिखाया गया है। छठे दृश्य में कुछ लोग मिलकर एक दीवार को गिराते हैं लेकिन गिरा हुआ दीवार अचानक अपने आप खड़ा हो जाता है। इस तरह वाटसंस होटल में फिल्म आयोजन के साथ ही भारत, अमेरिका और रूस के बाद विश्व का तृतीय तथा एशिया का प्रथम देश हो गया जहाँ सिनेमा के आविष्कार के एक वर्ष के भीतर ही इसका प्रदर्शन शुरू हुआ।[4] लुमिएर बन्धुओं ने इसके कुछ ही दिनों के बाद बंबई के ही नॉवेल्टी थियेटर में कुछ फिल्मों को प्रदर्शित करवाया। एक दिन में चौबीस फिल्मों को दिखाया गया और क्रमशः यहाँ से धीरे–धीरे फिल्मों का विस्तार होने लगा।

फिल्म निर्माण में जहाँ लुमिएर बन्धुओं ने यथार्थ छवियों का प्रयोग किया वहीं दूसरी ओर इसी दौर में फ्रांस के ही प्रसिद्ध फिल्मकार मेलिये ने जादूगरी और चमत्कार से परिपूर्ण फिल्मों का निर्माण किया। मेलिए ने सैकड़ों प्रसिद्ध फिल्में बनाईं और इस विधा के आरंभ के कुछ ही दिनों के भीतर इसके अपार सामर्थ्य को लोगों के समक्ष उद्घाटित कर दिया। मेलिए की सर्वाधिक चर्चित फिल्मों में ए ट्रिप टू द मून, द इम्पॉसिबल वोयाज, द वैनिशिंग लेडी, द ऐस्ट्रोनॉमर्स ड्रीम, द हॉन्टेड कासल, किंगडम ऑफ फेयरीज, सिंड्रेला, द मैन विथ द रबर हेड, जोन ऑफ आर्क, ए टेरिबल नाइट, द मैजीशियन, ए नाइटमेयर, द डेविल इन ए कॉन्वेंट, रॉबिन्सन क्रूसो, ए मिस्टरियस पोर्ट्रेट, अंडर द सीज आदि का नाम लिया जा सकता है। ए ट्रिप टू द मून ने ऐतिहासिक ख्याति अर्जित की थी और इसमें विभिन्न किस्म के चमत्कार दिखाए गए थे। इस फिल्म का एक दृश्य बहुत ही लोकप्रिय हुआ जिसमें चाँद की आंख में जाकर पृथ्वी का यान धँस

जाता है। आज भी फिल्मों को चाहने वाले इस दृश्य को और इस फिल्म को बड़े चाव से याद करते हैं। इस तरह सिनेमा के आरंभ के साथ ही इस विधा का न सिर्फ बड़े पैमाने पर प्रसार हो गया बल्कि इसके संदर्भ में भिन्न–भिन्न दृष्टियों का विकास होने लगा। लुमिएर बन्धुओं की बदौलत हिन्दुस्तान में फिल्मों का जो प्रचार–प्रसार शुरू हुआ था उसे शीघ्र ही कई भारतीयों ने आगे की दिशा दिखाई।

1897 ई. में हरिशचन्द्र सखाराम भाटवजेकर ने घटना आधारित दो लघु फिल्मों का निर्माण किया। पहली फिल्म बंबई के हेरिंग गार्डन में हुए एक कुश्ती पर केन्द्रित थी। दूसरी फिल्म सर्कस के बन्दरों के प्रशिक्षण पर बनाई गई थी। किसी घटना के आधार पर बनाई गई ये हिन्दुस्तान की पहली दो फिल्में थीं। यहीं से भारतीय फिल्मकारों की यात्रा शुरू होती है। 1897 ई. में ही हीरालाल सेन ने कलकत्ते में चलचित्र देखकर फिल्म बनाने का निश्चय किया था। रयाज हसन का कहना है कि "हीरालाल सेन एक भारतीय फोटोग्राफर थे। इन्हें भारत का पहला फिल्मकार कहा जाता है। भारत का पहला विज्ञापन और संभवतः राजनीतिक फिल्म बनाने का श्रेय उन्हें ही जाता है। 1917 ई. में लगी आग में इनकी सारी फिल्में जल गई।"[5] 1898 ई. तक हीरालाल सेन के कई छायाचित्र स्टिल फोटोग्राफी की विभिन्न अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं और प्रदर्शनियों में पुरस्कृत और सम्मानित हो चुके थे। 1902 ई. में 16 वर्ष की उम्र में हीरालाल सेन के एक फोटोग्राफ को सूर्यास्त दर्शाने वाले सर्वोत्तम फोटोग्राफ के लिए स्वर्ण पदक मिला था। 1898 ई. में हीरालाल सेन ने लंदन से एक फिल्म प्रोजेक्टर मंगाया और उसके माध्यम से वे बिहार, उड़िसा और बंगाल में घूम–घूम कर राजाओं–जमींदारों के परिवारों के यहाँ अपनी फिल्मों का आयोजन करने लगे। इससे उनकी अच्छी आय भी हो जाती थी। 1900 ई. में फ्रांस की पाथे कम्पनी के कई कैमरामैन अपने उपकरणों के साथ कलकत्ते पहुँचे और वहाँ के जन–जीवन के दृश्यों का फिल्माकांन करने लगे। इन्होंने हीरालाल सेन को भी एक कैमरा देकर गंगाघाट भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर लड़ती हुई मुर्गियों के दृश्य और चलते हुए लोगों की भीड़ के दृश्य का फिल्मांकन किया। इस काम से हीरालाल सेन को अनुभव अर्जित हुआ और बाद में उन्होंने खुद अपने लिए एक कैमरा खरीद लिया। वे हिन्दुस्तान के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पाथे कम्पनी से कैमरा खरीदा था।

बंगाली फिल्म के सुप्रसिद्ध अभिनेता प्रभाव मुखर्जी के अनुसार "सन् 1903 में सेन ने दो फिल्में बनाईं। ये दोनों फिल्में उस समय की विदेशी फिल्मों की तरह दस मिनट में ही समाप्त नहीं हो जाती थीं, बल्कि एक–एक घन्टे चलती थीं। दोनों में ही सिनेमा माध्यम के क्षेत्र में नये कलात्मक प्रयोग किए गये थे, जैसे, क्लोजअप शॉट, पैनिंग, टिल्ट आदि।"[6] प्रभाव मुखर्जी के अनुसार हीरालाल सेन 1904 ई. में अलीबाबा और चालीस चोर नामक फिल्म बनाई थी। यह फिल्म करीब दो घंटे की थी। हीरालाल सेन ने अपने जीवन में अन्य कई फिल्में भी बनाई थीं और कई नाटकों का भी फिल्मांकन किया था, लेकिन अफसोस कि भारतीय सिनेमा के इस महान जनक हीरालाल सेन की कोई भी फिल्म आज उपलब्ध नहीं है।

इसके बाद फिल्मों के क्षेत्र में अगला महत्वपूर्ण नाम जमशेदजी मदन का आता है। जमशेदजी मदन ने भारतीय फिल्म इंडस्ट्री को सही दिशा देने में बहुमूल्य योगदान दिया था। डॉ. टी शशिधरन का कहना है कि "जमशेदजी मदन विदेशी फिल्मों का वितरण करते थे। साथ ही वे कलकत्ता में एलफिन्सटन थियेट्रिकल कम्पनी चलाते थे। बाद में उन्होंने न्यू अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना भी की। वहाँ रंगमंच की दुनिया के कई सितारे काम करते थे। ये सितारे मंच और सिनेमा दोनों में काम करते थे। विदेशी फिल्मों में दर्शकों की दिलचस्पी खत्म होने पर मदन ने अपने नाटकों का फिल्मांकन शुरू किया"।[7] हीरालाल सेन और जमशेदजी मदन के बाद फिल्म क्षेत्र में अगला नाम आता है रामचन्द्र गोपाल तोरणे का। तोरणे का जन्म महाराष्ट्र में हुआ था। हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त करने के बाद तोरणे अजीविका की खोज में बंबई आ गये। यहाँ उन्हें ग्रीव्ज कॉटन इलेक्ट्रिकल कम्पनी में लिपिक की नौकरी मिली। तोरणे और उनके सहयोगी नारायण गोबिन्द चित्रे तथा आर. पी. टिपनिस ने साथ मिलकर 'भक्त पुंडलिक' नामक नाटक पर फिल्म बनाने का विचार किया। इस फिल्म को बनाने के लिए बोर्न ऐन्ड शेफर्ड कम्पनी से तकनीकी सहायता ली गई थी। इस कम्पनी की सहायता से जॉनसन नामक एक कैमरामैन तथा एक कैमरा उपलब्ध हुआ। 18 मई 1912 ई. में बंबई के कॉरोनेशन सिनेमैटोग्राफ में 'पुंडलिक' फिल्म रिलीज हुई। अनिल भार्गव का कहना है कि "अनेक इतिहासकार 1913 ई. में प्रदर्शित धुंडीराज गोविंद फाल्के की फिल्म 'राजा हरिशचन्द्र' के स्थान

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

पर आर. जी. तोरणे की 'पुंडलिक' को भारत की पहली कथा–फिल्म मानते है। उनका तर्क है कि यह एक कथा पर आधारित फिल्म थी जो राजा हरिश्चन्द्र से एक साल पहले जारी की जा चुकी थी।"[8] फिर भी 'पुंडलिक' के बारे में कहा जाता है कि यह भारत की पहली फीचर फिल्म इसलिए नहीं है क्योंकि यह फिल्म एक लोकप्रिय मराठी नाटक की रिकार्डिंग मात्र है और इस फिल्म का कैमरामैन जॉनसन एक ब्रिटिश नागरिक था। इसके साथ ही फिल्म की प्रोसेसिंग भी लंदन में की गई थी। 'पुंडलिक' के बारे में स्वयं तोरणे ने बताया है कि "पुंडलिक के निर्माण में उनका कोई विशेष योगदान नहीं था। दरअसल यह नाटक उन दिनों काफी लोकप्रिय था, अतरू चित्रे तथा टिपणिस नामक दो व्यक्ति मुम्बई की बोर्न एन्ड शेफर्ड कम्पनी के पास इस नाटक के फिल्मांकन का प्रस्ताव लेकर गये। इस कम्पनी ने कैमरे सहित एक अंग्रेज कैमरामैन उन्हें उपलब्ध करा दिया। इस नाटक को उस समय एक पार्क में फिल्मांकित करने की व्यवस्था की गई थी। तोरणे का काम वस्तुतरू समन्वय का था। वे प्रत्येक पात्र को नाम लेकर बुलाते। वह कैमरे के सम्मुख एक चिह्नित स्थान पर आकर खड़ा हो जाता और अपने संवाद बोलकर वहाँ से हट जाता। इस प्रकार पूरे नाटक का फिल्मांकन किया गया था।"[9]

इस तरह हम कह सकते हैं कि हिन्दुस्तान में प्रदर्शित शुरुआती फिल्मों से लेकर 1912 ई. में बनी पुंडलिक तक के दौर को हिन्दुस्तान में सिनेमा की पृष्ठभूमि की तरह देखा जा सकता है। यह एक रोचक दौर था जिसमें हिन्दुस्तानी व्यक्तियों ने अपनी जिजीविषा, कलात्मक रुचि और व्यापार क्षमता के आधार पर इस विधा का ज्ञान अर्जित किया, इसके लिए दर्शक तैयार किए, साधनों को जुटाया और अंततः फीचर–फिल्मों के निर्माण और प्रसार की बाधाओं को दूर किया।

संदर्भ :

1.टी. शशिधरन, सिनेमा के चार अध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 92
2.अनिल भार्गव, हिन्दी सिनेमाः सदी का सफर, सिने साहित्य प्रकाशन, जयपुर, 2013, पृष्ठ 15
3.वही, पृष्ठ 17
4.वही, पृष्ठ 17
5.वही, पृष्ठ 52
6.,biographyhindi-com/hiralal&sen&biography&in&hindi/-
7.टी. शशिधरन, सिनेमा के चार अध्याय, पृष्ठ 35
8.अनिल भार्गव, हिन्दी सिनेमाः सदी का सफर, पृष्ठ 35
9.वही, पृष्ठ 34

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

अल्पना नागर
412, रामाकृष्णा पुरम, सेक्टर 10, नई दिल्ली
alpanaalpu88@gmail.com

वैश्विक समाज और सांस्कृतिक परिवर्तन

किसी भी देश की संस्कृति उसमें निहित परम्पराओं के माध्यम से परिलक्षित होती है।परम्पराएं वो जो लंबे समय से चली आ रही हैं।किसी देश की धरा में उसकी जड़ें कितनी गहरी हैं इस बात का पता वहाँ के सांस्कृतिक मूल्यों से चलता है। अभी बात चल रही है वैश्विक समाज और उसमें आये सांस्कृतिक परिवर्तनों की। इसके लिए सबसे पहले इस बात को समझना होगा कि क्या संपूर्ण विश्व में बुनियादी बदलाव आ रहे हैं ? ऊपरी तौर पर ये तो बिल्कुल स्पष्ट है कि हमारे भौतिक पर्यावरण से लेकर जलवायु तक बेहिसाब परिवर्तन आये हैं,पर क्या सांस्कृतिक जीवन भी बदल रहा है! वैश्विक समाज के मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है या नहीं ? जवाब है, हाँ। हम तेजी से विश्व की संस्कृतियों को ग्रहण करते जा रहे हैं।विश्व के अन्य देशों में भी सांस्कृतिक बदलाव हुए हैं।हमारी शिक्षा पद्धति से लेकर गीत संगीत, नृत्य शैली, भाषा, जीवन मूल्य आदि सभी संस्कृति की

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

आत्मा कही जाने वाली मूलभूत विशेषताओं में विश्व की सांस्कृतिक गंध घुलती मिलती नजर आ रही है। इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि हमनें आधुनिक जीवन शैली और आचरण पश्चिम से ग्रहण किया है। हमारे जीवन में विद्यमान वर्तमान सुख सुविधाओं के लिए हम पश्चिम के आभारी हैं। निस्संदेह इक्कीसवीं सदी चकाचौंध से भरी गहनतम अँधेरी रात है, वो रात जिसे हम तेज रोशनी के कारण देख नहीं पा रहे।हमें सुख सुविधाएं मिली। हमारी जीवन शैली में गुणात्मक परिवर्तन हुए लेकिन हम सुविधाओं के गुलाम होते चले गए। कई बार लगता है हम सुविधाएं नहीं भोग रहे बल्कि सुविधाएं हमें भोग रही है! ये बात विचारणीय है,आज हमारे पास इतनी अधिक सुविधाएं एकत्रित हो गई हैं कि उन्हें भोगने के लिए न तो वो आनंद ही शेष रहा है और न ही समय।अभी कुछ ही दशक पहले की बात है जब आर्थिक रूप से हर नागरिक उतना अधिक समृद्ध नहीं था जितना आज है लेकिन हमारी आंतरिक खुशी का स्तर समृद्ध था। आज स्थिति बदल गई है। ये वैश्विक सांस्कृतिक परिवर्तन का ही परिणाम है। आज हम भूल गए हैं कि बीसवीं सदी में कोई विवेकानंद नामक युवा विचारक थे जिन्होंने न केवल भारत अपितु संपूर्ण विश्व में हमारे प्राचीन मूल्यों व सांस्कृतिक विरासत की ध्वजा फहराई थी। वो मूल्य जिनके लिए आज भी विश्व भारत को सम्मान भरी दृष्टि से देखता है। ये विडंबना ही है कि आज संपूर्ण विश्व में हमारे प्राचीन मूल्यों को पूरे हृदय के साथ अपनाया जा रहा है,हमारी सांस्कृतिक धरोहर वेद, पुराणों एवं अन्य ग्रंथों का वृहत् स्तर पर अध्ययन किया जा रहा है और हम पश्चिम की ओर भाग रहे हैं। खुलेआम मूल्यों का अवमूल्यन कर रहे हैं। मसलन वर्तमान में लिव इन रिलेशनशिप का चलन चल रहा है, जो न केवल हमारे विवाह संस्कार को चुनौती है अपितु रिश्तों में आयी दरार का भी मुख्य कारक बनता जा रहा है। इससे विवाहेत्तर संबंधों को भी खुली छूट मिली है। निश्चित रूप से ये हमारे जीवन मूल्य नहीं हैं वरन उनपर कुठाराघात है। इसके अलावा समलैंगिक विवाह भी परिवर्तित वैश्विक संस्कृति का ही परिणाम है। संयुक्त परिवारों का बिखराव और वृद्धों का तिरस्कार इसी सांस्कृतिक परिवर्तन से संबद्ध है।महानगरीय फ्लैट संस्कृति ने भावनाएं भी 'फ्लैट' कर दी हैं। समाज व्यक्ति केंद्रित होता जा रहा है। सामाजिकता वन्य जीवों की तरह दुर्लभ होती जा रही है। वर्तमान में विश्वव्यापी महामारी नें इस नए

'ट्रेंड' पर अपनी मुहर भी लगा दी। अब व्यक्ति और भी अधिक आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। संपूर्ण विश्व डिजिटल होता जा रहा है। इंटरनेट सेवा नें लोगों के आचार विचारों में व्यापक परिवर्तन किया है। अब विश्व के किसी भी कोने में घटने वाली घटना से आप तुरंत रूबरू हो सकते हैं, विश्व और आप में महज उँगली भर का फासला रह गया है। सांस्कृतिक परिवर्तन में इंटरनेट सेवा नें काफी इजाफा किया है। कुछ दशक पूर्व तक मनोरंजन के साधन बेहद साधारण किन्तु अपने आप में विशेष थे। समाज में नौटंकी, सर्कस, रंगमंच, नुक्कड़ नाटक, ख्याल आदि के माध्यम से मनोरंजन होता था, लोग एक दूसरे से जुड़ते थे, प्रत्यक्ष रूप से आमने सामने मिलते थे। बच्चों में भी चौपड़ पासा, गिल्ली डंडा, छुपन छुपाई जैसे खेल प्रचलित थे जिनसे न केवल शरीर स्वस्थ रहता था, अपितु मानसिक स्वास्थ्य भी दुरुस्त रहता था। टीवी पर भी इक्के दुक्के कार्टून या बालसुलभ कार्यक्रम होते थे, जिन्हें देखने के लिए बच्चों में एक अलग ही उत्साह होता था, लेकिन चूंकि अब सांस्कृतिक परिवर्तनों की बाढ़ आ गई है, इंटरनेट भी बेहिसाब मनोरंजन के कार्यक्रमों से भर गया है। टीवी चैनलों पर एक से एक दुनिया भर के बाल मनोरंजन के कार्यक्रम मौजूद हैं, लेकिन बच्चों का वो उत्साह कहाँ गया! वो आंतरिक प्रसन्नता कहाँ गई! आज का मनोरंजन मन का रंजन नहीं कर पाता उसमें एक कृत्रिमता आ गई है। सब कुछ इतना आसानी से उपलब्ध है कि कोई उत्साह, कोई प्रतीक्षा बची ही नहीं! अजीब बात है, हम सुविधाओं में जितना आगे आये, संतुष्टि में उतना ही पीछे होते गए! आज के बेहद व्यस्त माता पिता भी अपना समय बचाने के लिए बच्चे के हाथ में मोबाइल पकड़ा देते हैं। बच्चा भी एक मशीन की तरह उठते बैठते हर हाल में मोबाइल या इंटरनेट पर कोई खेल चाहता है।

वैश्विक आर्थिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण मानव जाति नें विकास अवश्य किया है, लेकिन उसके लिए बहुत बड़ी कीमत भी चुकाई है। पश्चिम का अंधानुकरण करके अकूत सम्पदा एकत्रित कर ली, किन्तु फिर भी एक अरसे से आत्मा पर चिपकी हुई दरिद्रता से मुक्त नहीं हो पाए। हमने देखा कि पश्चिमी लोग मुक्त जीवन जीते हैं, उनकी जीवन शैली आरामदायक और वैभव से परिपूर्ण हैं, लेकिन ये नहीं देखा कि इसके पीछे कितने वर्षों की मेहनत और संघर्ष छुपा

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

है। आज हम देखते हैं कि स्टीव जॉब्स या मार्क जुकरबर्ग बाकी दुनिया से भिन्न क्यों हैं! उन्होंने वर्तमान युग की सारी परिभाषाएं ही बदल डाली। एक अकेला इंसान किस तरह पूरी सदी को अपनी परिधि में ले आता है! ऐसा कैसे संभव है! हम ये सब सोचते रह जाते हैं और वो कुछ नया कर गुजरते हैं।हम सफलता के पीछे भागते हैं, बिना ये परवाह किये कि जो कार्य हम करने जा रहे हैं वो कितना सार्थक है। सफल लोगों ने सफलता को अपना लक्ष्य नहीं बनाया, सच कहें तो उन्होंने परवाह ही नहीं की, उन्होंने संपत्ति बनाने का भी लक्ष्य दिमाग में नहीं रखा, और न ही संसार को बदल देना उनका मिशन रहा, जैसा कि हम सफलता की परिभाषाएं गढ़ते आये हैं उन्होंने कुछ भी वैसा नहीं किया। समाज के बने बनाये फ्रेम से बाहर आकर अपने मन की सुनी, उसके पीछे पीछे चलते गए वो भी पूरे आनंद के साथ, उन्होंने कुछ करने की ठानी,भीड़ से हटकर अपना सार्थक अस्तित्व खड़ा करने का प्रयास भर किया और सफलता खुद ही उनके पास चली आई। सांस्कृतिक परिवर्तन एक दिन का कार्य नहीं है। वर्षों की साधना है। अगर ये सकारात्मक सोच को लेकर की जाये तो दुनिया वैसी ही नजर आएगी,खूबसूरती से बदली हुई।

आज हम जिस राह पर खड़े हैं ,दुर्भाग्य से वहाँ से कोई राह नहीं निकलती।मानव अपने संघर्ष के आखिरी चरण में है।वो जिस तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहा है उसे देखकर यही लगता है कि मानव स्वयं अपना अस्तित्व मिटा देना चाहता है।किसी महान विचारक नें कहा भी है किष्अब तक दो विश्वयुद्ध हो चुके हैं लेकिन अगर तीसरा विश्वयुद्ध हुआ तो आगामी युद्ध पत्थरों से लड़े जाएंगे। समझदार को इशारा काफी है। तीसरा विश्वयुद्ध अगर हुआ तो इतना विनाशकारी होगा कि मानवता बचेगी ही नहीं। एक बार पुनः आदिम युग की उत्पत्ति होगी। अब यह मनुष्य पर निर्भर करता है कि वह अपना अस्तित्व बचाये रखना चाहता भी है या नहीं! यदि जवाब हाँ है तो जीवन शैली और व्यवस्था में वृहत स्तर पर परिवर्तन करने होंगे। हमें बुद्धिमता से साधन चयन करने होंगे, वो चयन ही मानव के अस्तित्व के दिन निर्धारित करेगा। अब तय यह करना है कि विकास किस हद तक आवश्यक है। विज्ञान की अंधाधुंध प्रगति आवश्यक है या उसका सार्थक उपयोग! सांस्कृतिक परिवर्तन निर्धारित करेंगे कि एक अकेले राष्ट्र का उत्थान आवश्यक है या समूची मानव

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

प्रजाति! लाभ जरुरी है या सामूहिक हित। वर्तमान में सारा विश्व एक अजीब से झंझावात से गुजर रहा है। महामारी के रूप में हमारी आधुनिक जीवन शैली हमें ही डस रही है। कयास लगाये जा रहे हैं कि इस विश्वव्यापी विनाश के पीछे किसी राष्ट्र की सोची–समझी साजिश है, महामारी एक तरह का जैविक हथियार बना कर फैलाई गई है। ये अभी शोध का विषय है। आरोप–प्रत्यारोप साबित होने तक कोई भी अनुमान व्यर्थ हैं। लेकिन इस विषय में सोचकर ही रूह कांप जाती है, कहीं सचमुच इस तरह के युद्ध होने लगे तो क्या शेष बचेगा! हर राष्ट्र नें अपनी सुरक्षा के लिए इस तरह के जैविक और रासायनिक हथियार ईजाद किये हुए हैं। खैर,सारी दुनिया के विचारक और प्रबुद्ध वर्ग इसी प्रयास में लगे हुए हैं कि ऐसी नौबत न आये। इसीलिए सांस्कृतिक परिवर्तनों को सकारात्मक दिशा देने के प्रयास किये जा रहे हैं।

हमें डर और हिचक के साए से दूर रहकर नए प्रतिमान रचने होंगे।सार्थकता को अपना संगी बनाना होगा। हमें पश्चिम का अंध भक्त बनने से बचना होगा। वहाँ से बहुत सी अच्छी बातें सीखी जा सकती हैं। किसी भी कार्य के प्रति प्राणांतक लगन व एकाग्रता के साथ जुट जाना हमें पश्चिम से सीखना होगा। हमें व्यर्थ के जड़ तत्वों से स्वयं को मुक्त करना होगा। प्राचीन भारत के दर्शन और जीवन मूल्यों को एक बार पुनः रोशनी में लाना होगा उन्हें समुचित स्थान देना होगा। आधुनिक होना बुरा नहीं है, लेकिन आधुनिकता मूल्यवान और सार्थक होनी चाहिए। सभ्यता के जिस चरण में हम रह रहे हैं उसे एक अरसे पहले गाँधीजी ने मशीनी सभ्यता का नाम दिया था। पुरातन ग्रंथो में जिस युग की 'कलयुग' नाम से कल्पना की गई थी वो अपने अद्यतन रूप में हमारे सामने है। मानव सभ्यता द्वारा किये जा रहे उपभोग और विकास की लंबी यात्रा अब उस चरण में पहुँच चुकी है, जहाँ से उसका संघर्ष किसी व्यक्ति, विचार या समाज से नहीं रह गया है, अपितु अब उसकी सीढ़ी टक्कर स्वयं प्रकृति से है। ये दुःखद है कि अब तक मानव सभ्यता की विकास यात्रा को मनुष्य और प्रकृति के बीच संघर्ष से देखा गया है, जिसमें मनुष्य नें प्रकृति पर विजय पाकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की। आदिम युग की मानव सभ्यता इतिहास बन चुकी है, प्रकृति से उसका संघर्ष उसके स्व अस्तित्व की रक्षा के लिए अनिवार्य था, लेकिन आज जब आदिम युग

के पन्ने पलट चुके हैं। इंसान कई युग आगे निकल आया है तब भी उसके स्वयं के आत्मघाती कदमों के कारण उसके अस्तित्व की रक्षा की अनिवार्यता महसूस की जा रही है। मनुष्य का प्रकृति से कोई संघर्ष नहीं हो सकता। मनुष्य और प्रकृति के बीच संघर्ष हो भी नहीं सकता। इंसान कभी प्रकृति से जीता नहीं,ये प्रकृति को देखने का गलत नजरिया है। इस बात को हम सीधे तौर पर इस तरह देख सकते हैं कि इंसानी सभ्यता का उद्भव प्रकृति की कंदराओं में हुआ, लेकिन धीरे–धीरे इंसानी बुद्धि हावी होने लगी। उसे विकास की जरुरत महसूस हुई और उसने स्वयं को प्रकृति से विलग कर लिया। एक समय ऐसा आया कि दोनों एक दूसरे से अजनबी ही गए। इंसान की उपलब्धियों में नए नए अविष्कार सुख सुविधाएं उपभोग की वस्तुएं जुड़ती चली गई वह प्रकृति से अंततः कटता चला गया। इस अलगाव नें इंसान की मूलभूत आत्मा को नष्ट कर दिया। प्रकृति से अलगाव पर इंसान को आखिर क्या मिला! देखा जाये तो कुछ नहीं,वह शनै शनै एकाकी आत्म केंद्रित और कुंठा ग्रस्त होता चला गया। अब समय आ गया है कि इंसान एक बार पुनः अपनी इस यात्रा पर चिंतन करे। यह न केवल इंसानी सभ्यता के लिए अपितु स्व–अस्तित्व की रक्षा के लिए भी अपरिहार्य है। जरुरी नहीं कि इंसान इसके लिए अपनी अब तक की सभ्यता यात्रा को स्थगित करे या विनिष्ट करे। वह अपनी अब तक की उपलब्धियों के साथ भी आगे बढ़ सकता है, लेकिन उसे तारतम्य बिठाना होगा प्रकृति और स्वयं के बीच, ताकि टकराव की स्थिति उत्पन्न न हो। मनुष्य अपने द्वारा बनाये जिन सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ खड़ा है उससे आगे का रास्ता बंद हो चुका है, उसे अंतिम सत्य की ओर लौटना होगा, तभी सही मायने में विकास यात्रा संपूर्ण मानी जायेगी।

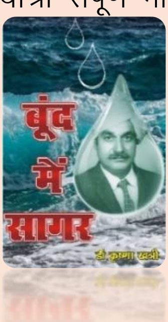

बूंद में सागर

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-929060-8-9

संस्करण : 2019, मूल्य : 200/-

लेख

पूजा सचिन धारगलकर
इ.डब्ल्यू.एस 247, हाउसिंग बोर्ड रुंमदामोल
दवर्लिम सालसेत (गोवा) –403707
pujadhargalkar7@gmail.com

किन्नर जीवन : दर्द भरी दास्तान

'किन्नर' नाम सुनते ही आपके दिमाग में अवश्य लज्जा का भाव आया होगा। लेखन तो दूर, नाम लेने मात्र से लोग कतराते हैं। शायद आपने भी यह भाव महसूस किया हो। 'किन्नर' शब्द सुनते ही हमारे मस्तिष्क में एक मनोग्रन्थि बन जाती है। 'किन्नर' शब्द पर मैंने इसलिए विशेष जोर दिया ताकि आपका ध्यान आकर्षित हो सके और आप इस शब्द से परे जाकर सोचने और समझने की दृष्टि उत्पन्न कर सके। किन्नर समाज जिसके साथ बिल्कुल उपेक्षित सा व्यवहार किया जाता है, उपहास उड़ाया जाता है, उसको आज सम्मान की दरकार है। वे आम आदमी की तरह जीने का अधिकार रखते हैं। आक उनकी व्यथा–कथा, समस्याएँ, उपेक्षा और तकलीफ से हमारे समाज को रूबरू होने की अवश्यकता है। उनको भी समाज की मुख्य धारा, मुख्य समाज में रहने, जीने का अधिकार है। आज साहित्य उनकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए तरस रहा है, किंतु उसको उचित अभिव्यक्ति नहीं मिल पा रही है।

सामाजिक पूर्वाग्रह से युक्त हमारा तथा–कथित समाज इस प्रजाति को हेय और गृणित दृष्टि से देखता है। ऐसे कई अवसर आते हैं, जब उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा जाता है। चाहे विद्यालय हो, प्रशिक्षण संस्थान हो या फिर नौकरी देने की बात हो, उनके साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है। हमारे गरिमामय भारतीय संविधान में इस बात का साफ–साफ उल्लेख है कि जाति, धर्म, लिंग के आधार पर नागरिकों के साथ भेदभाव नहीं किया जाएगा। लेकिन फिर भी इन लोगों के साथ यह भेदभाव क्यों किया जाता है। इस संसार में नर–नारी के अलावा और भी एक अन्य वर्ग है जो न पूरी तरह नर होता है और न नारी होते है, जिसे लोग 'हिजड़ा', 'किन्नर' या फिर 'थर्ड जेंडर' के नाम से भी जानते है। 'हिजड़ा' जिनके बारे में जानने की उत्सुकता हमेशा लोगों के अंदर होती है। शास्त्र की बात करे तो ऐसा माना जाता है की किन्नर की पैदाइश अपने पूर्व जन्म के गुनाहों की वजह से होती है। वैसे देखा जाए तो सभी नाम एक दूसरे के पृथक है या कहे की समानांतर है। फिर भी अध्ययन करने पर उसमें भेद किया जा सकता है। किन्नर एक जाति का भी नाम है जो हिमालय के कनौर प्रदेश (हिमवत और हेमकूटी) में रहते हैं। उनकी भाषा 'कनौरी' है। "हिजड़ा उर्दू शब्द है और किन्नर हिन्दी शब्द है। आज के समय में सरकार एवं सामाजिक संगठन ने इसे 'ट्रांसजेंडर' नाम दिया है यानि की तीसरा लिंग अर्थात तृतीय प्रकृति के लोग। हर राज्य में उन्हें अलग–अलग नाम से पुकारा जाता है जैसे 'तेलगु–नपुंसकुडु, कोज्जा या मादा, तमिल दृ थिरु नंगई, अरावनी, अंग्रेजी में– Eunuch / Hermaphrodite / LGBT] गुजरती–पवैय्या, पंजाबी दृ खुसरा, कन्नड–जोगप्पा भारत के अन्य जगह पर हिजरा, छक्का, किन्नर, खोजा, नपुंसक, थर्डजेंडर आदि"[1]।

वैसे इनका इतिहास काफी पुराना है। रामायण महाभारत के समय से हिजड़ों का इतिहास चला आ रहा है। रामचरितमानस में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। वनवास जाते समय श्री राम अपने पीछे आए छोटे भाइयों सहित सभी स्त्री एवं पुरुष वापस लौट जाने के लिए कहते हैं। आदेश का पालन करते हुए सभी स्त्री एवं पुरुष वापस अयोध्या लौट आने को कहते हैं, किन्तु मध्य लिंगी अर्थात हिजड़े वापस नहीं लौटते। 14 वर्षों के बाद वनवास से वापस लौटते समय श्रीराम ने उनसे वहाँ रुके रहने का कारण पूछा, तब श्रीराम के

कथन को किन्नरों ने स्पष्ट किया कि प्रभु आपने नर और नारी को वापस जाने की अनुमति दी थी, किंतु हमारे संबंध में कोई आदेश नहीं किया था। इस प्रसंग का उल्लेख रामचरितमानस में तुलसीदासजी करते हैं–

"जथा जोगु करि विनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा।।

नारि पुरुष लघु मध्य बडेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥

इसका उल्लेख 'किन्नर कथा' उपन्यास में महेंद्र भीष्म ने भी किया है। कहा जाता है कि हिजड़ों की इस निश्चल एवं निस्वार्थ भक्ति भावना को देखकर श्रीराम ने उन्हें वरदान किया कि कलयुग में तुम्हारा ही राज होगा और तुम लोग जिसको भी आशीर्वाद दोगे, उसका अनिष्ट नहीं होगा। रामचरितमानस में ही श्रीराम की भक्ति के संबंध में पात्रता का उल्लेख करते हुए लिखा कि–

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोई।

सर्व भाव भज कपत तजि, मोहि परम प्रिय सोई॥

अर्थात् चराचर जगत में कोई भी जीव हो, चाहे वह स्त्री, पुरुष, नपुंसक, देव, दानव, मानव तिर्यक इत्यादि हो। अगर वह सम्पूर्ण कपट को त्यागकर मुझे भजता है, वह मुझे प्रिय है। रामायण काल में किन्नर वर्ग की विशेष उपस्थिती थी।

महाभारत में किन्नर के रूप में शिखंडी तथा बृहन्नला (अर्जुन) का उल्लेख मिलता है। अर्जुन ने शिखंडी को ढाल बनाकर ही भीष्म पितामह का वध करने में सफलता पायी थी। शिखंडी को सामने देखकर भीष्म पितामह ने कहा कि वह एक नपुंसक से युद्ध नहीं कर सकते और अपने शस्त्र नीचे डाल दिए थे"[2]। मुगल काल में राजा युद्ध जाने पर रानियों की देखभाल किन्नर करते थे। पहले कभी उनका अनादर नहीं हुआ। पौराणिक ग्रन्थों, वेदों, पुराणों और साहित्य तक भी किन्नर हिमालय के क्षेत्र में बसने वाली अति प्रतिष्ठित व महत्त्वपूर्ण आदिम जाति हैं।

किन्नर की शव यात्रा रात्री के समय निकलती है, किन्नर मुर्दों को जलाया नहीं जाता बल्कि उन्हें दफनाया जाता है। चौका देने वाली बात यह है कि वह किसी दूसरे किन्नर से नहीं बल्कि वह अपने भगवान से शादी करते हैं। जिन्हें अरावन के नाम से भी जाना जाता हैं। उन्हें शव पर किसी कि भी नजर न पड़े यह मान्यता है। उनके शव पर चप्पलों से मारा जाता है क्यों पिछले जन्म के जो भी

पाप है वह सब मीट जाए। उनके गुरु ही उनका परवर है। गुरु से ही वह शिक्षा पाते है।

किन्नर कहलाना किसी मर्द को अच्छा नहीं लगता, वह शब्द पिघला शीशा सा कानों में उतरना है और किन्नर को हिजड़ा कहने से उन्हें गाली लगती क्योंकि यह अपमान करने वाला शब्द है, पर कहीं अंतस तक उसके मन में कचोट जरूर होती है। आखिर ईश्वर ने उसके साथ अन्याय क्यों किया? क्यों हम उन्हें अपने से दूर सामाजिक दायरे से बाहर हाशिए पर रखते चले आ रहे हैं, उनके प्रति हमारी सोच में अश्लीलता का चश्मा क्यों चढ़ा रहता है, किसी हत्यारोपी के साथ बेहिचक घूमने, टहलने या उसे अपने ड्राईंग रूम में बैठकर उसके साथ जलपान करने से हम नहीं हिचकते हैं, फिर किन्नर तो ऐसा कोई काम नहीं करता, जो कि एक हत्यारोपी करता है तो हम किन्नरों से क्यों हिचकते हैं। वे हमारी तरह अपनी माँ की कोख से जन्मे अपने पिता की संतान हैं। वे ज्यादा नहीं मांग रहे हैं। 'हमें किन्नर नहीं, इंसान समझा जाए। बस इतनी से मांग है।

स्त्री पुरुष की संरचना प्रकृति प्रदत्त है। जैविक आधार ने स्त्री–पुरुष और तृतीय लिंगी को शारीरिक–मानसिक भिन्नता प्रदान की है। मानव समाज में परस्पर भिन्न लिंगी मनुष्य एक–दूसरे के पूरक और सहयोगी रहे हैं, किन्तु मानव सभ्यता के विकास से ही लिंग भेद के कारण दमन, अन्याय, शोषण और असमानता का लंबा इतिहास भी है, विशेषकर तृतीय लिंगी समुदायों को एक समान नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। उन्हें समाज या परिवार से वंचित नहीं रहना पड़ता है, क्योंकि सार्वजनिक और सरकारी कार्यों में उन्हें दोयम दर्जे से नहीं देखा जाता। पुरुष सत्तात्मक भारतीय समाज में लिंगविहीन लोगों को बहिष्कृत किया जाता है तथा उसके साथ मनुष्य कि तरह व्यवहार भी नहीं किया जाता, बल्कि उन्हें क्रूरता, मर्मात्मक पीड़ा और दर्दनाक स्थितियों का सामन करना पड़ता है। नयी सदी की कहानियों में तृतीय लिंगी समुदाय का ध्यान आकर्षक होना तथा उनकी अस्मिता को उद्घाटित करना नए यथार्थ की शरुआत है। हम भी इंसान है किन्नरों पर आधारित कहानियों का विशिष्ट संग्रह है। किन्नर समुदाय का परंपरागत पेशा अपनाना उनकी विवशता है। उनके पास शिक्षा के साधन नहीं है और न रोजगार प्राप्त करने के अवसर मिल पाते हैं। उन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित रखा जाता

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

था। अपमान और अलिंगी देह को लेकर उनका संघर्ष जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता है। उन्हें स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार ही नहीं है बचपन में जब उन्हें किन्नर होने का पता चल जाता है तब उन्हें किन्नर समुदाय में भेजा जाता है। सबसे बड़ा गुन्हा उनके साथ होता है। इस प्रकार का भेद भाव पशु–प्राणियों में नहीं है मनुष्य एक घातक प्राणी है, मौका देखकर वार करता है किसी को ऊपर उठने नहीं देता बल्कि और नीचे दफनाने की कौशिश करता है। अपने ही अपनों के द्वारा घिराये जाते है। किसी के प्रति कोई संवेदना नहीं है। हम किसी के दुख का सहारा नहीं बनते बल्कि किसी के दुख को और कैसे बढ़ाया जाए बस इसी का मौका हम तलाशते रहते है। हर किसी को अपने हिसाब से जीने का अधिकार है किसी का दूसरों पर कोई अधिकार नहीं है, लेकिन अपने अहं के कारण हम दूसरों पर वर्चस्व करते है। अपना अधिकार जताते है। आज हम फॉर्म भरते है उसमें स्त्री, पुरुष तथा अन्य ऐसे लिखा होता है हमने अन्य में उन्हें जगह दी लेकिन हमने अपने साथ स्वीकार नहीं किया।

'किन्नर' शब्द को पढ़ा जाए तो मुश्किल से एक या दो सेकंड लगेंगे और समझने की कोशिश की जाए तो पंद्रह–बीस मिनट में कोई जानकार यह आसानी से समझा देगा कि किन्नर कौन होते हैं? वही किन्नर जिन्हें हम हिजड़ा या छक्का कहते है। मगर शायद ही हम इस दर्द को जानते हो। इसी दर्द को किन्नर को अपने सीने में दबाकर आम लोगों के सामने हथेली पीटने हुए नाचते हैं, दूसरों का मनोरंजन करते है। दूसरों को आशीर्वाद देते है और उसके बदले अपने हिस्से में दर्द दुख बटोरते है। लोगों से नफरत प्रताड्ना सुनते है लेकिन चेहरे पर हमेशा हँसी होती है। दो वक्त की रोटी के लिए ठुमका लगाते और ताली पीटते। समाज से बहिष्कृत कर दिया गया, अपना एक ही धर्म मान लिया गया नाचना, गाना, ताली पीटना।

'नाला सोपारा' उपन्यास के माध्यम से हिजड़ों के जीवन से संबन्धित व्यक्तिगत एवं सामाजिक सरोकारों को पाठक के सामने परत खोलते हुए प्रस्तुत करने का प्रयास हैं। इस उपन्यास के लेखन के संदर्भ में 'चित्रा मुद्गल' कहती है "लंबे समय से मेरे मन में पीड़ा थी। एक छटपटाहट थी, आखिर क्यों हमारे इस अहम हिस्से को अलग–थलग किया जा रहा है। हमारे बच्चों को क्यों हमसे दूर किया जा रहा है। आजादी से लेकर अभी तक कई रूढ़ियाँ टूटी लेकिन

किन्नरों के जिंदगी में कोई बदलाव नहीं आया। उपन्यास एक बड़ा प्रश्न उठता है कि लिंग–पूजक समाज लिंगविहीनों को कैसे बर्दाश्त करेगा? उपन्यास इस प्रश पर गंभीरता से सोचने को विवश करता है कि आखिर एक मनुष्य को सिर्फ इसलिए समाज बहिष्कृत क्यों होना पड़े कि वह लिंग दोषी है?

समाज में मनुष्यता आज हाशिये पर है और हाशियाकरण की यह प्रक्रिया लंबे समय से मानवाधिकारों के हनन के रूप में सामने आती है। गुलाम मंडी उपन्यास में समाज ऐसा है जिसे अक्सर हम देखना पसंद नहीं करते। परंतु क्या यह समस्या का समाधान है क्या कबूतर के आँख बंद कर लेने से बिल्ली उसे नहीं खाएगी। उसी तरह हमारा आँखों को बंद कर लेना भर मानव तस्करी, यौन शोषण और यौन कर्मियों की समस्या का समाधान नहीं होगा। अक्सर लड़कियां इसमें फँसने के बाद बाहर आने का प्रयास नहीं करती और करती भी है तो इस डर से आगे नहीं आती, कि समाज उन्हें स्वीकार नहीं करेगा। उपन्यास में जानकी के माध्यम से लेखिका इस समस्या पर रोशनी डालती हैं और समाज की मानसिकता में बदलाव की बात करती है ताकि यह लड़कियां वापस आ सके और सम्मानपूर्वक जीवन जी सके। 1974 में जे. बी लेखिका उस व्यक्ति से मिली और उन्होंने अपने जीवन की व्यथा बताई लूले, लंगड़े बहरे होते है उन्हें घर से कोई बाहर नहीं निकालता लेकिन किन्नर जब लिंग से विकलांग पैदा होते ही उन्हें घर से बाहर निकाल दिया जाता है बिना कोई दोष के। किन्नर समाज के लोग अपनी अलिंगी देह को लेकर जन्म से मृत्यु तक अपमानित, तिरस्कृत और संघर्षमयी जीवन व्यतीत करते है तथा आजीवन अपनी अस्मिता की तलाश में ठोकरे खाते हैं। असीम यतनाओं की सजा उन्हें क्यों दी जाती है। यह लोग परिवार और समाज के साथ नहीं रह सकते इनके लिए शिक्षा, स्वास्थ सेवाओं और सार्वजनिक स्थानों पर पहुँच प्रतिबंधित है। अभी तक उन्हें सामाजिक और सांस्कृ तिक जीवन में प्रभावी ढंग से भाग लेने से बाहर रखा गया है। राजनीति और निर्णय लेने की प्रक्रिया उनकी पहुँच से बाहर है। 2014 में एक ऐतिहासिक फैसले में सर्वोच न्यायालय में उन्हें अधिकार देने कि बात कही, लेकिन कहा उन्हें उनका अधिकार मिला। शरीर एक पुरुष का, भावनाएँ एक नारी की अपनी असल पहचान स्थापित करने के लिए सहसपूर्ण संघर्ष की अद्भुत जीवन यात्रा जो 23 सितंबर,

1964 में शुरू होती है। जब दो बेटियों के बाद चित्तरंजन बंद्योपाध्याय के घर बेटा पैदा हुआ। बेटे सोमनाथ के जन्म के साथ ही पिता के भाग्य ने बेहतरी की ओर तेजी से ऐसा कदम बढ़ाया की लोग हँसते हुए कहते कि अक्सर बेटियाँ पिता के लिए सौभाग्य लाती हैं, लेकिन इस बार तो बेटा किस्मत वाला साबित हुआ। वे कहते हे चित्त! यह पुत्र तो देवी लक्ष्मी है। सोमनाथ जैसे–जैसे बड़ा होता गया उसमें लड़कियों जैसे हरकते, भावनाएँ पैदा होने लगी और लाख कोशिश करने के बाद दबा नहीं सकीं। बिना माता–पिता को बताए घर से बाहर निकल पड़ी। बेशक, भारत में कानूनन तौर पर थर्ड जेंडर को मान्यता मिल गयी हो मगर भारतीय समाज ने अभी भी तीसरे लिंग वर्ग को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया है। आज भी समाज में तिरस्कार, हिन भावना और अपमान की नजरों से देखा जाता है। देश की पहली ट्रान्सजेंडर महिला प्रिन्सिपल बनी जिन्होंने विपरीत सामाजिक परिस्थितियों में अपने संघर्ष के बूते पर मुकाम हासिल किया। वर्तमान में मनोबी पश्चिम बंगाल के कृष्ण महिला कॉलेज में बतौर प्रिन्सिपल कार्यरत है। 5–6 साल की उम्र में लड़कियों के कपड़े पहनना अच्छा लगता था। वह कपड़े पहनने से माँ डाँटती लेकिन वह कपड़े पहनकर तृप्त सी हो जाती। जब स्कूल में पढ़ती थी तब तो उनसे कोई दोस्ती नहीं करता था यदि स्कूल नहीं जाती तो बीते दिन की पढ़ाई के बारे में नहीं बताता। ग्रेजुएशन में दाखिला लेने पर भी मजाक बनाया गया। 1995 में उन्होंने पढ़ाना शुरू किया। बच्चों ने नहीं सताया उतना अन्य शिक्षकों ने उन्हें दुख दिया। ट्रांसजेंडरों के लिए पहली पत्रिका निकली थी ‘ओब–मानब’ जिसका हिन्दी में अर्थ है ‘उप–मानव’। 2003 साल में उन्होंने सेक्स बदल दिया। 2006 में पी.एच.डी की। तिरस्कार का घूंट पल–पल पिती रही। उनकी मदद कोई नहीं करता। उन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर से बहुत कुछ सीखा है। ट्रांसजेंडर सामाजिक भेदभाव के कारण पढ़ाई से दूर हो जाते है और पूरी जिंदगी नाचकर ही गुजारा करते है। लेकिन कभी भी जीवन में हार नहीं मानी एक बच्चे को गोद लिया ‘देबाशीश’ नाम है। उन्हें जीवन दिया एक माँ को बच्चा मिला और एक बच्चे को उसकी माँ। अपना जीवन एक कैद की तरह जीने के लिए मजबूर है। रोज आँसू के घूंट पीते है। क्या क्या नाम नहीं दिया उन्हें कोई कहता हिजड़ा, किन्नर छक्का, थर्ड जेंडर, आदि।

"अधूरी देह क्यों मुझको बनाया
बता ईश्वर तुझे ये क्या सुहाया
किसी का प्यार हूँ न वास्ता हूँ
न तो मंजिल हूँ मैं न रास्ता हूँ
अनुभव पूर्णता का न हो पाया
अजब खेल यह रह–रह धूप छाया"[3]

हिजड़ों की न आवाज है, न नाम है ना परिवार, इतिहास, प्यार, सोच, ना खुशी, ना गम, ना हक ना व्यक्तित्व। किन्नर अदृश्य है न केवल हमारे मुख्यधारा के समाज में बल्कि समाज के मन–मस्तिष्क के भीतर भी।

जीवन में मनुष्य आदमी बनकर जन्म लेता है इसमें स्त्री और पुरुष दोनों आते है लेकिन मनुष्य के कर्म चाहे वह अच्छाई हो या बुराई लेकिन अपने कर्मों से मनुष्य से इंसान बनते है और यही से इंसानियत शुरू होती है। एक स्त्री को हमेशा से उपेक्षित किया गया है और हम आधुनिक समाज में इस बात को भले बदलने की कोशिश करे अगर हम ऐसा सोचते है तो हम गलत है। कुछ समाज में ऐसे भी लोग है जिनकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया वह है 'किन्नर समाज'। देवता को भी जन्म लेने के लिए स्त्री का गर्भ चाहिए ईश्वर भी स्त्री का ऋणी होता है, लेकिन हम स्त्री के अस्तित्व को बार–बार भूलते है क्यों? यह प्रश्न पूरे मानव समाज से है।

किन्नर नाम सुनते ही लोग हँसते है, मुँह फेरते है देखकर भागते है उन्हें अपशब्द कहते है लेकिन हम यह क्यों भूल जाते है कि यह हमारे ही तरह साधारण इंसान है उन्हें भी जीने का और एक सम्मान का अधिकार है, लेकिन सम्मान की तो बात दूर हम आज भी उन्हें मनुष्य के रूप में अपना नहीं सके हम दूसरे ग्रह से कोई अजनबी की तरह बुरी नजर से देखते है। लेकिन हम बार–बार क्यों भूल जाते है हम किसी को सुख दे नहीं सकते तो दुख देने का भी हमे अधिकार नहीं है किसी को अच्छे शब्द बोल नहीं सकते तो बुरा भी बोलने का हमें अधिकार नहीं है।

जानवर स्वावलंबी होते है लेकिन मनुष्य ऐसा प्राणी है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक परस्वावलंबी होता है, लेकिन फिर भी अपने आप को महान समझते है। अक्सर हम कहते है इस संसार की रचना ईश्वर ने की है हम ईश्वर के संतान है लेकिन हम ईश्वर की रचना पर संदेश कर रहे है। हमने अपने बच्चियों को मार दिया कूडे दान

में फेक दिया भ्रूण हत्या की। लेकिन उन्होंने बच्चियों को कूड़े दान से उठाकर उन्हें सुरक्षा प्रदान की। उन्हें पनाह दी उन्हें पढ़ाया, लिखाया समाज में रहने के काबिल बनाया। अपने पराए हो गए लेकिन अजनबी ने उन्हें नाम दिया। सिर्फ जन्म देने वाली माँ नहीं होती। पुरुष को भी उतना ही अधिकार है वह भी बच्चों को पाल सकते है।

हम शादी, बच्चे के जन्म पर उन्हें घर बुलाते है, क्योंकि वह आशीर्वाद देते है नाचते है लेकिन इनका जन्म सिर्फ इसी लिए हुआ है। यहाँ तक भीख मांगने के मार्ग तक पहुंचा दिया क्यों हम भील जाते है ऊँठा जन्म सिर्फ इसी के लिए नहीं हुआ। उन्हें भी स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार है। कोई उन्हें नौकरी घर नहीं देता, अपना घर परिवार होते हुए भी अपने उन्हें नहीं अपनाते। कोई किराए का घर भी नहीं देता झोपड़ियों में रहने के लिए विवश है। स्टेशन, घर–घर रास्ते पर भिख मांगते है लेकिन, लोग वहाँ पर भी धिक्कारते है। डरते कहते है ”ताई मला बघून तुम्ही नाराज तर झाले नहीं नाआ“ और लोग भागते है गालियाँ देते है मुह पर दरवाजा बंद करते हैं। हमारे समाज में रहने वाले भाई, पिता, चाचा, मामा उनके पास जाते है लेकिन ‘sex worker’ का ठप्पा उन पर क्यों ? वह अभिशप्त जीवन जीने के पीछे जिम्मेदार कौन है ?

किसी भी तरह का आवेदन फार्म भरते समय एक कॉलम आता है जेंडर यानि लिंग का, जिसमें विकल्प होता है महिला, पुरुष और अन्य। ‘अन्य’ के रूप में जगह मिल गयी लेकिन समाज में उन्हें जगह नहीं मिली। किन्नरों की यह शोचनीय स्थिति, आधुनिकता, समानता और मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता का दम भरने वाले समाज के मुँह पर जोरदार तमाचा है। भले हम आज अपने आप को मॉडर्न आधुनिक कहे लेकिन सोच विचारों से हम आज भी पिछड़े है। कोई खिलाड़ी जब गेंद को बेट से हिट करता तब सब छक्का मारा कहते है लेकिन इस बात को सकारात्मकता से देखते है लेकिन हमे छक्का यह शब्द गाली की तरह नकारात्मक दृष्टि से क्यों देखा जाता हैं। मनोबी ने बचपन में यह प्रश्न अपनी माँ से पूछा था, तब माँ ने उत्तर दिया था उनका बॉल बाउंड्री से बाहर जाना सकारात्मक है लेकिन यह शब्द तुम्हारे लिए mainstream boundary से बाहर कर दिया जाना हैं। उनके साथ कितने शोषण होते है लेकिन कोई

उनके दुख को नहीं समझता। अपने जीवन को अभिशाप की तरह जीने के लिए मजबूर है। दर–दर भटकने के लिए मजबूर है। हम अपने देह को लेकर बहुत इतराते है लेकिन समझ, संवेदना, दुखकातरता नहीं है। हमने अपने बेटियों जन्म के बात कूड़ेदान में फेंक दिया। वही वे लोग बच्चे को पाने के लिए तरसते है। उन्हें घर, परिवार देते है, प्यार देते है नयी जिंदगी देते है शिक्षा देते है। सुभ अवसर पर उनकी जरुरत होती है उनका आशीर्वाद हमारे लिए मूल्यवान है लेकिन वह नहीं। अगर देखा जाए तो बुराई उनमें नहीं हम में है हमारे दृष्टिकोण विचारों में है हमने उनके प्रति हमारे मस्तिष्क में गलत विचारधारा बनाई है।

किन्नरों ने दिया शाप लगता है ऐसे लोग कहते है लेकिन यह सही है जिनको हमने जन्म से दुख दिया दुखी आत्मा के हृदय से निकला शाप तो जरूर लगेगा। वह एक दुखी आत्मा है। ईश्वर अर्धनारीश्वर शिव को हम पूजते है लेकिन उनको नहीं अपनाते। जितनी प्रताड्ना उनको पहले नहीं हुई उतना दुख हम आज उन्हें दे रहे है। कोई ठीक से नहीं बोलता, साथ में कोई नहीं बैठता जब किसी आम व्यक्ति के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है तब कितना बुरा लगता है। किसी ने कुछ कहा हम सहन नहीं कर सकते फिर वह तो दिन–रात लोगों की नफरत सहते है। उनकी शव यात्रा रात में निकलती है ताकि किसी भी मनुष्य की नजर उन पर ना पड़े अन्यथा अगले जनम में फिर से किन्नर का जन्म होता है। मृत्यु के समय उन्हें चप्पल से मारा जाता है। अपने जीवन में वे कितना दर्द सहते है। मृत्यु के बाद भी। कितने होशियार होते है कितनी कलाएं उन्हें आती है वे गाते है नाचते है और भी कई चिजे उन्हें आती है लेकिन हमने उन्हें सामने आने का कभी मौका ही नहीं दिया।

कोई भाड़े का घर भी नहीं देते आज हमने झुग्गी बस्ती में रहने के लिए विवश कर दिया है। पैसे मांगने पर लोग कहते है पैसे नहीं कमा सकता भिख मांगने की आदत पद चुकी है लेकिन इस बात पर विचार किया जाए तो मुफ्तखोरी भी हमीने उन्हें सिखायी हैं। अगर कोई काम नौकरी घर परिवार नहीं रहा तो कोई व्यक्ति क्या करगा जो दूसरों को आशीर्वाद देते है उन्हें आशीष देते है उनकी झोली भर देते है लेकिन उनके दुख को कोई नहीं समझता। कितना बुरी तरह सुलुग किया जाता है हम उन्हें मरने के कगार पर पहुँचा दिया है।

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

उसके आँसू किसी को नहीं दिख रहे कि वह किस परिस्थिति से गुजर रहे है। स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, किसान विमर्श, बाल विमर्श लेकिन किन्नर विमर्श यह ज्वलंत विषय ही और इसी विषय के जरिए हम उनके दुख को काम तो नहीं कर सकते लेकिन हम इससे रूबरू अवश्य होंगे।

संदर्भ :

1. http://hi-m-wikipedia-org/wiki/किन्नर
2. पुरुष तन में फंसा मेरा नारि मन, – मनोबि बंदोपाद्याय, राजपाल एंड सन्ज, 2018
3. थर्डजेंडर विमर्श : संपादक शरद सिंह, सामयिक प्रकाशन, 2019
4. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं नलसोपारा, सामयिक पपेरबॉक्स, 2017

शेखर शिखर

चंद्रशेखर शुक्ल

आईएसबीएन : 978-81-929060-9-6

संस्करण : 2019, मूल्य : 251/-

कदम रखना मगर हौले से

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-5-4

संस्करण : 2020, मूल्य : 155/-

शोध–लेख

सबनम भुजेल
sabnambhujel123@gmail.com

तुलसीदास के काव्य में लोक चेतना

लोक का सामान्य अर्थ है– 'जन' या 'संसार'। इसे संसार या समस्त सृष्टि के नजर से देखे तो तीन लोकों की कल्पना की जा सकती हैं– स्वर्ग लोक, पृथ्वी लोक और पाताल लोक। साहित्य में लोक का अर्थ– मानव संस्कृति, सभ्यता, जाति, समुदाय आदि से जुड़ा है जिसमें मनुष्य जाति की गणना होती है। लोक शब्द के साथ लोक साहित्य, लोक संस्कृति एवं सभ्यता का नाम जुड़ा रहता है। हिंदी साहित्य में वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत नाम से दो संस्कृत का प्रादुर्भाव हुआ था। वैदिक संस्कृत में वेद, पुराण, उपनिषद आदि का विकास हुआ तो लौकिक संस्कृत में महाभारत, रामायण, श्रीरामचरितमानस जैसी रचनाएँ रची जाने लगी, जिसका संबंध सीधे लोक से हैं। लोक साहित्य का संबंध समाज से जुड़े लोगों से है। इसके अंतर्गत मनुष्य द्वारा लोक–गीत, लोक–कथाओं, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि का विकास होने लगा। हिंदी साहित्य में कई ऐसे साहित्यकार, कवि या लेखक हुए जिनकी रचनाओं में लोक से जुड़ी प्रसंगों का वर्णन किया

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

गया हैं। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में लोक की समस्याओं, घटनाओं, स्थितियों को लोक भावभूमि पर रहकर ही उसका चित्रण किया हैं, इसलिए इनकी रचनाओं में आम जनमानस की पुकार सुनाई पड़ती है।

लोकवादी कवियों में गोश्वामी तुलसीदास का नाम अग्रणीय हैं। भक्तिकाल के सगुण काव्यधारा में रामभक्त कवियों में तुलसीदास का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। रामभक्त कवियों का आदर्श केवल लोकमंगल ही रहा, इसलिए उन्होंने ईश्वर के एक ऐसे आदर्श रूप को सामने रखा जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रेरणा दे सके। यही कारण है कि रामभक्त काव्यधारा में लोक जीवन की उपेक्षा नहीं है बल्कि जीवन के संघर्षो के बीच उनके जीवन चरित्रों का उज्ज्वल रूप हमारे सामने आता है। रामभक्त कवि तुलसीदास ने राम के शील और सौन्दर्य का दर्शन जीवन संघर्ष के बीच ही दिखाया है। आम मनुष्य की तरह ही इन्होंने राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान आदि के चरित्रों का वर्णन किया है। राम को मर्यादा पुरुषोत्तम स्वीकार कर लोगों की रक्षा करने वाला अद्वितीय वीर माना है जो लोगों की रक्षा करने के लिए बार–बार धरती पर अवतार लेते हैं। तुलसी लिखते हैं–

"विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।।"

तुलसी का सम्पूर्ण काव्य लोकमंगल की भावना से ओत–प्रोत है। लोक चेतना उनके जीवन में भरा पड़ा हैं। उन्होंने धर्म और मुक्ति से राम की भक्ति की निर्मल धारा प्रवाहित कि जो मंगलकारी सिद्ध हुई है। उनकी धारणा थी कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनरू सर्वे संतु निरामयरू'। तुलसीदास के राम अन्य कवियों के राम से भिन्न थे। इनके राम विष्णु के अवतार है जो लोगों की रक्षा करनेवाले हैं। अधिकांश काव्य में तुलसी ने राम का ही वर्णन किया है। लोकमंगलकारी राम की भक्ति इन्होंने दास्य एवं सेव्य भाव से की हैं। वे लिखते हैं–

"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि।।"

तुलसी में अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम का समन्वय तथा धर्म और ज्ञान का योग है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति माना है। वे तुलसी की रचना और भक्ति पद्धति से काफी प्रभावित थे। तुलसी उनके प्रिय कवियों में से है और

उनको श्रेष्ठ रामभक्त कवि के रूप में स्वीकारते भी हैं। उनकी भक्ति पद्धति के बारे में वे लिखते हैं– "गोश्वामी जी की भक्ति पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उनका समंजस्य है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्यलक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं।"

हिंदी साहित्य में तुलसीदास तन्मय होकर रचना करने वाले कवि है। ये विद्वान एवं दार्शनिक रचनाकार भी थे। वे सामान्य जन जैसा अनुभव कर सकते हैं एवं सामान्य काव्य भाषा में उसे व्यक्त भी कर सकते हैं। उनके राम तक पहुँचने का रास्ता इसी लोक से होकर जाता है। उन्होंने अवधी एवं ब्रज भाषा में लोगों की दुरूख, पीड़ा, विवशता आदि का वर्णन किया हैं। तत्कालीन सामंतों के अत्याचारों के खिलाफ प्रहार किया है। उन्होंने अकाल, महामारी के साथ–साथ प्रजा से अधिक कर वसूलने की भी निंदा की और अपने समय की विभिन्न धार्मिक साधनाओं के पाखंड का भी विरोध किया है। वे जनवादी कवि थे। जनवादी कवि होने के नाते जन–जन की पीड़ा को देखते थे और अपनी रचनाओं में उनकी पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर अभिव्यक्त करते थे। ये किसी राजा के आश्रय में रहकर उसकी खुशामद में काव्य नहीं लिखते थे, इसलिए इनका काव्य जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। जीवन की यथार्थ सच्चाई को बतलाते हैं। अपनी रचनाओं में समाज के दुरूख, दर्द, धनी–गरीब, अछूतों और नारी को भी स्थान देते हैं। समाज के हर क्षेत्र पर बल देते हैं। जनता में व्याप्त बेरोजगारी और भुखमरी की स्थिति का बहुत ही मार्मिक चित्रण अपनी कविता 'कवितावली' में करते हुए तुलसी लिखते हैं–

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका–विहीन लोग सीद्यमान, सोचबस,
कहैं एक एकन सों, कहाँ जाई, का करी?"

लोकवादी तुलसीदास के काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है– समन्वय की भावना। उन्होंने ज्ञान भक्ति तथा कर्म के साथ–साथ विविध देवी–देवताओं की स्तुति में समन्वय की चेष्टा की। इन भक्त कवियों की प्रवृत्ति ही समन्वयवादी रही हैं। तुलसी के समय में अनेक प्रकार के विग्रह व्याप्त थे। धर्म, जाति, संप्रदाय, भाषा आदि के नाम

पर आए दिन संघर्ष होते रहते थे। अतरू समन्वय तत्कालीन युग की आवश्यकता थी। इन्होंने ज्ञान और भक्ति के बीच, राजा और प्रजा के बीच, जनभाषा और संस्कृत के बीच, दर्शन के क्षेत्र में अद्वैतवाद, विशिष्टद्वैतवाद, सांख्य और शुद्धाद्वैतवाद, सगुण–निर्गुण आदि के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। वे लिखते भी हैं–

"सिव द्रोही मम भगत कहावा।
सो नर सपनेहूँ मोही न पावा।।"

तुलसी की रचनाएँ जनता के एक बहुत बड़े वर्ग को जीवन के नैतिक मूल्यों की शिक्षा भी देती है। वे एक उपदेशक के रूप में सामने आते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन नैतिक मूल्यों की पराकाष्ठा है परंतु वह कहीं भी अस्वाभाविक नहीं लगता। तुलसी का 'श्रीरामचरितमानस' एक धार्मिक ग्रंथ है लेकिन यह इस उद्देश्य से नहीं लिखा गया था परंतु आज भी लोक में इसकी प्रासंगिकता है। इस रचना के द्वारा लोक कल्याण की कामना करते हुए जनता को नैतिकता एवं सदाचार का अविस्मरणीय पाठ पढ़ाया गया है। उनकी इस विशेषता को लक्ष्य कर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि, "भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्ही महानुभवों को।....इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है।.....व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उसमें विद्यमान हैं।" इन्होंने अपनी रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों का भी उल्लेख किया है। 'श्रीरामचरितमानस' में कलियुग निरूपण के द्वारा तत्कालीन मुस्लिम शासकों की शासन व्यवस्था में होने वाले अत्याचारों, तद्युगीन सामाजिक विकृतियों का यथार्थ चित्रण किया है। राम के माध्यम से ही तुलसी ने इस अत्याचार को रोकने का प्रयास किया है। लोगों के मन में लोकमंगलकारी भावना जगाने का भी प्रयास किया है। तुलसी मानते हैं–

"कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि सम सब कहं हित होई ।।"

तुलसी की अन्य रचनाएँ– जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, गीतावली आदि में लोक में प्रचलित विवाह–विदाई जैसी रीति–रिवाजों का वर्णन है। 'पार्वतीमंगल' में शिव–पार्वती के विवाह का वर्णन है तो 'जानकीमंगल' में राम–सीता के विवाह का मनोहर चित्र प्रस्तुत किया गया है। आज वर्तमान समय में लोक में भी ऐसे अवसरों पर कई रीति–रिवाज होते हैं। शिव–बारात के वर्णन में तुलसीदास ने विभिन्न

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

रसों का समावेश कर विवाह–विदाई का मार्मिक एवं रोचक वर्णन करके इस छोटे से काव्य का उपसंहार किया है। 'रामलला नहछू' में तुलसी ने अवध क्षेत्र के गाँवों में पुत्र–जन्म, यज्ञोपवीत आदि अवसरों पर होने वाले रीति–रिवाजों का भी वर्णन किया है। इस कविता में संस्कार गीत है जो इस प्रकार है–

"गोद लिहै कौशल्या बैठि रामहिं पर हो।
सोभित दुलह राम सीस पर आंचर हो।।"

तुलसी के सम्पूर्ण काव्यों में जनमानस की गूंज सुनाई पड़ती है। इनके अलावा हिन्दी साहित्य में लोकवादी कवियों में सूर, जायसी, बिहारी आदि का भी नाम लिया जाता है। ये सभी कवि लोक की भावभूमि पर रहकर ही काव्य रचते थे। इसलिए इन सभी कवियों को हिन्दी का लोकप्रिय कवि का दर्जा प्राप्त हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तुलसी के संबंध में लिखते हैं– "भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो। गौतम बुद्ध के बाद भारतवर्ष का लोकनायक अगर कोई हो सकता है तो वह तुलसीदास है। उनका सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।" तुलसी ने राम के माध्यम से लोगों को प्रेरणा देने का कार्य किया है। इन्होंने परपीड़ा को अधर्म कहकर समाज में अन्याय और विषमता को समर्थन देने वालों को ही अधर्मी माना है। वे लिखते हैं–

"परहित सरिस धर्म नहीं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।"

तत्कालीन समय में भक्ति उनलोगों की प्रेरणा थी जिनका समाज में तिरस्कर और अपमान किया गया था। तुलसी ऐसे में उन पुरोहित धर्म का विरोध करते हैं जो सामंती व्यवस्था के उत्पीड़न और अन्याय को बचाए रखने में मददगार होते थे। पुरोहितों के संरक्षक भी सामंती राजसत्ता का गुलाम था जिससे प्रजा त्रस्त थी, इसलिए रामराज्य की परिकल्पना अनिवार्य हो गई। तुलसी रावण राज्य के रूप में अपने युग के सामंती व्यवस्था के अत्याचारी रूप का ही विराट चित्र अंकित कर रहे थे। पीड़ित जनता भूखी और निरीह थी। इस स्थिति में तुलसी के लिए राम की कथा लोकमंगल का विधान करनेवाली है–

"मंगल करनि कलि मलहरनी,
तुलसी कथा रघुनाथ की।"

तुलसी ने समाज में फैली अनेक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। इनकी तरह लोकमंगल की भावना अन्य कवियों में नहीं

मिलती। उनका 'श्रीरामचरितमानस' महाकाव्य जो विश्व के श्रेष्टतम महाकाव्यों में से एक है। वह लोककल्याण का दूसरा नाम है। 'मानस' में तुलसी ने जिस मर्यादा को काव्य प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत किया वह हिन्दू परंपरा के दिव्य आदर्शो का उदाहरण है। उन्होंने लोकमंगल की स्थापना के लिए जो भी संघर्ष किया वह सारा संघर्ष जनसामान्य को आध्यात्मिक जगत में प्रतिष्ठित करने के लिए ही था। अपने इस उद्देश्यों की सिद्धि के लिए जहां एक ओर उन्होंने राम को एक आदर्श रूप में चित्रित किया तो वही दूसरी ओर उनके अलौकिक रूप को जनसामान्य के लिए सुलभ कराए।

आज का मानव समाज जिस विसंगतियों और विडंबनाओं से भरा पड़ा है उनसे निजात पाने के लिए तुलसी का काव्य 'श्रीरामचरितमानस' विशेष रूप से प्रासंगिक है। समाज में आज चारोन ओर विषमता, अराजकता, अशांति, पाखंड, आडंबर, शोषण आदि अमानवीय तत्त्वों का विस्तार होता जा रहा है। ऐसे में 'श्रीरामचरितमानस' मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। इसमें समस्त जीवन के आचार–विचार, रहन–सहन, परिवार, समाज, राज्य, राष्ट्र आदि के प्रति कर्त्तव्यों का विशद निगुढ़ एवं व्यापक प्रकाश डाला गया है। तुलसी ने ऐसे समय में अपनी उद्गारों को कविता के रूप में प्रकट किया। उन्होंने जो कुछ भी लिखा था वह सभी लोकभावना से युक्त है। उन्होंने आर्थिक वैषम्य के आड़ में पनप रहे सामाजिक विद्रोह की ओर संकेत भी अपनी दृष्टि दौड़ाई हैं–

"ऊँचे–नीचे करम धरम अधरम करि।
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।।"

इस प्रकार तुलसीदास की उपरोक्त सभी रचनाओं में उस कटु सामाजिक सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है जिसकी भीषणता में आज सारा विश्व जल रहा है। उनकी मंगलमयी दृष्टि का मूल था– भेदभाव से शून्य साम्यवादी समाज की स्थापना। भीषणता और सरसता में सामंजस्य, कठोरता को कोमलता में परिणत करना, कटुता को मधुरता में परिवर्तित करना एवं प्रचंडता और मृदुता का सामंजस्य ही उनके लोक धर्म का सौन्दर्य रहा। तुलसी ने अपनी इसी लोकमांगलिक दृष्टि द्वारा जनमानस की नैसर्गिक जीवन की अभिव्यक्ति को लोककल्याणकारी सहज व आदर्श रूप में प्रस्तुत किया। जनता के गिरते नैतिक स्तर को उठाने के लिए उन्होंने श्रीराम के दिव्य

चरित्र व शील सौन्दर्य की स्थापना के प्रति अपनी प्रतिबद्धता ज्ञापित की। सत्य, धर्म, न्याय, मर्यादा, विवेक और आचरण जैसे मूल्यों की प्रतिस्थापना के प्रति तुलसी सदैव सचेत रहे। सगुण साकार राम में गुण और रूप का शक्ति, शील, सौन्दर्य का अनुपम समन्वय उनकी लोक कल्याणकरी भावना का ही प्रमाण है। तुलसी ने साहित्य में लोक संस्कृति द्वारा जीवन की गहराई को समझने का आधार दिया। भारतीय संस्कृति में एकता, समता, भाईचारा स्थापित कर मानव जीवन को परिष्कृत किया। मानव जीवन की गहन अनुभूतियों और अस्थाओं के प्रतीक रीति–रिवाजों, पावन संस्कारों के अतिरिक्त साहित्य में विविध देवी–देवताओं की पूजा,अर्चना, व्रत आदि विषयों की अपनी रचनाओं में उल्लेख किया। साथ ही वर्तमान समाज में पनप रहे दरिद्रता, दुख, पीड़ा से टूटते समाज की मंगल कामना के लिए भक्ति को आधार बनाकर जनमानस को प्रेरणा का संदेश दिया। उनकी इसी लोकप्रियता के कारण आज हिंदी साहित्य में हर जगह तुलसी व्याप्त है। उनकी रचनाएँ आज भी लोगों के लिए हितकारी साबित हो रही हैं, इसलिए तुलसी का लोक केवल उनका न होकर पूरे समाज का लोक बन गया है।

संदर्भ :

1. तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस. पृ.142
2. तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस. पृ .662
3. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. पृ.115
4. सिंह, उदयभानु. तुलसी काव्य–मीमांसा. पृ.421
5. तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस. पृ.499
6. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. पृ.113
7. तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस. पृ. 44
8. वर्मा, डॉ रामकुमार. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास. पृ.358
9. नगेंद्र, डॉ हरदयाल. (संपा.). हिंदी साहित्य का इतिहास. पृ.177
10. तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस. पृ.610
11. तुलसीदास. श्रीरामचरितमानस. पृ.41
12. वर्मा, डॉ रामकुमार. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास. पृ.328

शोध–लेख

डा. अनीता पंडा
सीनियर फैलो, आई.सी.सी.आर., नई दिल्ली
aneeta.panda@gmail.com

मेघालय की खासी (जनजातीय) लोककथाओं में प्रकृति

मानव समाज का वह वर्ग , जो जीवन में सहजता, सरलता में विश्वास रखते हुए परम्परा का निर्वाह करता है 'लोक' कहलाता है। लोकसाहित्य ही लोक जीवन का प्रतिबिम्ब है। इसकी वाचिक परम्परा उतनी ही पुरानी है, जितनी मानव–संस्कृति। लोक साहित्य अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। लोक संस्कृति और परम्परा का सजीव चित्रण इसमें मिलता है। ऋग्वेद में 'लोक' का प्रयोग शब्द का प्रयोग 'जन' के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया गया है। पुरुष सूक्त में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'स्थान' और 'जीव' शब्दों के अर्थ को व्यक्त करने के लिए किया गया है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग 'जन साधारण' के लिए ही किया गया है।

साहित्य की अनेक विधाओं की ही भांति लोकसाहित्य भी कई विधाओं में मिलता है। भारतवर्ष में लोककथा, लोकगीत, लोकनाट्य, लोक सुभाषित तथा इनके साथ ही लोकोक्ति, मुहावरा, पहेली, सूक्ति

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

आदि का आविर्भाव पाया जाता है। इन सबकी परम्परा सनातन काल से ही वाचिक रही है, अतः बहुत सारी सामग्री सुरक्षित नहीं रह सकी। जिस लोककथा को समस्त कथा साहित्य का जनक और लोकगीत को सकल काव्य का जननी मन जाता है, उस साहित्य का प्रकाशन और संकलन, अध्ययन बहुत समय तक उपेक्षित रहा है। भारतवर्ष में लोककथाओं का क्रमबद्ध संकलन और वैज्ञानिक अध्ययन बीसवीं शताब्दी में शुरू हुआ।

पूर्वोत्तर भारत को प्रकृति की संतान कहा जाता है। पर्वत–पहाड़, नदी–निर्झर, पेड़–पौधे से भरे हरे–भरे प्रान्त, पशु–पक्षियों के विचरण क्षेत्र, घने जंगल, प्राकृतिक सम्पदाओं से उभरे हुए भूगर्भ के दृश्य चारो ओर देखने को मिलता हैं। किसी जाति की लोकसंस्कृति का स्वरूप उसके लोकसाहित्य में उभर कर आता है। जन मानव के विश्वास, संस्कार, चिंतन, प्रतिक्रियाएं, परम्पराएँ,लोकसाहित्य के माध्यम से सस्वर हो उठती हैं। यहाँ का लोकसाहित्य यहाँ के जीवन की सांस्कृतिक झाँकी है। आज भी यहाँ विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक प्रथाएं पूर्ववत् हैं, जो यहाँ के लोकसाहित्य में परिलक्षित होती है। लोकसाहित्य लोक मानस की अभिव्यक्ति है। इसका सम्यक अध्ययन किये बिना किसी देश, जाति, सभ्यता, कला या सामाजिक विकास की सही जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती है। इसके माध्यम से सामान्य जन के उद्‌गार व्यक्त होने के कारण इसे जन–जीवन का दर्पण कहा जाता है।

खासी जन–जाति लोक कथाओं में सतत साहचर्य के कारण वृक्ष–पुष्प, पशु–पक्षी, नदी–नाले, छोटे–बड़े पर्वत इनके अंग बन गए हैं। जिसके कारण बनी धारणाओं में विभिन्न मिथक स्थापित होते गए। ये लोक कथाएं प्रकृति की इर्द–गिर्द घूमती हुई आदिम गंध या मनुष्य गंध की पहचान कराती हैं और नृवैज्ञानिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, धार्मिक, सांस्कृतिक धरोहर के रूप अपनी अमित छाप छोड़ जाती है तथा आने वाली पीढ़ियों को विरासत सौंपने का संकल्प रखती हैं। खासी लोक कथाओं में सृष्टि एवं मानव की उत्पत्ति की कथाएं मिलती हैं। खासी जन–जाति की के संदर्भ में उल्लेख मिलता है कि इस प्रजाति का प्रारम्भ 'खाड हिम्युट्रिप' की सोलह झोपड़ियों और 'सोलह घोसलों' से हुआ था। सर्जक के आदेश से यहाँ के जन सारे ब्रह्माण्ड में घूमते थे। यह ब्रह्माण्ड अंगूर की स्वर्णबेल के पुल

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

द्वारा जुड़ा था। पौराणिक गाथाओं में इसका उल्लेख मिलता है। 'यू लूम सोह्‌फेड बेड' चोटी (ऊँचाई एक हजार आठ सौ तेतालीस मीटर), जो सुनहरे पुल द्वारा स्वर्ग–धरती को तब जोड़ता था, जब पवित्र युग ईमानदारी का प्रतीक था। साथ ही पृथ्वी की उत्पत्ति, सृष्टि के निर्माण हेतु सूर्य, चन्द्र, आग, वायु, पानी आदि से संबंधित अनेक पौराणिक एवं लोक कथाएं मिलती हैं। जो यह सिद्ध करते हैं कि लोक का सम्बन्ध प्रकृति की हर संवेदना से है।

'पवित्र मुर्गे' को खासी जनजाति में विशेष सम्मान प्राप्त है। कहते हैं कि मनुष्य के कुकर्मों के कारण स्वर्ग, पृथ्वी और ब्रह्माण्ड के रचयिता से आत्मिक सम्बन्ध टूट गया। सरे संसार में उथल–पुथल मच गयी। प्रकाश प्रदान करने वाला सूर्य 'क्रेम लामेट– क्रेम लताड' की गुफा में छिप गया। चारों ओर अन्धकार फैल गया। सृष्टिकर्ता द्वारा सभा बुलाई गयी और यह निर्णय लिया गया कि सूर्य द्वारा सन्देश दिया जाय कि मानव प्रायश्चित करने के लिए तैयार हो जाए। इसके लिए एक बलशाली व्यक्ति को चुना गया, जो स्वार्थी व घमंडी था, अतः सूर्य ने उसे स्वीकार नहीं किया। लोगों ने अंतिम कोशिश के लिए एक मुर्गे को चुना, जिसने बहुत विनम्रतापूर्वक पृथ्वी के पुनरुद्धार हेतु अपनी बात रखी और उसे सफलता मिली। शर्त यह थी कि मुर्गा लगातार तीन बार बांग देगा, तब अंधकार के बाद सवेरा होगा और सूर्य की जीवनदायिनी किरणें चमकेंगी। इस प्रकार मुर्गे को ज्योति के दूत के रूप में स्वीकार कर धार्मिक स्तम्भ पर स्थान दिया गया। इसके अतिरिक्त पेड़–पौधे, विशेषकर पीपल के पत्ते तथा केले के पत्ते धार्मिक महत्त्व रखते हैं। मान्यता है कि यात्रा के दौरान वृक्ष–पौधों ने मुर्गे का अतिथि सत्कार किया। एक छोटा पक्षी 'फ्रेइट' को आज भी सम्मान विशेषकर किसानों द्वारा दिया जाता है, क्योंकि उसने अंधकार को दूर करने का उपाय बताया था।

पशु–पक्षी, जलचर, पर्वत, नदियाँ सभी मानव की भांति संवेदनशील है, जो मानव की ही तरह कार्य करते हैं। वे समाज और संसार के निर्माण में अहम् भूमिका निभाते हैं। सताडगा हिमा राज्य, खासी प्रजातंत्र राज्य का पुरातन व शक्तिशाली राज्य की स्थापना 'का ली डोखा' की संतान ने स्थापित किया। ये 'ऊ वा रिंदी' तथा 'थवाई उमदी' नदी की सुनहरी मछली, जो मत्स्य कन्या थी, की संतानें हैं। कहा जाता है कि 'का ली डोखा' पुनरू लौट कर मछली के रूप में

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

नदी में चली गई। उसका दुखी पति मछली पकड़ने की वंशी को उलटा कर नदी के किनारे गाड़ दिया। आज तक उस किनारे के आस–पास बांस के झुरमुट उलटे ही उगते हैं।

कल–कल बहती हर नदी, झरने से जुड़ी लोककथाएं हैं, जो मानवीय मूल्यों की स्थापना करती है। चेरापुंजी का प्रसिद्ध झरना "नौ–का–लिकाई' का लिकाई' की दर्द भरी दास्ताँ सुनाता है। वहाँ की विरानगी यह बताती है कि आत्महत्या करना और उसे होते देखना दोनों ही पाप है। इसी प्रकार 'का–शी–की' दो पुत्रियों 'का निमलांग' और 'का फनालंग' नदियों के उद्‌गम , उनका अलग–अलग दिशाओं में बहना और 'थोनागिर' में मिलना तथा बंगला देश तक पहुँचने की रोचक कथा है। ध्यातव्य है कि जहाँ मेघों का डेरा है, वर्षा रूपी अमृत बून्दों को सहेज कर लोगों तक पहुँचाने के लिए प्रकृति ने नदियों का जाल भी दिया है मेघालय की दूसरी बड़ी नदी उम्न्गोत को देश की सबसे स्वच्छ नदी का स्थान प्राप्त है, इसके जल की पारदर्शिता, इसकी स्वच्छता का प्रमाण है। यह मेघालय की राजधानी शिलांग से 85 कि.मी. दूर भारत–बांग्लादेश सीमा के निकट पूर्वी जयंतिया पहाड़ी जिले के दावकी कस्बे के बीच बहती है।

भारत की नदियों की भाँति इन नदियों से जुड़ा मिथक कई वर्षों पुराना है, जो इनके उद्‌भव की कथा एवं इतिहास बताता है एवं आस्था से जुड़ा है। ये दोनों नदियाँ शिलांग के देवता 'उ लेई श्यल्लोंग'' की जुड़वा बेटियाँ 'का उमिएव और का उम्न्गोत' थीं। दोनों देव पुत्रियाँ होने के कारण अत्यंत सुन्दर और आकर्षक थीं, जिसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता था। का उमिएव बड़ी बहन थी और अधिक बुद्धिमान, जिद्दी एवं बुरे स्वभाव वाली थी। वह अपनी बात को मनवाने के लिए चिल्लाती थी। यहाँ तक कि अपनी छोटी बहन का उम्न्गोत पर भी हुक्म चलाती थी जबकि छोटी बहन अपने विनम्र, शांत एवं प्रसन्नचित्त स्वभाव के कारण जानी जाती थी। वह बिना कुछ कहे चुपचाप अपनी बड़ी बहन की बात मान जाती थी। एक दिन सूर्य की रोशनी में चाँदनी के समान दूर से चमकती बंगला देश की झीलों को देखकर बड़ी बहन ने वहाँ तक दौड़–प्रतियोगिता की जिद की और हमेशा की तरह छोटी बहन को मना लिया। अपने स्वभाव के अनुसार बड़ी बहन घमण्ड में शिलोट जल्दी पहुँचने के लिए उसने सबसे छोटे रास्ते की खोज में वह पहाड़ों, घाटियाँ और जंगलों से गुजरी। रास्ते

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

में आने वाले बड़े–बड़े पत्थरों को तोड़ती हुई, बड़े–बड़े पेड़ों को उखाड़ती हुई, गहरी घाटियों के ऊपर कूदती और मैदानों को खोदती हुई चल पड़ी। शक्तिशाली होने के बाद भी ये सब करने में बहुत शक्ति और समय लग गया क्योंकि उसने जो रास्ता उसने चुना था, उसमें पग–पग में बाधाएँ थीं। इस प्रकार जब वह लुड़कती हुई शिलोट के निकट शैला पहुँची तो उसने देखा कि का उम्न्गोत उससे पहले ही पहुँच गई थी। जबकि अपने शांत एवं विनम्र स्वभाव के कारण उम्न्गोत ने यात्रा के लिए सीधा और सरल रास्ता चुना, जिसमें हल्के मोड़ थे यद्यपि वह लम्बा रास्ता था। वह आराम से अपनी यात्रा तय करती हुई बंगलादेश के शिलोट नामक स्थान पहुँची, जहाँ दोनों बहनों ने मिलने का स्थान निश्चित किया था। अपनी बड़ी बहन को वहाँ न पाकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उधर छोटी बहन को वहाँ देखकर का उमिएव अवाक् रह गयी। पहली बार अपनी कमजोर बहन से हारना उसके लिए असहनीय हो गया। यह सब भाग्य के खेल था। उसके अहम् (महव) को ठेस पहुँची। उसे लगा कि इस शर्मनाक हार के बाद वह संसार को अपना मुँह कैसे दिखाएगी ? 'वह कमजोर लड़की से हार गई। मैं कैसे जीवित रहूँगी ?', यह कहते हुए, अपनी किस्मत को कोसती और रोती हुई उसने अपने आप को जमीन पर जोर पटका कि वह पाँच शाखाओं में बंट गयी, जिन्हें द्वारा, उम्तंग, कुमार्जनी, पसबिरिया, और उम्तारासा के नाम से जानी जाती हैं। जब का उम्न्गोत को अपनी बहन के बारे में पता चली तो उसे बहुत दुःख हुआ। इस दुखद घटना के लिए उसने मन ही मन अपने को दोषी मानने लगी। उसने अकेले घर नहीं लौटने का निश्चय किया और सदा के लिए नदी के रूप में वहीं अपनी बहन साथ रह गई। इस प्रकार दो देवियाँ प्राणी जगत में नदियों के रूप बहने लगीं। वे नदियाँ लोगों के लिए तीर्थ बन गईं विशेषकर का उम्नोत, बड़ी नदी गैर खासी जनजातियाँ यहाँ धार्मिक अनुष्ठान आदि करते हैं। यह नदी पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षक का केंद्र है। इसका जल इतना पारदर्शी है कि इसकी सतह के सुन्दर–सुन्दर पत्थर देखे जा सकते हैं। इस प्रकार दोनों का बंगलादेश पहुँचने की दौड़ प्रतियोगिता मानवीय संवेदनाएँ जैसे– स्नेह, ईर्ष्या, साहस, लालसा और महत्वाकांक्षाओं को व्यक्त करती है और अंततोगत्वा नादोयों के रूप में परिवर्तित हो मानव–सेवा का सन्देश देती हैं।

इसी प्रकार सोहरा के नंग्ज्री गाँव के 'रन' नामक मछुआरे तथा निफ्फ नदी का सच्चा प्रेम उनके त्याग–बलिदान की भावना को दर्शित करता है। वही नदियाँ अब मौत बाँट रही हैं। एक–एक कर लुप्त हो रहीं हैं। मेघालय ने पिछले दो दशकों में कई नदियों को नीला होते फिर जलचर मरते हुए और अंत में गंदे नालों में या लुप्त होते देखा है। ध्यातव्य है नदी की सफाई करना यहाँ के खासी समुदाय को उनके पूर्वजों से परम्परा में मिला है। यह मिथक एक बहन का अपनी बहन के प्रति निश्चल प्रेम एवं त्याग का उदाहरण प्रस्तुत करता है। जो इनके पूर्वजों द्वारा स्थापित नैतिक मूल्यों एवं दूरदर्शिता का प्रमाण है। उम्न्गोत दावकी, दरांग और शेन्नानग्डेंग गाँव से होकर बहती है और नदी की सफाई का उत्तरदायित्व इन गाँव वालों का है। मौसम और पर्यटक की संख्या के अनुसार महीने में एक, दो और चार दिन सामूहिक सफाई अभियान होता है, जिसमें गाँव के हर घर से कम से कम एक व्यक्ति सफाई करने आता है। गन्दगी फैलाने पर 5000 रु. तक जुर्माना वसूला जाता है। उम्न्गोत नदी के पास के गाँव मवलिननांग में एशिया सबसे स्वच्छ गाँव है। यहाँ की जनजातीय संस्कार एवं परम्परा सम्पूर्ण देश के लिए आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जबकि पर्यावरण के प्रति इनके पूर्वज सदैव से सजग रहें हैं। वृक्षों की तेजी होती कटाई के बावजूद 'री हिम्युट्रीप ' हरियाली से भरपूर है। इनका सबसे प्राचीन वन 'हिमा मोफलांग' है। खासी मान्यता के अनुसार यदि कोई जानबूझकर धार्मिक पवित्रता का उल्लंघन करे या एक भी पत्ती तोड़े तो उसे 'ऊ बासा रिडक्यों' का क्रोध सहना पड़ता है। इनका विश्वास है कि 'ऊ बासा रिडक्यों' आस–पास के क्षेत्र के निवासी और पशुओं की रक्षा करते हैं। पवित्र वनों में धार्मिक अनुष्ठान किया जाता है। इनके पूर्वज इतने दूरदर्शी थे कि इन्हें भविष्य में मानव द्वारा प्रकृति के दोहन का अनुमान लगा लिया था, अतः मेघालय के कई वन क्षेत्र को पवित्र वन घोषित कर दिया। आज भी यह मान्यता है कि इन वनों से एक भी पत्ता और लकड़ी के टुकड़ा बाहर नहीं ले जा सकते हैं। अगर ले गए तो अशुभ होगा। इस प्रकार उन्होंने वनों को सुरक्षित किया। इसके अतिरिक्त 'ऊ सियेर लापलंग' बारहसिंघा हिरण की लोककथा खासी जनजाति में शोकगीत की परम्परा को परिष्कृत करने का कारण बनी। बाघ प्रजाति की बिल्ली अर्थात् 'का म्याऊं' का शहर में निवास करने का

कारण हो या का ब्लांग अर्थात् बकरी की कमजोरी हो या बंदर जाति का चालाकी से अपनी बहन को टाइगर की कथा हो या मोर के सुंदर पंखों का रहस्य हो, लगता है पूरी प्रकृति के ये जीवंत पात्र हों। प्रकृति मूल खासी लोक संस्कृति का अनिवार्य अंग है। प्रश्न है कि जब हमारे पूर्वज समस्त प्रकृति के प्रति इतने संवेदनशील थे, तो हम क्यों नहीं ? क्षरित होते पर्वत, दूषित होती नदियाँ, नष्ट होती प्रजातियों के प्रति गहरी चिता क्यों नहीं ? आज सम्पूर्ण पृथ्वी के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। ईश्वर ने हमें इतनी सुन्दर धरती दी थी और हम इसे क्या बनाते जा रहे हैं ?

सन्दर्भ :

1. Khasi Myths, Legends and Folk Tales : Bijoya Sawian : 2014 : Ri Khasi Press, Shillong : pg.   101, 99.
2. Around the Heart Khasi Legends : Kynpham Sing Nongkynth :2007 : Penguin Books, India : pg 58, 95
3. The Philosophy and Essence of Niam Khasi : Mr- J- Tariang : Ri Khasi Enterprise] Shillong : pg 10-11
4. मेघालय की लोक कथाएँ : डॉ अनीता पंडा, कलश प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002.

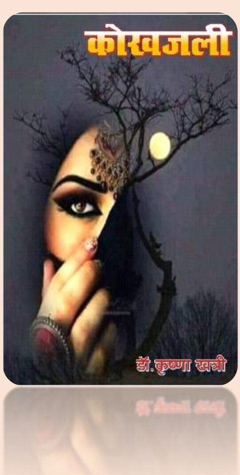

कोखजली

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-3-0

संस्करण : 2020, मूल्य : 150/-

व्यंग्य

सीताराम गुप्ता
ए.डी.–106–सी, पीतमपुरा, दिल्ली
srgupta54@yahoo.co.in

भाई साहब ने पूरे एक साल का वेतन छोड़ दिया और आपने...

देश में कोरोना का संकट जरूर है पर देश को इस संकट से उबारने के लिए अच्छे लोगों की भी कमी नहीं है। जब से पढ़ा है कि भाई साहब ने एक दिन का नहीं, एक महीने का नहीं अपितु पूरे एक साल का वेतन छोड़ने की घोषणा की है मेरी खुशी का पारावार नहीं। पर इस खुशी के साथ–साथ मुझे इस बात की बड़ी चिंता हो गई है कि भाई साहब ने पूरे एक साल का वेतन छोड़ने की घोषण तो कर दी पर साल भर तक भाई साहब के घर का खर्च कैसे चलेगा ? पता नहीं आपको पता है कि नहीं भाई साहब का सालाना वेतन पंद्रह करोड़ रुपए है। कई बार मन में सवाल उठता है कि भाई साहब इतने पैसों को खर्च कैसे करते होंग`? क्या–क्या खरीदते होंगे। मेरी इस जिज्ञासा पर एक मित्र बोले भाई पंद्रह करोड़ में से पांच करोड़ तो आयकर में ही चले जाएंगे। बाकी दस करोड़ ही तो बचे बेचारे के पास। भाई दस करोड़ भी कम नहीं होते। इतना वेतन है तो खर्च भी कम नहीं होगा और ऐसे में साल भर बिना वेतन के काम कोई बड़े हौसलेवाला ही कर सकता है। भाई साहब देश में उपस्थित संकट

को लेकर इतने चिंतित हैं तो हमें भी भाई साहब की कम चिंता नहीं है। वैसे भी हम और कुछ कर सकें या न कर सकें चिंता तो कर ही सकते हैं।

अब एक सवाल और मन में बार–बार उठने लगा। मन है तो सवाल तो उठेंगे ही चाहे उनका कोई समाधान करे या न करे, कोई जवाब मिले या न मिले। पूछा भाई साहब को वेतन कौन देता है? जवाब मिला, ''भाई साहब को वेतन कौन देगा? भाई साहब तो खुद मालिक हैं। वे ही हजारों–लाखों को वेतन देते हैं।'' फिर एक और प्रश्न देश में व्याप्त महंगाई की तरह मन में उछलने लगा? जब भाई साहब खुद ही मालिक हैं तो एक साल तक वेतन कैसे छोड़ेंगे? वो वेतन कहां जाएगा? क्या उनके वेतन छोड़ने से वो देश के रिलीफ फंड में चला जाएगा? भाई साहब ने तो कंपनी के दूसरे लोगों का वेतन काटने की भी घोषणा कर दी है। क्या उनका कटा हुआ वेतन भी देश के रिलीफ फंड में चला जाएगा? ''अब मुझे क्या पता जाएगा कि नहीं!'' मित्र ने झुंझलाते हुए कहा। तो भाई साहब ने ऐसे क्यों नहीं कहा कि मैं अपना एक साल का वेतन देश के रिलीफ फंड में दे रहा हूं। यदि ये पैसा देश के रिलीफ फंड में नहीं जाएगा और भाई साहब भी नहीं लेंगे तो सरकार को तो कर भी नहीं मिलेगा।

जब भाई साहब ने एक साल का वेतन छोड़ने की घोषणा की है तो कुछ सोच–समझकर ही की होगी। किसी न किसी को तो फायदा होगा ही। फायदा चाहे किसी को हो जीडीपी तो देश की ही बढ़ेगी ना? अब चाहे वो राशि देश के रिलीफ फंड में जाए या नहीं भाई साहब को तो मिलने से रही। इसी बात की मुझे सबसे ज्यादा चिंता है। यहां वेतन न मिलने की बात छोड़िए दो–चार दिन वेतन देर से मिले तो भी लेने के देने पड़ जाते हैं। दूध और राशन वाला सामान देने में आनाकानी करने लगते हैं। भाई साहब कैसे चलाएंगे पूरा एक साल बिना वेतन के ये सोच–सोचकर ही दिल बैठा जा रहा है। घर में क्या नहीं चाहिए? आटा, दाल, चावल, फल, सब्जियां, दूध, घी सब कुछ तो चाहिए रोज और ऊपर से हर चीज के दामों में आग लगी हुई। ऐसे में साल भर तक घर चलाना कैसे संभव होगा ये सोचकर ही मेरे तो हवास फाख्ता हुए जा रहे हैं। अब भाई साहब बड़े कारोबारी आदमी हैं तो हर रोज किसी न किसी से मीटिंग भी होगी ही। अब नहीं तो लॉकडाउन समाप्त होने के बाद तो जरूर होंगी।

माना कि अपने घर के हवाई जहाज और हेलिकॉप्टर हैं पर क्या उनमें तेल नहीं भरवाना पड़ता? अब आटा–दाल तो चलो किसी पड़ौस की परचून की दुकान से उधार मिल जाएगा पर तेल? तेल के लिए तो रोज नकदी चाहिए ना।

भाई साहब बिना वेतन के कैसे सारे साल आकाश में उड़ेंगे ? गाड़ियां भी बेशक करोड़ों की हों लेकिन तेल के बिना वे भी चलने से मना कर देंगी। और बिना वेतन के तो सौ–पचास रुपल्ली का तेल डलवाना भी संभव नहीं। लेकिन बड़े आदमियों की खासियत होती है कि वे मुसीबत में भी कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेते हैं। एक बार मित्र कहने लगे कि भाई इनके पास जितने कारखाने हैं अगर मेरे पास हों तो मैं इनसे ज्यादा पैसा कमाऊं। वो कैसे? ये पूछने पर बोले, ''कारखानों से जो कमाई होती है वो तो होगी ही पार्ट टाइम कुछ ट्यूशन भी तो कर लूंगा। पर ये बड़े लोग पार्ट टाइम भी तो कुछ नहीं कर सकते जो ऊपर का मोटा–मोटा खर्च ही निकल आए। ये तो खुद नौकर–चाकरों की फौज रखते हैं। हाथ धुलवाने के लिए अलग आदमी तो तौलिया पकड़ाने के लिए अलग आदमी। इस फौज को भी तनख्वाह तो देनी होगी न। घर भी इतना बड़ा कि कई झाड़ू रोज टूट जाएं। इस लंबे–चौड़े खर्च के बारे में सोचकर ही दिल जोर–जोर से धड़कने लगता है। लेकिन सबको तनख्वाह देंगे और समय पर देंगे। बड़े आदमियों की खासियत होती है कि वे खुद भूखे बैठे रहेंगे लेकिन नौकरों को कभी भूखा नहीं रखेंगे। खुद फटे–पुराने पहन लेंगे लेकिन नौकरों को कपड़ों की कमी नहीं होने देंगे। ये तो हमारे जैसे छोटे आदमी होते हैं जिन्हें अपना पेट भरने के अलावा किसी की फिक्र नहीं होती और दो–चार दिन भूखे रहना तो दूर दो–चार दिन तनख्वाह मिलने में देर हो जाए तो आसमान सिर पर उठा लेते हैं।

कृष्णा की कलम से...

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-4-7

संस्करण : 2020, मूल्य : 150/-

प्यार या भ्रम

सच्चा प्यार मिल जाए तो जिंदगी गुलजार हो जाती है
सच्चा हमसफर मिल जाए तो सफर आसां हो जाती है।
जिसे मैंने प्यार किया, वो हमसफर भी बना
न तो जिंदगी गुलजार हुई और न सफर आसां हुआ।
उसने न तो कभी सच्चा प्यार किया
और न ही हमसफर बनने की कोशिश की
क्योंकि
जिस्मानी रिश्तों को ही समझता रहा प्यार
अगर जिस्मानी रिश्ते ही होते प्यार,
तो बार.बार न कहता ले लो 'तलाक'
चली जाओ मेरी जिंदगी से सदा के लिए,
बच्चों के लिए करता रहा अब तक बर्दाश्त
नहीं तो कबके तुम्हारी जगह दिखा दिए होते।
मेरे साथ रहना है तो तुम अपनी सोच व बोली
यहाँ तक कि सांसों को भी मेरे हवाले कर दो।
सिर्फ तुम मेरी सुनो, बोलो बिल्कुल नहीं
मैं जो कहूँ उसमें हामी भरती रहो।
तभी मिलेगा तुम्हे मेरा प्यार
तभी पा सकोगी जन्नत में मुझे।
नहीं तो दुनिया व आखरत
दोनों ही जहन्नम बनेंगे।
मैं सोचती हूँ कि जिसे मैंने
सच्चा प्यार समझकर सालों अपना दिया,
वह तो कभी था ही नहीं अपना।
प्यार तो दूर, उसने इन्सां तक न समझा।
मैंने सुना हैय साथ रहने पर
जानवरों से भी हो जाता है प्यार
पर मैं तो जानवर भी न बन सकी,
क्योंकि
इतने सालों साथ रहने पर भी न हो सका उसे प्यार।
मैं भी कितनी पागल थी, जिसे मैं समझती रही प्यार
वो तो सिर्फ मेरा भ्रम था।

डॉ. शबनम तब्बसुम
shabnamtabssum1980@gmail.com

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

कभी सुध नहीं ली उन्होंने

कभी सुध नहीं ली उन्होंने
नदियों की
पानी अभी तक पहुँच पाया है महासागरों में या नहीं
नहरें हैं अभी भी जल से लबालब या नहीं
कुएँ हरे–भरे हैं या नहीं
तालाबों की स्थिति क्या है
या आज पड़ोस में किसका ब्याह है

कभी सुध नहीं ली उन्होंने
अपने साथियों की
जो हाइवे के आसपास से उजड़ते गए
जब कभी जाने–पहचाने चेहरे
सामने से गुजरते गए

कभी सुध नहीं ली उन्होंने
किसी चिट्ठी की
जिस मिट्टी में पैदा हुए उस मिट्टी की
पेड़ पौधों हवा धूप बरसात की
बंद चूल्हों की
तवा की
दिन या किसी अँधेरी रात की

कभी सुध नहीं ली उन्होंने
शहर में बस जाने के बाद गाँव की
गाँव वालों की
दुख में घिरे अपने माता–पिता बहन भाई की
साफ–साफ कह दिया था–
नहीं रखना है रिश्ता तुम गँवारों से
जिस दिन छोटी बहन की सगाई थी

हाँ!
कभी सुध नहीं ली उन्होंने।

खेमकरण 'सोमन'
khemkaransoman07@gmail.com

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

एक स्त्री को समझते हुए

रोहित प्रसाद पथिक
poetrohit2001@gmail.com

लिखावट सी महीन
त्वचा सुन्दरता से भरपूर
लिखती हो काजल की कालिख से कविताएँ
सच कहूँ तो
तुम स्त्री ही हो सकतीं हो।

विचारणीय होतीं हैं, तुम्हारी सोची हुई हर बातें
क्योंकि
हर बात में उपस्थित हो
तुम, तुम्हारी जीभ, आवाज और होठों से निकली भांप

सच कहूँ तो
लगता है कि इसी भांप से
तुम सेंकती हो तपती भट्टी पर रोटियाँ

हाँ! तुम ही हो जन्मदात्री
जिसने इस पृथ्वी को जन्म दिया है
जन्म दिया है
हमेंए वनस्पति व जीवों को
इस धरती के सुख–दुखों को

पहचाना मैं
भूल गया था तुम्हें
जान पाया हूँ
अर्द्ध उम्र के बाद...

सच कहूँ तो
अवश्य मैं तुम्हें
और भी जानना चाहता हूँ कि
तुम अभी भी कहीं न कहीं
शेष बची हो,

मेरे अंदर
इस धरती के अंदर
ब्रह्माण्ड के अंदर
चारो धामों के अंदर
सिंदूर से लेकर सफेद रंगों के अंदर...!

जिसे मैं जानना चाहता हूँ कि
एक स्त्री को पहचानने के लिए
क्या हर पुरुष को भी कभी स्त्री होना चाहिए!

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

अधूरा चुम्बन

एक कवि की पहली किताब में
रूठे दोस्त का जिक्र
उस पर कई नज़्में
और आखरी किताब में
उस किरदार की कहानी का विस्तार,
इन सबके बीच प्रतीक्षा करता हुआ,
दोनों के समय अंतराल में
यात्रा करता है– अधूरा चुम्बन

गहरा प्रेम करती स्त्री
उसके प्रेम को कामवासना में
तौलता हुआ पुरुष,
दोनों अलग ग्रहों के निवासी
फिर उनका जिस्मानी मिलन,
ऐसी परिस्थितियों के बीच
तैरता है– अधूरा चुम्बन

पहले चुम्बन के बाद
मिले कई चुंबन
लेकिन पहलेपन का
वो अहसास शेष नहीं।
फिर भी संघर्ष में डूबते प्रेम को
निचोड़कर ओढ़ लेनाए
तब देह पर मैल की तरह
उपस्थित रहता है. अधूरा चुम्बन

जिया हुआ प्रेम
जो अमृता ने साहिर से
इमरोज ने अमृता से किया
वो संतृप्ति नहीं थी
वहां न तृप्त होने की ख्वाहिश थी
न दर्द बढ़ने की गुंजाइश
वहीं सूखकर अमर हुआ– अधूरा चुम्बन

तान्या सिंह
a.tnya.it@gmail.com

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

मौन की उड़ान

उस पंछी के 'पर' दो हैं,
पर उड़ना उसने सीखा नहीं।
चहकती रहती मौन ही मौन,
पर बोलना उसके बस का नहीं।
सरल, सुशील, जटिल कभी,
और अंदर–बाहर मोह में फंसी।
कभी ऊचें सपनो की उड़ान भरे,
पर बदले उसके कौन त्याग करे।

मिली उसे एक नाम 'स्त्री'

स्त्री की एक कपोत सखी,
पीड़ा उसकी भी एक जैसी।
एक मौन पिंजरे में कैद,
तो दूसरी स्वतंत्र नहीं।
छोड़कर पिंजर वो कैसे जाय,
जग के रस्म जब यहीं निभाय।
कहने को तो आधुनिक समय के साथ चले,
पिंजरे की खिड़की खोल खड़े।
दोनो की कुण्ठा क्यूँ एक–सी,
पुछे ये सवाल हर एक 'स्त्री'।

स्नेहलता
ssneha.di@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

स्त्रीवादी कविता

कविता बदलने लगी अपना कलेवर,
अपना भाव अपने शब्द,
साथ ही बदलने लगी कवियों की मानसिकता।

स्त्रीवादी कविता के लिए होड़ लगी है स्त्रियों में ही
कितनी नग्नता परोस सकती हैं वो
खुद पर होने वाले शोषण को
लिखकर लेखनी के माध्यम से
शरीर के भूगोल और उच्चावच को मापने में भूल गयी
वो प्रदर्शनी नहीं, न ही बाजार में बिक रही वस्तु
भौंडे, अश्लील द्विअर्थी बातों से
नहीं बदल पाएगी सदियों से चली आ रही स्त्री दासता
पुरुषों के द्वारा लिखा गया उनका भाग्य।

शरीर के अवयवों की प्रदर्शनी लगाने और
उनकी उन्मुक्त परिभाषा से
स्त्रियां बस छली जाएंगी, और
और उन अबोध, अशिक्षित अबलाओं पर
बढ़ता जाएगा भार दासता और शोषण का।

समाज के सदियों से बंधे नियमों की जंजीर खोलने को
बनाना पड़ेगा एक हथौड़ा
जो बना होगा स्त्री के अधिकारों के अलख से
हथौड़े को बनाने के लिए
जलानी पड़ेगी मशाल शिक्षा की
जिसकी रोशनी में सदियों से दबी कुचली स्त्रियों
के हक की बात की जाएगी।

बनाओ मशाल जन जागृति की
पलीता लगाओ उसमे सदियों से एक ही बिंदु पर
रुक चुकी स्त्री की बंदिशों की,
जब जलेगी आग उसमे शिक्षा की
इस नव अलख की मशाल
जला देगी सदियों से स्त्रियों के लिए बनी ऊंची
कठोर नियमों के लकड़ी की बनी दहलीज
टूट जाएंगी जीर्ण–शीर्ण परम्पराएं
खुली हवा में सांस लेंगी स्त्रियां
लैंगिग असमानता से परे
बस मनुष्यता होगी
प्रेम होगा, और होगी
धवल, निर्मल, मुक्त
स्नेह की सृष्टि।

संगीता पाण्डेय
ranusangeeta22@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

यादें

सुनो, क्या तुमने भी किसी पुराने संदूक में
यादों को सजा रखा है सीप में बंद सा,
पर हर बूँद मोती नहीं बन पाती
वो सड़ीं गली यादें निकल जब तब
तुम्हारी रूह की पेरहन पर
पाँव रख घसीट लेती है
ना जाने कितने साल पीछे और
छलनी करती तुम्हें
तुम्हारी हर साँस पर भारी जैसे
कोई कर्ज रखा हो
कितनी रातें छटपटाहट में गुजारते हो
अधखुली आँख में भीनी हँसी
जो झाँकती है दुर्ग से
वो भी सिमट डर जाती है
क्यूँ नहीं उतार देते अपनी आत्मा से ये कर्ज
खोल दो उस संदूक का ताला
निकल जाने दो उन बेबस यादों को
मुक्त कर दो, माफ कर दो इनके साथ जुड़ी हर एक तिड़कन
देखो कितना हल्का महसूस होगा
और माफी माँग लो उन सबसे जिनके दिलों को
कभी तुमने घायल किया था
और दिल के दरवाजे पर दस्तक देती मुस्कराहट का
स्वागत करो, मुस्कुराओ
जीवन मुस्कुराने के लिए है, नहीं मिलता दोबारा
खोल दो गिरह दिल की, आत्मा मुक्त कर दो
देखो नया व्योम जो प्रतीक्षा में खड़ा है बाँह पसारे
बढ़ चलो उस ओर!

सवि शर्मा
usavisharma@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

इक दर्द!

मरना अब आसान है
मरने के लिए पार नही करनी पड़ रही अब
उम्र की दहलीज
बस होनी चाहिए व्यवस्था
बनना चाहिए माहौल
खड़े हैं कतार में लोग
निराश एक रोदन में!
जिस दिन जिसकी ड्यूटी खत्म होगी
वे भी हो जाएंगे खत्म
मायूसी बिखड़ी पड़ी है चारो ओर
बन रहा है तमाशा सन्नाटे में
शहरों में जल रही है लाइट्स
हो गई है चकाचौंध
सिवाए उस घर के
जँहा का एक दिया अब बुझ गया था
मैंने सुनी एक खबर
जिसमे सौ मजदूर भूख से तड़प कर
मर चुके थे
जिसमे डेढ़ साल की बच्ची मरी हुई
माँ के सीने पर लोट रही थी
मैंने देखी एक खबर
जिसमे लाखों की संख्या में लावारिश लाश
निकाले जा रहे थे!!
और देख पा रही हूँ उस घर को भी
जिसके चौखट पर
यमदूत घंटियाँ बजा रहा है
वह जो कराह रहा है दर्द से
फिर भी कह रहा है छोड़ दो!
मैं जीना चाहता हूँ
रास्ते अभी खत्म नहीं हुए मेरे
वो भय जो साक्षात है
जो हो रहा है प्रतयक्ष लगातार
वो महज इक दर्द है!!

पूजा
09poojasingh@gmail.com

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

बहुत कुछ लिखना शेष है!

बहुत कुछ लिखना शेष है!
चाहता हूँ उन सब पर लिखूँ
जो कभी मखमली चद्दर पर न सोएं हो
न ही उन्हें रातों में आते हो रेस्त्रां में खाने के सपने
मेरे शब्दों में समाया हो सत्य का प्रतिमान
शब्दों से करना चाहता हूँ आह्वान
उन दबे कुचले लोगों का
लिखना चाहता हूँ दास्तान
कहना चाहता हूँ शब्दों से
उनका भूत भविष्य व वर्तमान
जिनके पैर पत्थरों से कुचलकर
बना दिए जाते हैं पंगु
जिनके मस्तिष्क में अभिशप्त लावा
ढूँस ढूँस कर भर दिया जाता है
कि आने वाले कई वर्षों तक
वैसे ही बने रहे लाचार
सिर्फ अपने वोट देकर बनाते रहें सत्ता
परिवर्तन के कभी न आए उन्हें विचार
मैं जब तक रहूँगा लिखता रहूँगा
अपने शब्दों से उनके अंदर
जगाऊँगा ज्वालामुखी
जो फट कर कर दे तहस नहस
और हो जाए परिवर्तन
उस निरंकुशता व अन्नाय के खिलाफ
जो सदा ही रोकते हैं रास्ते
उन दीन हीन वंचित लोगों को आगे बढ़ने से
न कर सका ऐसा तो निश्चित ही
अगले जन्म में फिर कवि ही बनूँगा
फिर से उनके लिए लड़ाई लडूँगा

देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
laldevendra706@gmail.com

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कविता

प्यास

प्यास बुझानी है
ये रही लड़कियाँ... छांट लो

अच्छा,
ये मासूम हैं भोली हैं
चलो फसाओ इसे जाल में
फिर पहले खुद प्यास मिटाओ...
जब मन भर जाए दोस्तों में बांट लो!!

जब लड़की बोलने लगे गलत हैं
मत खेलो मेरे साथ!!

एक काम करो
उसकी कमजोरी पकड़ो
ओह!
इज्जत...
समाज में बताओ
चरित्रहीन उसे
उसकी इज्जत दो कोड़ियों में बांट दो!!

डिंपल राठौड़
dimplerathore1177@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

रावण

मैं पुलस्त्य ऋषि का पौत्र,
पुत्र विश्रवा ऋषि का।
परम शिव भक्त,
था महाप्रतापी योद्धा।
शास्त्रों का प्रखर
विद्वान पंडित एवं महाज्ञानी।
शासनकाल में मेरे,
लंका का वैभव था चरम पर,
लंका को सोने की लंका कहें।

वाल्मीकि ने कहा अधर्मी,
धर्म व्यवस्था तोड़ने वाला।
देव, असुर, मनुष्य–कन्याओं
को हरने वाला।
तुलसीदास जी ने कहा
अहंकार मेरा अवगुण था।
रावण ने हठ पूर्वक
बैर मोल लिया,
पता था, प्रभु (विष्णु) ने ही
अवतार लिया,
उनके बाणाधात से प्राण त्याग
भव बंधन से मुक्त हुआ।
विभिन्न लोगों ने विभिन्न बातें कहीं।
क्यों मुझे सजा मिली, इतनी बड़ी ?

प्रत्येक वर्ष कागज का रावण
बना, देते हो फूँक।
अपने मन में बैठे रावण को
मारने में जाते हो चूक।
करते छल इतने, करते पाप
और भरते हो दंभ।
नीचता इतनी मनुष्यों में,
कर सकूँ खुद पर गर्व।

हर साल जला कर,
क्यों देते हैं मुझे कष्ट।
जला दी समस्त संसार की
बुराई, मनाते ऐसा जश्न।
क्या खुद को समझते हो
मर्यादा पुरुषोत्तम राम?
अवगुण अहंकार की
मिली, इतनी बड़ी सजा।

ये भ्रष्ट नेता, करते मेरा
दहन, कौन दूध का धुला?
मुझे जलाते, ये लोग
कितना कुकर्म स्वयं किये।

नीना सिन्हा
maurya.swadeshi@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

प्रश्न मेरे

प्रश्न मेरे,
कठिन हैं जरा,
क्यूँ भला,
ईमानदार हैं इसलिए।

जवाब जरा मुश्किल हैं,
क्योंकि तपे हैं गर्मियों की दोपहर में,
नंगे पैर चले हैं पैर छीलती सड़कों पर,
भूखे सोये हैं कई रात झोपड़ियों में,
और तब
मेरे प्रश्नों ने मधुरता खो दी है,
क्योंकि इन्हें चाशनी में लिपटे वादे तो मिले हैं,
किन्तु वादों के बाद मिला है कसैला धोखा,

ये प्रश्न किसी भरे पेट वाले मृदुभाषी के नहीं,
बल्कि रोटी के लिए बिलबिलाते बच्चे के पिता,
मजदूर, किसान के हाथों के छालों के हैं,
अनन्त काल से पूछे गए सवाल,
बिना जवाब के लगातार,
इसलिए
जरा कटु हो गए हैं मेरे प्रश्न...

डॉ. प्रशांत द्विवेदी
Pd861975@gmail.com

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

कृति–चर्चा

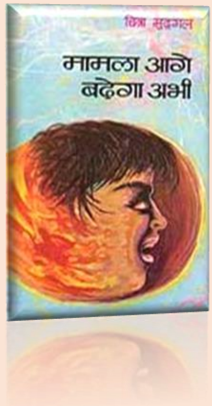

महानगरीय जीवन की एक कटु सच्चाई

पुलकित खन्ना
pulkitkhanna76@gmail.com

सुप्रसिद्ध कथाकार चित्रा मुद्गल जी ने जब भी लिखा हिंदी कथा साहित्य में एक नया ही मार्ग प्रशस्त किया। इनकी कहानियाँ सामान्य लोगों के अभावों, पीड़ा, वात्सल्य और सामंती मूल्यों को खंडित करने वाली कहानियाँ है– चाहे पैसों की कमी के कारण अपने मरते हुए जानवर का सौदा करने वाले असलम की कहानी 'जिनावर' हो, छोटी सी उम्र में तरह–तरह की यातनाएं सहने वाले छटंकी की कहानी 'बेईमान' हो, अपने बच्चों के ठुकराए हुए वात्सल्य से परिपूर्ण सचदेवा और चेटर्जी दी की कहानी 'गेंद' हो या फिर सामंती मूल्यों पर गहरा कटाक्ष करने वाली चित्रा की कहानी 'डोमिन काकी' हो। इसी तरह चित्रा जी ने महानगरीय नौकर और मालिक या बल्कि यू कहें की समाज के दो वर्गो– एक संपन्न वर्ग और दूसरा बुनियादी आवश्यकताओं से भी महरूम वर्ग को केंद्र में रख कर "मामला आगे बढ़ेगा अभी" कहानी लिखी है।

कहानी सपनों की नगरी मुंबई की एक आवासीय सोसाइटी की है। जिसमें हर प्रकार से संपन्न परिवार रहते हैं। इसी सोसाइटी में एक वॉचमैन है तावड़े जो वॉचमैन कम इन मकानों के लिए नौकर–चाकर अरेंज करने वाला ज्यादा है। इसी क्रम में सोसाइटी में रहने वाले सक्सेना जी को एक कार धोने वाले व्यक्ति की आवश्यकता होती है जिसके लिए वह

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

तावड़े को कहतें हैं। इसी सबके बीच तावड़े की चप्पल टूट जाती है जिसे बनवाने के लिए वह मोची के पास जाता है। उस मोची के पास ढंग के कोई औजार नहीं होते, वह बस जैसे–तैसे कुछ चीजों को जोड़कर मोचीगिरी कर रहा होता है। मोची काफी वृद्ध व शारीरिक रूप से कमजोर व परेशान होता है। उसकी यह स्थिति देख कर तावड़े उनसे उनकी परेशानी का कारण पूछता है। मोची बताता है कि उसका एक नाती (मोट्या) है जिसके पास कोई काम–धंधा नहीं है उसी की चिंता और अपनी उम्र के कारण उसकी यह स्थिति है। तावड़े वृद्ध मोची की सहायता करता है और उसके नाती मोट्या को सक्सेना के यहां गाड़ी धोने के काम पर लगवा देता है। सक्सेना मोट्या को इस शर्त पर अपने यहां काम पर रखता है कि वह टाइम का पाबंद होगा, रोजाना उनकी टोयोटा गाड़ी को अच्छी तरह से धोएगा और बिना सक्सेना को बताए किसी और की गाड़ी धोने का काम नहीं पकड़ेगा। इसकी एवज में सक्सेना मोट्या को कई प्रलोभन देता है।

मोट्या खुशी–खुशी काम पकड़ लेता है और रोजाना अपने सारे काम निपुणता से करता है। अपनी इसी निपुणता के कारण वह मिसेज सक्सेना का खास सेवक हो जाता है और गाड़ी धोने के बाद मिसेज सक्सेना के सभी काम करता है। असल में मोट्या बिना माँ का बच्चा होता है और उसे मिसेज सक्सेना में वह मातृत्व और वात्सल्य दिखता है जिसकी कमी हमेशा से ही उसके जीवन में रही है। मोट्या मिसेज सक्सेना को अपनी माँ समझने लगता है और कई बार उन्हें माँ कहकर भी पुकारता है। मिसेज सक्सेना मोट्या से अपने सभी काम करवाती है– घर के, बाहर के यहां तक की दारु, सिगरेट लाने तक के कार्य भी मोट्या ही करता है इस सभी की एवज में मिसेज सक्सेना मोट्या को बख्शीश देती है। वही मिस्टर सक्सेना काफी घमंडी, बनावटी व झूठी शानो–शौकत में जीने वाला व्यक्ति हैं। उसे हमेशा सारी सोसाइटी से पहले और सभी की गाड़ियों से ज्यादा चमकती हुई अपनी गाड़ी चाहिए होती है, उसे अपनी पत्नी की छोटी गाड़ी में बैठना हरगिज गवारा नहीं है,शादी के बावजूद भी उसका दूसरी औरत से रिश्ता है जिस कारण उसके अपने बीवी से संबंध काफी बिगड़ चुके हैं और लगभग रोजाना उन दोनों के बीच लड़ाई झगड़े होते हैं। मोट्या को यही लगता है कि इन्हीं सब झगड़ो और साहब के बाहरी रिश्ते के कारण मैडम परेशान रहती है और दारू पीती है। इसी सबके बीच मोट्या तबीयत खराब होने की वजह से सात दिन काम पर नहीं आ पाता। तबीयत ठीक होने पर वह पुनः काम पर आ जाता है लेकिन मिस्टर सक्सेना को मोट्या की अपनी पत्नी के प्रति वफादारी व समर्पण पसंद नहीं आता और वह मोट्या को अपनी प्रेमिका के यहां काम करने को कहता है जिससे मोट्या साफ इंकार कर देता है।

महानगरों में कुछ अपवादों को छोड़कर नौकर मालिक के लिए तब तक ही वफादार और प्रिय होता है जब तक की वह मालिक का हर हुक्म माने और जब वह मालिक की कहीं कोई भी बात मानने से इंकार कर देता है तो वह एहसान फरामोश और प्रताड़ना का अधिकारी हो जाता है। इसी के साथ महानगरीय जीवन में नौकर चाहे कितना भी ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ क्यों ना हो वह मालिक के लिए हमेशा नौकर ही रहता है, लाख जतन करने पर भी वह कभी परिवार का हिस्सा नहीं बन पाता। इन दोनों ही बातों को कहानी में लेखिका ने साफ–साफ दिखाया है– जैसे ही मोट्या सक्सेना की बात मानने से मना करता है तो सक्सेना तिल–मिलाकर उसे काम पर से निकाल देता है और साथ ही वह उसकी तनख्वाह से भी 7 दिन के पैसे काट लेता है। जब मोट्या इसका विरोध करता है तो सक्सेना उसे मार कर घर से बाहर निकाल देता है। वही दूसरी ओर मिसेज सक्सेना जिसे मोट्या अपनी माँ समान मानता है वे वहीं खड़ी यह पूरा तमाशा देखती है पर अपने मुंह से एक शब्द नहीं कहती, कल तक जिस बालक को वह गोद लेने की बातें कर रही थी आज उस बालक को बिना वजह पिटता हुआ देखकर उसके कंठ से एक शब्द नहीं फूटता...।

"मामला आगे बढ़ेगा अभी" कहानी का वैचारिक आधार बेहद मजबूत है। यह मोट्या किसी भी प्रकार के द्वंद या पशोपेश में नहीं है। बात चाहे नौकरी करने की हो, नौकरी छोड़ने की हो या फिर अपना गुस्सा उतारने की। मोट्या हर जगह अपने फैसलों पर अटल रहता है और यही इस कहानी का एक मजबूत पक्ष है। चित्र जी ने मोट्या के किरदार को महज जुल्म सहने वाला किरदार ही नहीं बल्कि उस जुल्म का प्रतिकार करने वाला किरदार भी बनाया है। यह कोई दिखावे का या फिर कोरा विरोध नहीं है। मोट्या को इस विरोध का अंजाम पता है और कहानी के अंत में इस विरोध की सजा उसे मिलती भी है लेकिन इस सबके बावजूद मोट्या अपना गुस्सा अपना विरोध सक्सेना की गाड़ी को बुरी तरह तोड़कर दर्ज कराता है। यहां पर एक बात और दर्ज करने वाली है कि मोट्या का गुस्सा या विरोध सक्सेना के किए गए अमानवीय व्यवहार पर ज्यादा नहीं है बल्कि उसका गुस्सा और विरोध मिसेज सक्सेना के बर्ताव को लेकर है कि जिसे उसने अपनी माँ समान माना, उसने एक बार भी मोट्या पर होने वाले अमानवीय व्यवहार को नहीं रोका परंतु यह सब होने पर भी मोट्या के मन में मिसेज सक्सेना के प्रति आदर और सम्मान कम नहीं होता। जब मोट्या गुस्से में आकर गाड़ी को तोड़ रहा होता है तो वह किसी के भी काबू में नहीं आता परंतु मिसेज सक्सेना के सामने आते ही वह शांत हो जाता है और अपने हाथ से वह रोड छोड़ देता है। यह मिसेज सक्सेना के

प्रति उसकी कृतज्ञता ही है कि वह इतने गुस्से में होने के बावजूद भी मिसेज सक्सेना के सामने आते ही शान्त हो जाता है। कहानी कहीं पर भी सत्यता से नहीं हटती जैसे ही मोट्या शांत होता है वहां जमा सारे लोग उसे पीटना शुरू कर देते हैं यह एक स्वाभाविक घटना है किंतु यदि लेखिका इस बात को नहीं लिखती तो कहीं न कहीं कहानी कमजोर होती परंतु लेखिका ने इस बात का भी पूरा ध्यान रखा है कि कहानी कही पर भी बनावटी ना लगे।

कहानी की सबसे बड़ी खूबी यह है कि कहानी शुरू से लेकर अंत तक यथार्थ पर टिकी हुई है। कहानी में कहीं पर भी इस बात का अनुभव नहीं होता कि इसमें फैंटसी या बनावटीपन का इस्तेमाल किया गया है। कहानी शुरू से लेकर अंत तक पाठकों को बांधे रखती है और पाठकों के समक्ष महानगरीय मालिक और सेवक के संबंधों को उजागर करती है।

वही हम कहानी के तत्वों के आधार पर बात करें तो कहानी बेजोड़ है। चित्र जी ने संवादों के माध्यम से पात्रों के चरित्र की विशेषताओं का उद्घाटन अत्यंत मार्मिक एवं कलात्मक ढंग से किया है। वह जानती हैं कि कौन सा पत्र किस परिस्थिति में कैसे मनोभावों को व्यक्त करता है और यदि बात भाषा शैली की करें तो वह सरल, सशक्त एवं सजीव है। कहानी में मुंबईआ भाषा का (टपोरी भाषा भी कहते हैं) इस्तेमाल किया गया है। भाषा में परिपक्वता, प्रौढ़ता एवं सप्राणत पर्याप्त मात्रा में मिलती है। भाषा पूर्ण रूप से पात्र अनुकूल है। यदि हम संपूर्णता से कहानी को देखे तो कहानी बेमिसाल है और कहानी सभी मापदंडों पर खरी उतरती है। चित्रा जी ने इस कहानी के माध्यम से महानगरीय जीवन की एक कटु सच्चाई को सबके सामने प्रस्तुत किया है।

(प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली से 'मामला आगे बढ़ेगा अभी शीर्षक से प्रकाशित संग्रह में संकलित)

गले पड़ी गंगा

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-7-8

संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

कृति–चर्चा

मध्यम–वर्ग की जिंदगी से रूबरू कराती कहानियाँ

✍ भोलानाथ कुशवाहा
bnkmzpup@gmail.com

कथाकार रामनगीना मौर्य का एक और कहानी संग्रह 'सॉफ्ट कॉर्नर' प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में 128 पृष्टों में 11 कहानियाँ शामिल हैं। इससे पहले उनके दो संग्रह 'आखिरी गेंद' और 'आप कैमरे की निगाह में हैं' की कहानियाँ पढ़ने को मिली थीं। उन कहानी संग्रहों पर उन्हें कई बड़े सम्मान भी मिले हैं। वह बहुत सजग और सक्रिय कथाकार हैं। देश के अनेक पत्र–पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ और कहानी संग्रहों की समीक्षाएँ प्रकाशित हो रही हैं। अब जब 'सॉफ्ट कॉर्नर' कहानी संग्रह मेरे सामने आया तो इसमें शामिल कहानियों को पढ़ते समय एक बात ध्यान में पहले से रही कि उनके पूर्व के लेखन और अब में क्या बदलाव आया है। दरअसल में रामनगीना मौर्य की कहानियों को पढ़ने से पता चलता है कि उनका अध्ययन बहुत व्यापक है। वह अपने निरीक्षण, सूचनाओं, अध्ययन, अनुभव, ज्ञान और परिस्थितिजन्य स्थितियों के सहारे कहानी का ताना बाना गढ़ने में सिद्धहस्त हैं। अपनी कहानियों में वे भाषायी–कला के माध्यम से अनेक

बार निबंध की शैली अपनाकर कुछ अलग पहचान बनाने की कोशिश करते हैं।

'सॉफ्ट कॉर्नर' संग्रह की कहानियों में पहले की कहानियों की अपेक्षा कुछ बदलाव दिखाई दे रहा है। अब वह निजी विद्वता प्रदर्शन करने के बजाय कहानी को स्वाभाविक स्थिति में विकसित करने की दिशा में बढ़ रहे हैं। कहानी में कथाकार की मौजूदगी कथा को ष्पुशष करने की होनी चाहिए। जब बहुत जरूरी हो तभी लेखक हस्तक्षेप करें। परंतु नयी कहानी धारा में विवरणात्मक शैली तो चल ही रही है। यह कहा जा सकता है कि कहानी लेखन में अब प्रेमचंद का समय नहीं है। परंतु यह भी सत्य है कि प्रेमचंद हमारी स्मृति में हैं, बाकी के अनेक आधुनिक कथाकार भुला दिये गये हैं। इसलिए लेखक कहानी के आगे चलकर उसे खींचता नजर आये तो अच्छा नहीं माना जाता। कथाकारों को इसे समझना बहुत जरूरी है। शायद राम नगीना मौर्य उस दिशा में चल पड़े हैं। अब उनकी कहानियों में पहले की अपेक्षा कसाव और गहरी संवेदना के क्षण स्वाभाविक रूप से मिलने लगे हैं। कहानी सुनने–सुनाने की परम्परा की लम्बी यात्रा तय कर आयी है। हालांकि अब वह पढ़ी जाती हैं। फिर भी उसके पीछे से कोई सुना रहा होता है, ऐसा पाठक को पढ़ते समय लगे तो अच्छा है। जो रचनाकार इस बात को महसूस कर लेता है वह शब्दों में ध्वनि को रचता है। फिर उसे कहानियों का अंबार लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। यह देखा गया है कि कुछ कथाकार अपनी एक कहानी से याद किये जाते हैं।

रामनगीना मौर्य आधुनिक कथाकार हैं, तो जाहिर है उनमें नयापन मिलेगा। वह कुछ अलग कर अपनी पहचान बनाने का प्रयास करेंगे ही। इसलिए उनपर लीक पर चलने का दवाव क्यों डाला जाय। और वह अपनी अलग पहचान बना भी रहे हैं। भाषा और बोलियों के स्तर पर कहानियों में किया जा रहा उनका प्रयोग उन्हें बाकी लोगों से अलग करता है। वह हिंदी,अँग्रेजी,उर्दू,फारसी, अवधी, भोजपुरी आदि का प्रयोगकर साहित्य की एक नयी भाषिक संरचना के लिए जमीन बना रहे हैं। उनमें तत्सम और तद्भव शब्दों का एक साथ गजब का मेल दिखाई देता है। वह अपने आसपास के मुहावरों, लोकोक्तियों, संस्कृत के सूत्रों, फिल्मी गीतों की पंक्तियों का भरपूर प्रयोग कहानी को गति देने के लिए करते हैं। वह बोलचाल में प्रयोग होने वाले

ध्वन्यात्मक एवं व्यंग्यात्म शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से करते हैं। बल्कि कई बार नये शब्द भी गढ़ लेते हैं।

पिछले पचास वर्षों में रचनात्मक लेखन में हिंदी को काफी सरलरूप देने का प्रयास किया गया है। रामनगीना मौर्य ने क्लिष्ट मानकर बहुत सारे छूटे शब्दों को लेखन की धारा में लाने का प्रयास अपनी कहानियों में किया है। यह उनका स्टाइल भी हो सकता है। ऐसा प्रयोग कई लोगों को अस्वाभाविक लगे तो कोई आश्चर्य नहीं। यह भी संभव है कि सामान्य पाठक को ये शब्द समझ में न आयें। परंतु शब्द तो परिचय के लिए प्रयोग की माँग करते हैं। उनका प्रयोग होगा तभी लोकप्रिय होंगे। रामनगीना मौर्य की लगभग सभी कहानियों में कालोनियों में नये पनपे एवं आधुनिक बनने की कोशिश में लगे उस समाज के लोगों की व्यथा–कथा है जो पुरातन को छोड़ नहीं पा रहे हैं और बाजारवाद के शिकार भी हैं। उनकी कहानियों में अक्सर ऐसे लोगों का बखान है जिनकी सोच अपनी हैसियत से आगे की है। घर हो या बाहर हर कोई अपने तरीके से जीने का प्रयास कर रहा है। बल्कि अब तो हर कोई सिर्फ अपने लिए जी रहा है। इसीलिए विसंगतियँ बढ़ती जा रही हैं। यही आज के समय का मूल स्वर है। जिसे रामनगीना मौर्य ने अपनी कहानियों में उठाया है।

'सॉफ्ट कॉर्नर' संग्रह की पहली कहानी 'बेवकूफ लड़का' है। इसमें कथाकार रामनगीना मौर्य जाने–अंजाने कई विमर्शों को उठाते हैं। यहाँ बालमन की तटस्थता है तो महिला विमर्श के बीच से बालिका विमर्श भी उभरता है। कथाकार जिस कहानी का तानाबाना एक बालक को लेकर गढ़ता है उसका आधार लेकर कहानी कई चक्रव्यूह पारकर आगे निकल जाती है। मसलन प्रसव की पीड़ा कल अपने तरह से थी, आज अपने तरह से है। बाल विमर्श में बालक की अपेक्षा बालिका से अधिक उम्मीद की गयी है। लड़के की बेवकूफी की चर्चा है तो लड़की के पैदा होते ही उसके ललाट से विद्वता की झलक मिलने लगती है। आज का समय बेटी बचाओ,बेटी पढ़ाओ का है। समय की सोच के इसी परिवर्तन का कथाकार ने कुछ और आगे बढ़कर स्वागत किया है। दूसरी कहानी 'अनूठा प्रयोग' में आज के मिडिल क्लास के आदमी के रोजमर्रा के मसायल को एक मंच पर लाने का पूरा प्रयास किया गया और उसी के बीच से अनूठा प्रयोग भी उभर कर सामने आ जाता है। आधुनिक जीवन में शहरों के विस्तार ने लोगों के बीच

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

की दूरियाँ बढ़ा दी हैं। लोगों के पास अपनों से मिलने का वक्त नहीं है। अपने वाहन के वावजूद पेट्रोल भी एक आवश्यकता है, कहीं जाने के लिए । लोग जब मिलते–बैठते हैं तो अपने समय की पूरी बखिया उधेड़ने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। यहाँ भी राजनीति, बच्चों की नौकरी, महिलाओं का परिधान, गृह प्रवेश, लेन देन, आदि बहुत कुछ परीक्षण का विषय बना है। तीसरी कहानी 'अखबार का रविवारीय परिशिष्ट' है। हमारे जीवन का खास रिश्ता अभी भी अखबार से बना हुआ है। तमाम टीवी चौनलों की अद्यतन जानकारी के बावजूद सोकर उठते ही सुबह अखबार की तलब महसूस होती है। अखबार से जुड़े कई प्रसंगों और विसंगतियों को बड़ी सहजता से इस कहानी में उठाया गया है। यह कहानी रचनाकार के निजी अनुभव जैसी है जिसमें आज से जूझते बेचौन और लाचार आदमी की दैनंदिनी की एक झलक है। चौथी कहानी 'लोहे की जालियाँ' में किराये के मकान के बहाने आर्थिक तंत्र और रिश्तों के तालमेल की नापजोख की गयी है। रिश्ता एहसानमंद और एहसानफरामोश के बीच झूलता है। क्योंकि जीवन हमेशा दो और दो चार नहीं होता। कहीं हम अपने हक और अधिकार के लिए खड़े होते हैं तो कहीं समझौता कर लौटने की मजबूरी होती है। पाँचवीं कहानी 'छुट्टी का सदुपयोग' में छुट्टी को लेकर आफिस और घर के बीच के रिश्तों–संबंधों और त्रासदियों की सच्चाई का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। इसी बहाने घर और आफिस के चरित्र का आकलन करने में कथाकार कोई कोताही नहीं बरतता। आफिस के ही कार्य व्यवहार को उकेरती छठी कहानी 'बेकार कुछ भी नहीं होता' में स्टेटस और उपयोगिता के बीच के द्वंद्व को उभारा गया है। किसी वस्तु के सड़क पर पड़े होने से उसका महत्व कम नहीं हो जाता। उसे बस अपनी सही जगह चाहिए, जहाँ वह अतिमूल्यवान और जरूरी होती है। आफिस के अंदर की कार्य प्रणाली और अधिकारियों–कर्मियों के व्यवहार का सटीक चित्रण इस कहानी में हुआ है। सातवीं कहानी 'ग्लोब' है। नेट की आभासी दुनिया के विस्तार ने कई तरह की चिंताये खड़ी की हैं। मसलन नेट अपार सूचनाएँ तो दे रहा है परंतु सीखने की व्यावहारिक इच्छाशक्ति समाप्त कर दे रहा है। यहाँ एक छोटा बच्चा नेट से बहुत सारी जानकारियाँ जानने के बाद बड़ा होने के एक भ्रम का शिकार होकर बड़े लोगों से ठीक से पेश नहीं आता। नेट सूचनाएँ तो दे सकता है परंतु व्यावहारिक

ज्ञान, आचरण और विवेक कहाँ से देगा। इनके अभाव में बच्चे फ्रस्टेशन के शिकार हो रहे हैं। घर में माता–पिता, अभिभावक से लड़ रहे हैं, मनमानी कर रहे हैं। घर वाले अपने बच्चों से डरे हुए हैं। संग्रह ही आठवीं कहानी 'आखिरी चिट्ठी' का ताना बाना संग्रह की पहले की कहानियों से भिन्न है। इसमें स्कूली जिंदगी का जिक्र है। नयी उम्र में मन और भावनाएँ जितने करवट बदलती हैं उन्हे निरीक्षण–परीक्षण के साँचे से गुजारने का स्वाभिक चित्रण राम नगीना मौर्य ने किया है। चाहे क्लास में टीचर की डाट हो, केमेस्टी लैब की खुराफात हो या सिनेमा देखने के लिए की गयी जद्दोजहद हो। यह सारा अतीत एक पुरानी पड़ी चिट्ठी के जरिये सामने आता है और पाठक में उत्सुकता बनाये रखता है। नौवीं कहानी 'संकल्प' में मानवीय संवेदना उभरती है, तब संकल्प टूट जाता है। वह भी जूता पालिश करने वाले एक बच्चे के लिए। कहानी बहुत सारे उन लोगों के लिए संदेश दे जाती है जो घर को बाजार बनाने में लगे हैं। फिजूलखर्ची में लाखों रुपये लुटा रहे हैं और जिन्हें रोटी के लाले हैं, उनको देख कर मुँह बनाते हैं। कथाकार ने दसवीं कहानी 'उसकी तैयारियाँ' में घर की जूझती कामकाजी महिला की दिक्कतों के बहाने स्त्री विमर्श का एक खाका प्रस्तुत किया है। नये पनपे भारतीय समाज में भी घर का सारा काम महिलाओं के जिम्में है। शायद चौबीस घंटे घर संभालना और डाँट खाना उनकी नियति है। परंतु यहाँ स्त्री अपने को बराबरी में खड़ा करने की जद्दोजहद करती है। यह खास बात है। इस संग्रह की अंतिम कहानी 'सॉफ्ट कॉर्नर' है जो इस संग्रह की शीर्षक कहानी है। आदमी हो या औरत वह अपने अंदर कई समय समेटे होता है। कुछ व्यक्त हो पाता है,कुछ नहीं। पति–पत्नी के रिश्तों के बीच भी स्मृतियों के ऐसे कई प्रसंग खुलने का मार्ग तलासते रहते हैं। इस कहानी में भी लम्बे समय तक साथ रहने के बावजूद एक–दूसरे को जानने की उत्सुकता जोर मारती है।

अपनी कहानियों में रामनगीना मौर्य न तो आदर्शवादी हैं, और न ही शुद्धतावादी। वह आज के आदमी को उसके मनोभावों के साथ बिना लागलपेट के प्रस्तुत करते हैं। वह आदमी जो अपनी चंचलता के चलते विचलन का शिकार होता रहता है। वह आदमी जो स्वार्थी भी है और एहसानफरोश भी है। वह आदमी जो अंध श्रद्धा के बजाय तर्कशील है। उनके यहाँ आदमी ईश्वर नहीं है। इसलिए उनका आदमी

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

भले–बुरे दोनों से गुजरता है। रामनगीना मौर्य यथार्थवादी कथाकार हैं। वह अपनी कथा के माध्यम सें पाठक पर बहुत कुछ विचार के लिए छोड़ देते हैं कि सोचे कि क्या उपयुक्त अथवा क्या हानिकारक है। कथाकार रामनगीना मौर्य अपनी भूमिका में स्वयं लिखते हैं– 'लिखना चुनौतीपूर्ण है। हमारे इर्द–गिर्द , नित–प्रति काफी कुछ ऐसा घटित होता रहता है, जिसे लक्ष्य कर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। हालांकि, यथार्थ से परिपूर्ण लेखन किसी मानसिक यंत्रणा से कम नहीं है। यद्यपि यह आपको कहीं–न–कहीं मजबूत भी करता है। इसी बहाने आपको अपनी खूबियों–खामियों को जानने–समझने का अवसर भी मिलता है...।'

(पुस्तक : सॉफ्ट कॉर्नर, लेखक : राम नगीना मौर्य,
प्रकाशक : रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, सहयोग राशि : 175 रुपये)

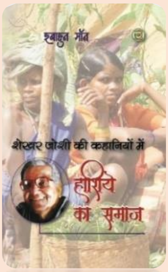

शेखर जोशी की कहानियों में
हाशिये का समाज

इबाहुन मॉन

आईएसबीएन : 978-81-945460-6-1
संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

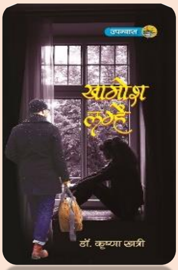

खामोश लम्हें

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-944444-6-6
संस्करण : 2020, मूल्य : 200/-

कृति–चर्चा

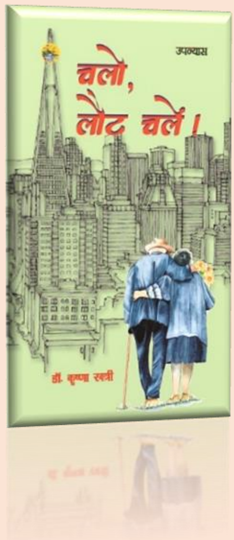

यथार्थ और कल्पना का जीवंत चित्रण

शालिनी सिंह

इक्कीसवीं सदी में पूरे विश्व ने ज्ञान–विज्ञान, संचार–क्रांति और तकनीक में बहुत प्रगति की है, पर इसमें दो राय नही की इस प्रगति के बीच पारिवारिक मूल्यों का व्यापक क्षरण हुआ है। मानवीय संवेदनाएं दम तोड़ रही हैं। भतृहरि ने 'वैराग्यशतक' में अपने समय के सन्दर्भ में लिखा था, 'पुरुष की वृद्धावस्था का कैसा कष्ट है कि बेटा भी शत्रु जैसा व्यवहार करता है।' ये तथ्य अक्षरशः सत्य है प्रतीत होता है, जब हम देखते हैं कि बुजुर्गों को हेय दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। यही समसामयिक विषय उठाया है डॉ. कृष्णा खत्री ने अपने उपन्यास 'चलो, लौट चलें!' में, बहुत ही रोचक और मार्मिक भावनाओं में पिरोकर। उपन्यास जीवन के कटु यथार्थ से बड़ी निर्ममता से सामना करा देता है। जहाँ हम पूरा जीवन अपने बच्चों का भविष्य

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

संवारने में लगा देते हैं कि वो हमारा सहारा बनेंगे। वही सहारा जब डगमगाता तो संघर्षों की उपलब्धि शून्य और हथेली बिल्कुल खाली।

उपन्यास के सभी चरित्र अपने समयकाल की सोच के खाँचे में फिट है। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की समस्या को नजरअंदाज करती है। पुरानी पीढ़ी उम्र के उत्तरार्द्ध में सामंजस्य बिठाने में अपनी लाख कोशिशों के बाद भी खुद को असफल और हारा हुआ महसूस करती हैं। लेखिका ने राकेश और रामदीन के प्रकरण को उपन्यास में कर्मों के फल को एक अच्छे उदाहरण के रूप में पिरोया है। हम जब खुद उस कष्ट का अनुभव करते हैं, तभी हमें दूसरों के दुःख का भान होता है। एक आम मध्यमवर्गीय परिवार के सुख–दुःख, हँसी–चुहल, महत्वाकांक्षाओं और उम्मीदों को लेखिका ने इस तरह एक दूसरे में गूँथा है कि लगता है, जैसे उस उपन्यास का परिवार हममें से ही किसी का है। उपन्यास में भारतीय सन्दर्भ में सबसे बड़ी चुनौती झेल रहे उन बुजुर्गों का द्वंद और उलझी भावनाओं की तस्वीर कई रूपों में सामने आती है, जो पश्चिमी सभ्यता के तौर–तरीके से सामंजस्य नहीं बना पाते और नितांत अकेले पड़ जाते हैं।

'चाय उबल कर गिरने की आवाज से चौंकी, ओह फिर आज चाय गिर गयी, आकर पूजा फिर चिढ़ेगी– क्या मम्मा आप कैसे चाय बनाते हैं, इतने क्या चाय के लिये मरे जा रहे हैं कि मेरा इंतजार नहीं कर सकते।' ये संवाद पढ़कर मन में कुछ टूटता सा है। मानो सिस्टम ही सब कुछ है रिश्ते, भावनाएं कुछ नहीं... अपनापन और प्रेम कुछ भी नहीं। अपने ही ढंग से जीने वाली नई पीढ़ी अनजाने में ही अपने अपनों को अकेला कर रहे हैं। मोहभंग कर रहे हैं उनका जीवन से जहां सब कुछ है मगर.... मन खाली।

उपन्यास की भाषा में कसाव है। लेखिका का जोर भाव अभिव्यक्ति पर अधिक है, इसे अक्षुण्ण रखने के लिए संवादों की भाषा या बोली को जीवन की वास्तविकता के बहुत करीब रखा गया है। नये दौर में बदलती सामाजिक स्थिति परिवार को नए ढंग से परिभाषित कर रही है। अब परिवार का मतलब पति–पत्नी और बच्चे हैं। एक दिन डॉली राधा से पूछ ही लेती है, 'ग्रांड मां यू डोंट हैव युवर होम ? ऑल द टाइम यू स्टे हीयर ।वाय ग्रांड मां ?' बेचारी क्या जवाब देती कि क्या वाकई बेटे का घर हमारा घर नहीं। इस आधुनिक परिवार–सरंचना में बुजुर्गों का कोई स्थान नहीं। इस

 ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)

परिदृश्य के एकाकीपन, उपेक्षा और अपमान का लेखिका ने बाखूबी चित्रण किया है, और एक पाठक के तौर पर मैं ये दावे के साथ कह सकती हूँ कि वो अपनी कथन–कहन में सफल रही हैं।

अंत में शीर्षक 'चलो, लौट चलें!' राधा और प्रताप की आँखों की चमक को चरितार्थ करता है, जिसे शायद शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता, सिर्फ महसूस किया जा सकता है। राधा और प्रताप से जुड़ने के बाद एक पाठक के रूप में दो बूंदे मेरी आँखों में झिलमिला गयीं, उनकी आँखों की चमक को महसूस करके।

महाकवि निराला ने लिखा है, *'मनुष्य की भाँति भाषा में भी प्राण होते हैं। मनुष्य बोलता है कि भाषा बोलती है, इसका निर्णय जरा कठिन काम है।'* यथार्थ और कल्पना के बीच लेखक के मनोभावों को व्यक्त करने वाले शब्द भी जीवंत हो उठते हैं, जो पाठक को एक दूसरी दुनिया के पात्रों, घटनाओं और जीवन से जोड़ देते हैं और उनके साथ जीने को विवश कर देते हैं। इस दृष्टि से उपन्यास 'चलो, लौट चलें! सफल है। बिल्कुल ऐसा ही महसूस हुआ, कृष्णा खत्री की लेखनी से जुड़कर।

(पुस्तक : चलो, लौट चलें!, लेखक : डॉ. कृष्णा खत्री, प्रकाशक : यूथ एजेंडा, पटना, सहयोग राशि : 150 रुपये)

कशमकश

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-8-5
संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

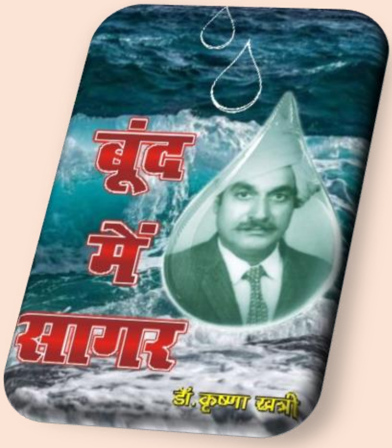

कृष्णा खत्री की करिश्माई कलम का कमाल

महेशचंद्र त्रिपाठी

डॉ. कृष्णा खत्री प्रणीत 'बूंद में सागर' पढ़ने का सुयोग बनना मेरे किसी सुकर्म का पुण्यफल है, ऐसा मैं मानता हूं। कृति को आद्योपान्त पढ़कर जिस सात्विक आनंद की अनुभूति हुई, वह वर्णनातीत है। विदुषी लेखिका ने कृति को साधारण व्यक्ति, अपने पिता की असाधारण स्मृतियों का संग्रह बताया है, और ऐसा है भी। हिन्द–पाक विभाजन के समय सिन्ध से आए परिवार को राजस्थान के बाड़मेर में सुस्थापित करना, उसे पहचान दिलाना बड़े जीवट का काम है, जिसे वे सफलतापूर्वक सम्पन्न करते हैं। और, लेखिका का यह कहना सार्थक हो जाता है कि *'...जो श्रेष्ठ होता है वो जीवन के किसी भी क्षेत्र में, परिस्थिति में, कहीं भी, किसी मोड़ पर, किसी भी पड़ाव पर वो श्रेष्ठ ही होता है। उसका परिचय उसकी अपनी काबिलियत होता है। उसके*

हुनर उसकी पहचान का जरिया बनते हैं। सच में, ऐसे व्यक्ति खुद नहीं बोलते, मगर उनके हुनर बोलते हैं।' श्रेष्ठता का यह सिद्धांत स्वयं लेखिका पर भी समान रूप से लागू होता है। तभी तो एक पांचवीं पास बालिका, दो पुत्रों की मां बनने के बाद अपने दृढ़ संकल्प और इच्छा–शक्ति से न केवल एमए., बीएड., पीएचडी तक की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करती है, वरन् गद्य–पद्य की अनेक साहित्यिक विधाओं में स्पृहणीय सृजन कर सम्मान अर्जित करती है। इस प्रकार ष्बूंद में सागरष पिता के साथ पुत्री की भी संघर्ष गाथा है जो कि अत्यंत प्रेरणादायी है।

संघर्षशील लेखिका डॉ. कृष्णा खत्री ने 'बूंद में सागर' के कथ्य का तानाबाना इतनी कुशलतापूर्वक बुना है कि पाठक का मन मुग्ध हो जाता है। उनका यह बताना कि वे अपने पिताजी को 'काकाजी', मां को 'भाभी' तथा दादाजी को 'बा' कहकर सम्बोधित करती थीं, संयुक्त परिवारों की पुरातन परम्परा जो अत्यंत प्रेमपूर्ण तथा सौहार्दपूर्ण थी, की याद दिलाता है। आज भी भारतीय ग्राम्य समाज में बहुत से परिवार ऐसे मिल जाएंगे, जहां भतीजे/भतीजी, पिता को काका या चाचा तथा काका या चाचा को पिता कहते हों।

'बूंद में सागर' की कुशल कलमकार का यह कहना भी ध्यान आकर्षित करता है कि *'रोमांस और रोमांटिकता सिर्फ पति–पत्नी के रिश्ते तक ही सीमित नहीं होती है, बल्कि यह एक पवित्र भाव है, जिसका विस्तार बच्चों से लेकर ईश्वर तक है।'* ऐसे ही अनेक सूक्तिवत् उदाहरण कृति से उद्धृत किए जा सकते हैं। यथा–

1. हर माता–पिता को अपनी सन्तान सुन्दर ही लगती है।
2. आत्मसम्मान खो गया तो समझो सब खो गया। आत्मसम्मान ही वो तथ्य है जो हमारे अपने होने के अहसास को पुख्ता करता है।
3. मांएं कितनी अनुभवी व प्रैक्टिकल होती हैं। उन्हें पता है कि बेटियों को कितना ही लाड़ करो, हथेली के छाले की तरह रखो, पर उसे पराए घर जाना ही है।

सिद्धहस्त लेखिका ने अपने लेखन में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग कर कथ्य को रोचक बनाया है। बोलचाल के उर्दू तथा अंग्रेजी के शब्द भाषा को भावप्रवण बनाए रखते हैं। फुग्गा फाड़कर रोना, सातों

सुरों में तान अलापना, फूलकर कुप्पा होना जैसे अनेक मुहावरे भी भाषा में चार चांद लगाते हैं।

लेखिका की करिश्माई कलम ने कृति में कविता का पुट देकर भी इसे श्रेष्ठतर बनाया है। महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत स्वरचित 'कतरा–कतरा' काव्य संकलन की प्रथम कविता 'तुम औरों से अलग हो!' उद्धृत करने से भी कृति चमत्कृत हुई है। अन्त में, निष्कर्षतः यही कहूंगा कि कृति सरस, रोचक एवं प्रेरणाप्रद होने के कारण पठनीय तथा संग्रहणीय है। कृति का शीर्षक 'बूंद में सागर' सर्वथा युक्तियुक्त है। कृति के प्रारम्भ में ही लेखिका ने लिखा है– *'स्मृतियां और भावनाएं जब भीतर की गहराइयों तक पैठकर थम जाती हैं, तो एक नए विश्व का निर्माण करती हैं और तब यही विश्व हृदय पटल पर कुछ इस तरह से अपनी स्थापना तथा अपना विस्तारीकरण करता है कि सब कुछ साकार हो उठता है... तब यह विश्व कभी कलम की नोंक पर तो कभी तूलिका के रंगों में समाकर एक बूंद का रूप धारण कर लेता है, और फिर यही बूंद कभी पूरे सागर को ही समाहित कर लेती है या फिर सागर में तब्दील हो जाती है। और तब, दिल जाने कब और कैसे कहने को लाचार हो जाता है– 'बूंद में सागर'।'* याद आ रहा है किसी का एक शे'र–

'छोटा–सा दिल हुजूम तमन्ना लिये हुए।
कतरा है अपने गोद में दरिया लिये हुए।।'

(पुस्तक : बूंद में सागर, लेखक : डॉ. कृष्णा खत्री, प्रकाशक : मधुराक्षर प्रकाशन, फतेहपुर, सहयोग राशि : 150 रुपये)

सठियाई औरत

डॉ. कृष्णा खत्री

आईएसबीएन : 978-81-945460-9-2

संस्करण : 2020, मूल्य : 250/-

**ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥**

जो व्यक्ति
सब कर्मों को
परमात्मा में अर्पण करके
और
आसक्ति को त्याग कर
कर्म करता है,
वह कमल के पत्ते की भांति
पाप में लिप्त नहीं होता।
–श्रीमद्भगवद्गीता

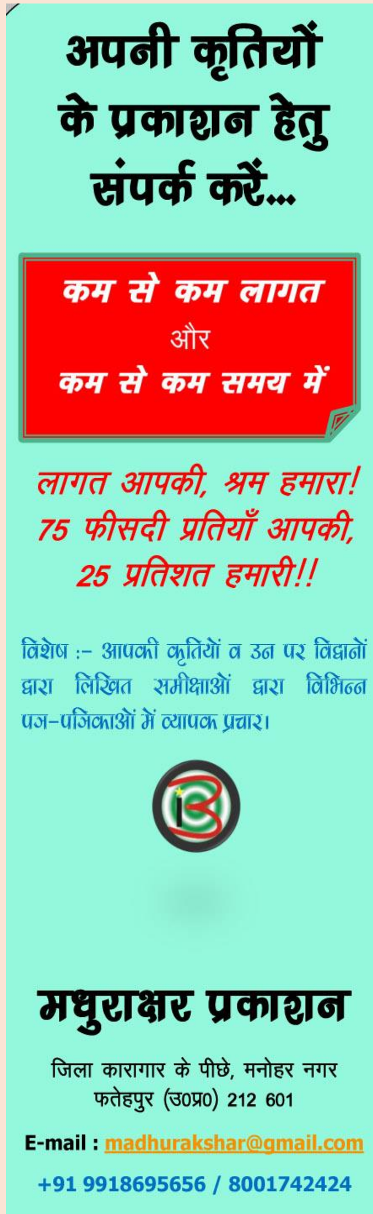

ISSN : 2319-2178 (P) 2582-6603 (O)